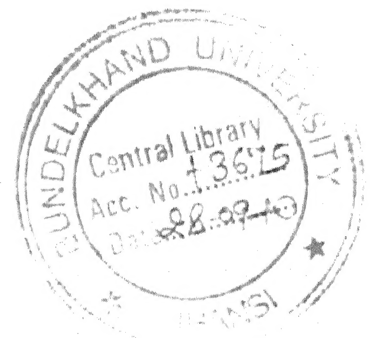
दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति
(प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के विशेष संदर्भ में)

Indian foreign Policy to South Asia
(With Special reference to P.M. Atal Bihari Vajpayee)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से राजनीति विज्ञान में
पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध





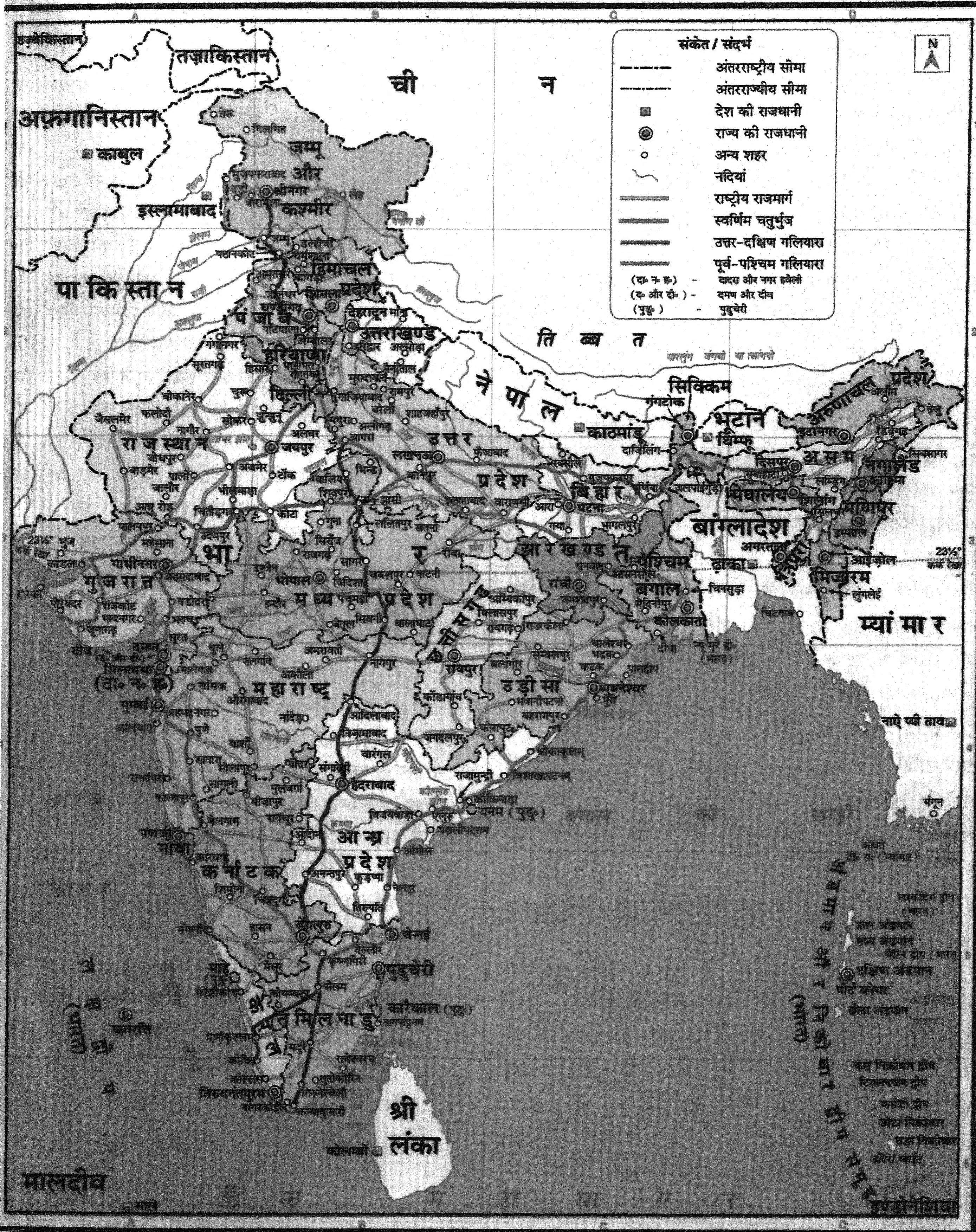
2008

शोध-निदेशक
डॉ० एस०के० कपूर
अध्यक्ष-राजनीति विज्ञान विभाग एवं
प्राचार्य-श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मऊरानीपुर, झाँसी (उ०प्र०)

शोधार्थी
दीपक सिंह
एम०ए०(गोल्ड मेडलिस्ट),एम०फिल०
प्रवक्ता (राजनीति विज्ञान विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
चरखारी, महोबा (उ०प्र०)

शोध-केन्द्र
(राजनीति विज्ञान विभाग)
श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय मऊरानीपुर, झाँसी (उ०प्र०)

भारत-राजनैतिक


संकेत / संदर्भ
अंतरराष्ट्रीय सीमा
अंतरराज्यीय सीमा
देश की राजधानी
राज्य की राजधानी
अन्य शहर
नदियां
राष्ट्रीय राजमार्ग
स्वर्णिम चतुर्भुज
उत्तर-दक्षिण गलियारा
पूर्व-पश्चिम गलियारा
N
उज़्बेकिस्तान
तज़ाकिस्तान
चीन
अफ़ग़ानिस्तान
काबुल
इस्लामाबाद
पाकिस्तान
जम्मू और कश्मीर
श्रीनगर
हिमाचल प्रदेश
शिमला
पंजाब
चण्डीगढ़
उत्तराखण्ड
देहरादून
हरियाणा
दिल्ली
तिब्बत
नेपाल
काठमांडू
सिक्किम
गंगटोक
भूटान
थिम्पू
अरुणाचल प्रदेश
असम
दिसपुर
नागालैंड
कोहिमा
मेघालय
शिलांग
मणिपुर
इम्फाल
मिज़ोरम
आइज़ोल
बांग्लादेश
ढाका
राजस्थान
जयपुर
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
बिहार
पटना
झारखण्ड
रांची
पश्चिम बंगाल
कोलकाता
गुजरात
गांधीनगर
मध्य प्रदेश
भोपाल
छत्तीसगढ़
रायपुर
उड़ीसा
भुवनेश्वर
महाराष्ट्र
मुम्बई
आन्ध्र प्रदेश
हैदराबाद
कर्नाटक
बेंगलुरु
गोवा
पणजी
तमिलनाडु
चेन्नई
पुडुचेरी
केरल
तिरुवनंतपुरम
श्रीलंका
कोलम्बो
म्यांमार
मालदीव
माले
इण्डोनेशिया
हिन्द महासागर
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
पोर्ट ब्लेयर
लक्षद्वीप (भारत)
कवरत्ती
23½° कर्क रेखा

डॉ० एस०के० कपूर
अध्यक्ष-राजनीति विज्ञान विभाग एवं
प्राचार्य-श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, मऊरानीपुर झाँसी, (उ०प्र०)

फोन नं० 05178-260288
260019

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि दीपक सिंह पी०-एच०डी० (राजनीति विज्ञान) उपाधि हेतु बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के तत्वाधान में ''दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति (प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के विशेष सन्दर्भ में)'' विषय पर मेरे निर्देशन में आपके पत्रांक-बु०वि०/प्रशासन/शोध/2005/2946-48/06.04.2005 द्वारा पंजीकृत हुई थी। इन्होंने मेरे निर्देशन में कार्य किया है तथा मैं इन्हें शोध प्रबन्ध विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने एवं परीक्षण हेतु प्रेषित करने की स्वीकृति/संस्तुति प्रदान करता हूँ।

मैं इनकी पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ। मैं पुनः प्रमाणित करता हूँ कि शोध अध्यादेश के नियमानुसार शोधार्थी ने 200 दिन तक शोध केन्द्र में रहकर शोध कार्य पूर्ण किया है।

शोध निदेशक

Skkapoor

(डॉ० एस०के० कपूर)

प्राचार्य
श्री अग्रसेन महाविद्यालय
मऊरानीपुर (झाँसी)

श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर, महाविद्यालय मऊरानीपुर, झाँसी (उ०प्र०)

घोषणा-पत्र

मैं घोषणा करता हूँ कि **''दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति (प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के विशेष सन्दर्भ में)''** शीर्षक के अन्तर्गत किया गया शोधकार्य, डॉ० एस०के० कपूर अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग एवं प्राचार्य (श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय मऊरानीपुर झाँसी, उ०प्र०) के निरीक्षण एवं मार्गदर्शन में किया गया व शोध उपाधि समिति द्वारा स्वीकृत है। मेरी जानकारी में इस शीर्षक पर किसी भी प्रकार का कोई शोध कार्य नहीं हुआ है तथा यह मेरे स्वयं का मौलिक व नवीन प्रयास है।

शोधार्थी

Deepak Singh
03/04/2008

(दीपक सिंह)

प्रवक्ता (राजनीति विज्ञान विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
चरखारी महोबा, (उ०प्र०)

प्राक्कथन

जब मैं वर्ष 2003 में एम0फिल0 कर रहा था तब अक्सर अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं, टेलीवीजन आदि में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की विदेश नीति के सम्बन्ध में हमेशा चर्चा रहा करती थी। पड़ोसियों के प्रति भारत की नीति में सहयोगात्मक रूख, नरम रवैया, दोस्ताना सम्बन्ध, गिला-शिकवा दूर करने की नीति तथा परस्पर विकासपरक प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की नीति पर चर्चा होती रहती थी। विदेशों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध, पड़ोसियों के साथ समीपता प्रधानमंत्री वाजपेयी का विश्व स्तर में लोकप्रिय होना आदि बहुत सी ऐसी बातें थी जिसके कारण मुझे अटल बिहारी वाजपेयी की दक्षिण एशिया के देशों के साथ सम्बन्धों पर शोध करने को उत्सुकता जिज्ञासा तथा लालसा हुई। भारत की विदेश नीति, पर तो गम्भीर सोंच का अवसर सदैव विद्यमान रहता है; क्योंकि इसका सम्बन्ध भारत के राष्ट्रीय हित, राष्ट्रीय सुरक्षा से है। विदेश नीति राष्ट्रीय हित की पोषक होती है। राष्ट्रीय हित में सुरक्षा तथा विकास की बातें शामिल रहती हैं। प्रधानमंत्री वाजपेयी के शासनकाल में भारत का सुरक्षा परिदृश्य कैसा था तथा वाजपेयी की सुरक्षा नीति क्या रही। इन प्रश्नों के उत्तर तलाशने के बाद, प्रधानमंत्री वाजपेयी की विश्व के प्रति दृष्टिकोण तथा अपने पड़ोसियों के प्रति नजरिए को ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। साथ ही इस बात की परीक्षा करनी पड़ती है कि वाजपेयी कालीन परिवेश कैसा था, आदर्शवाद तथा यथार्थवाद ने किस सीमा तक प्रधानमंत्री वाजपेयी को प्रभावित किया।

इन सब बातों को सम्मिलित करते हुए मैंने प्रधानमंत्री वाजपेयी की विदेश नीति को केवल एक छोटे से भौगोलिक क्षेत्र (दक्षिण एशिया) तक ही रेखांकित करने का मुख्य प्रयास किया है क्योंकि भारत के लिए हमेशा से सबसे बड़ी चुनौती अपने पड़ोसियों से ही मिली है। चाहे पाकिस्तान के साथ युद्धों का सिलसिला हो या आतंकवाद का या लिट्टे के कारण श्रीलंका के साथ सम्बन्ध हों अथवा बांग्लादेश के साथ समय-समय पर उभरने वाले विवाद। इन सभी तत्वों को देखते हुए मैंने केवल दक्षिण एशिया के प्रति भारत के सम्बन्धों को वाजपेयी के शासनकाल के समय उकेरने का सूक्ष्मतम प्रयास किया हैं।

कोई भी विशेष एवं गुरूतर कार्य गुरू की कृपा बिना सम्भव नहीं है। इसीलिए सर्वप्रथम मैं अपने विनम्र भाव, परमश्रद्धेय गुरूवर डॉ0 एस0के0 कपूर जी के श्री चरणों में अर्पित करता हूँ। मेरा भावुक हृदय सहज भाव से ही श्रद्धेय डॉ0 एस0के0 कपूर जी के चरणों में नतमस्तक हो उठता है, क्योंकि उन्होनें

मुझको अपना शिष्य स्वीकार कर अनुगृहीत किया एवं इस महत्वपूर्ण कार्य में मेरे मार्गदर्शक बनकर मुझे उत्साहित किया। जब भी शोध कार्य करने में आलस्य या थकान का अनुभव करता था, तब उन क्षणों में गुरूमाता श्रीमती मंजूला कपूर जी की कर्तव्यपरक बातें तथा उनकी सानिध्यता मुझमें शोध कार्य करने के प्रति शक्ति का संचार करती थीं तथा उनकी ममतामयी, धर्मपरायण बातें मुझे शोध कार्य के प्रति उत्साहित कर देती थीं। ऐसी वात्सल्यमयी, सरल, सहज, शिष्ट, सौम्य एवं ममतामयी गुरूमाता के चरणों को मैं प्रणाम करता हूँ।

मेरा यह सौभाग्य ही है कि परम आदरणीय गुरूजी श्री चन्द्रप्रकाश जैन, अध्यक्ष (राजनीति विज्ञान विभाग) पं०जे०एन०पी०जी० कॉलेज, बाँदा का मुझे सानिध्य प्राप्त हुआ। शोध प्रबन्ध के लेखन व अन्य कठिनाइयों में जब-जब मेरी दृष्टि उलझी, आपने अत्यन्त सहजता से उसे सुलझा दिया। यह उनके औदार्य और पुत्रवत स्नेह का ही प्रतिफल है कि मैं विषय की रूपरेखा को एक उचित दिशा दे सका। मैं हृदयांतर से उनका आभार मानता हूँ तथा उनके चरणों में नमन करता हूँ।

परमश्रद्वेय डॉ० राजीव रतन द्विवेदी, डॉ० किशन यादव, डॉ०ए०के० त्रिपाठी, के चरणों में नमन करता हूँ जिनके उचित मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद ने मुझे कार्य करने की शक्ति प्रदान की। अतः मैं उनका हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। डॉ रिपुसूदन सिंह, डॉ० सन्तोष दुबे का भी मैं आभारी हूँ जिन्होनें मेरे शोध कार्य को गति प्रदान की।

मैं चिर ऋणी हूँ अपने देवतुल्य परम्पूज्य पिताजी (श्री कपूर सिंह) एवं माताजी (श्रीमती राजकुमारी सिंह) का जिनके असीम स्नेह, निश्चल अनुभूति और कर्मठ व्यक्तित्व ने मुझे सदैव उत्साहित किया। बड़े भइया श्री राजकरन सिंह, भाभी श्रीमती आशा सिंह, छोटी बहन कु० सुमन सिंह, भतीजे राकेश सिह, भतीजी महकलता सिंह आदि के सहयोग, स्नेह से मेरा यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हुआ। जिनका मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं आभारी हूँ मित्र विश्वम्भर सिंह, प्रवक्ता (हिन्दी विभाग जनता महाविद्यालय दिबियापुर औरैया), जगदीश सिंह, प्रवक्ता (शिववती शिवनन्दन शुक्ला महाविद्यालय पुखरॉया कानपुर देहात), सुनील सुरौठिया, प्रवक्ता (श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय मऊरानीपुर झाँसी), सन्तोष कुमार यादव (समाज सेवक), जितेन्द्र सिंह, राजकुमार निगम, राकेश सिंह चौहान, डॉ० ओमप्रकाश त्रिपाठी आदि ने मेरे शोध कार्य को गति प्रदान करने में हर तरह से सहायता दी। मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता

हूँ। मैं श्री प्रिन्टर्स के श्री श्रीकान्त शुक्ल का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होनें सुन्दर एवं त्रुटि रहित मुद्रण कर शोध प्रबन्ध को अधिक आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण बनाया।

मैं उन समस्त चर-अचर जीवात्माओं को नमन करता हूँ जिन्होनें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से ग्रन्थ की पूर्णता में योगदान दिया। उन विद्वानों एवं लेखकों के प्रति कृतज्ञ होना मैं अपना नैतिक कर्तव्य समझता हूँ जिनके ग्रन्थों से शोध-प्रबन्ध में मुझे सहयोग प्राप्त हुआ। मैं नमन करता हूँ अपने गॉव के खेरापति महाराज जी को जिनकी छाँव तथा कृपा से आज मुझे शोध कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ तथा शोध कार्य का सम्पादन उन्हीं के आशीर्वाद से सम्पादित हुआ।

अन्त में यह शोध प्रबन्ध मैं अपने ताऊजी (श्री फतेहबहादुर सिंह) के चरणों में समर्पित करता हूँ जिन्होनें मुझे गोद लेकर (दत्तक पुत्र बनाकर) पढ़ाया, लिखाया तथा इस योग्य बनाया कि मैं इस कार्य को सम्पादित कर सकूं और एक निश्चित लक्ष्य हासिल कर सकूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विद्वजनों की सहानुभूति अर्जित करने में सफल होगा, इस आशा और विश्वॉस के साथ सादर समर्पित।

(दीपक सिंह)
प्रवक्ता (राजनीति विज्ञान विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
चरखारी महोबा, (उ0प्र0)

विषय : अनुक्रमणिका

प्रस्तावना (PREAMBLE)

अन्तर्राष्ट्रीय समाज की वास्तविकताओं और उसकी गत्यात्मक शक्ति के प्रभाव से आज विश्व का कोई भी राष्ट्र अपने आपको चाह कर भी पृथक नहीं रख सकता। स्वतन्त्र राष्ट्रों की परराष्ट्र नीति एवं उनके अन्तर्सम्बन्धों को प्रभावित करने वाले कारकों एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय हितों को निर्धारित करने व तार्किक लक्ष्य तक पहुंचने में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रेरणात्मक भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती। एक समय था जब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं सबंध सिर्फ राष्ट्रों का विषय हुआ करता था, परन्तु आधुनिक विश्व की जटिलताओं, संप्रेषणशीलता और वास्तविक अनिवार्यताओं के कारण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और संबंधों का विषय क्षेत्र राष्ट्रों के साथ-साथ क्षेत्रीय संगठनों तक आ गया है।

किसी भी राष्ट्र की नीतियों से दूसरा राष्ट्र और विभिन्न राष्ट्रों की नीतियों एवं अन्तर्सम्बन्धों से क्षेत्रीय संगठन अछूते नहीं है। न तो कोई राष्ट्र पूर्णतया आत्मनिर्भर है तथा न ही हो सकता है, क्योंकि जो उद्देश्य तथा राष्ट्रहित वह प्राप्त करना चाहता है, वे सदैव उसके साधनों से अधिक भारी होते है। वे समय के साथ-साथ परिवर्तित होते रहते हैं। राष्ट्रीय हितों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने की इच्छा तथा सभी राष्ट्रीय हितों को अपने आप प्राप्त कर पाने की असमर्थता से एक स्थिति का जन्म होता है, जिसे राष्ट्रों की अन्तर्निभरता कहा जाता है। अन्तर्निर्भरता अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का एक अकाट्य तथ्य है तथा यही एक कारण है कि विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति संगठनों का निर्माण करते है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में अपने व्यवहार को अर्थ तथा दिशा देने के लिए प्रत्येक राष्ट्र कुछ सिद्धान्तों तथा निर्णयों का एक समूह (विदेशनीति) बनाता है। इसी आधार पर वह अन्य राज्यों के साथ अपने सम्बन्धों को निर्धारित करता है। परस्पर निर्भरता के अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में प्रत्येक राष्ट्र अपनी विदेश नीति के द्वारा ही अपने राष्ट्रीय हित के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है जो कि अन्य राज्यों से सम्बन्धित होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्येक राष्ट्र का व्यवहार सदैव उसकी विदेश नीति द्वारा ही निर्धारित होता है। विदेश नीति उन सिद्धान्तों एवं निर्णयों का समूह है जो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्धों के दौरान अपने निश्चित राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त करने

के लिए अपनाता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के संदर्भ में विदेश नीति राष्ट्रीय हितों के उद्देश्य को परिभाषित और निर्धारित करती है।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं सम्बन्धों के स्वरूप एवं ढ़ाँचे में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए जिसमें यूरोप की चार बड़ी शक्तियों ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी व इटली का अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था पर वर्चस्व समाप्त हो गया। उनका स्थान दो महाशक्तियों-अमेरिका व सोवियत संघ ने ले लिया। विश्व की सम्पूर्ण राजनीति इन्हीं महाशक्तियों के इर्द-गिर्द घूमने लगी। अमेरिका की उदारवादी लोकतांत्रिक एवं पूंजीवादी व्यवस्था तथा सोवियत संघ की लोकतंत्र विरोधी विचारधारा एवं 'आदेश-अर्थव्यवस्था' के मध्य टकराव ने प्रत्यक्ष युद्ध के स्थान पर शीत-युद्ध को जन्म दिया। एशिया एवं अफ्रीका के अधिकांश देश उपनिवेशवाद की बेडियों से मुक्त हुए और गुट निरपेक्ष आंदोलन एक नैतिक शक्ति के रूप में उभरकर सामने आया तथा महाशक्तियों के पारस्परिक भय, संशय एवं घृणा ने नये सैन्य संगठनों का जन्म दिया।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के महत्व में वृद्धि हुई है। जिसके प्रमुख कारण है- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शक्ति की भूमिका को मान्यता तथा परम्परागत अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति संरचना का अन्त, अमरीका तथा भू०पू० सोवियत संघ का दो महाशक्तियों के रूप में उभरना, शीतयुद्ध की उत्पत्ति, उपनिवेशवाद की समाप्ति की प्रक्रिया तथा नए राष्ट्रों की उत्पत्ति, विदेश नीति का लोकतन्त्रीकरण, तकनीकी क्रान्ति, परमाणु शस्त्रों का उदय, शांति की दृढ़ इच्छा, अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना तथा एकीकरण के झुकाव की प्रवृत्तियों का उदय, राष्ट्रों में बढ़ती आत्म निर्भरता, शक्ति सन्तुलन का ह्रास आदि कारणों ने सभी राष्ट्रों को एक दूसरे के समीप लाने को बाध्य किया जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विकसित हुए।

किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति उसके नीति निर्माताओं द्वारा बनाई तथा लागू की जाती है। ऐसा करते समय वे राष्ट्र के राष्ट्रीय हितों का आन्तरिक तथा बाहरी वातावरण तथा राष्ट्रीय मूल्यों को ध्यान में रखते हैं। इनका विश्लेषण करते समय उनकी अपनी धारणाएं तथा अपने अधिमान होते हैं। जो तत्व विदेश नीति को प्रभावित करते हैं उन्हें सामूहिक तौर पर विदेश नीति के निर्धारक तत्व कहा जाता है। किसी अन्य राष्ट्र की विदेश नीति की भाँति भारतीय विदेश नीति भी कई कारको अथवा तत्वों अथवा घटकों द्वारा निर्धारित है। जिसमें सर्वप्रथम तत्व उसका भूगोल है।

भारत की विदेश नीति के निर्धारण में भारत के आकार, एशिया में उसकी विशेष स्थिति तथा दूर-दूर तक फैली हुई भारत की सामुद्रिक और पर्वतीय सीमाओं का विशेष स्थान रहा है। हिमालय पर्वत भारत की सुरक्षा के लिए निर्धारक तत्व रहा है। यह भारत-चीन सम्बन्धों, भारत-नेपाल सम्बन्धों, भारत-भूटान सम्बन्धों का निर्धारक तत्व है। इसी प्रकार हिन्दमहासागर जिसका सबसे बड़ा तटीय राष्ट्र भारत (4500 किमी०) होने के नाते भारतीय सुरक्षा को सुदृढ़ तथा आधुनिकतम नौसेना चाहिए। हिन्दमहासागर में शक्तियों की शत्रुता जो कि हिन्द महासागर उच्च शक्ति के सैनिक अड्डों विशेषतः डियागोगार्सिया में अमेरिका के सैनिक अड्डे की विद्यमानता के कारण बढ़ गई, की समाप्ति की मांग भारतीय सुरक्षा के कारण की जाती है। भारत का बड़ा आकार सुरक्षा आवश्यकताओं तथा राज्य की क्षमताओं को प्रभावित करता है। बड़े आकार के कारण आज भारत यू०एन०ओ० की सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता का सशक्त दावेदार है।

आर्थिक स्थिति भी किसी देश की राष्ट्रीय शक्ति की निर्धारक होती है। अमरीका तथा सोवियत संघ की सक्षमता का एक प्रमुख कारक आर्थिक सम्पन्नता भी है। आर्थिक विकास में पिछड़ जाने के कारण ही सोवियत संघ विघटित हो गया। भारत का तेजी से उभर रहे आर्थिक बाजार के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भारत की स्थिति मजबूत हो रही है, तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रियता बढ़ रही है। जबकि स्वतन्त्र भारत ने अपने आपको आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर पाया। भारत का जी-15, जी-77, जी-24, NAM, SAARC, ASEAN जैसे संगठनों में सक्रिय सदस्य के रूप में भाग लेने का भी यही कारण है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ चला जा सके।

भारत की विशाल जनसंख्या तथा कृषि पर इसकी निर्भरता भी विदेश नीति को कमजोर करने वाला तत्व रहा है। प्राकृतिक संसाधन भी आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। प्राकृतिक संसाधनों तथा प्रौद्योगिकी के विकास के कारण भारत की स्थिति ने आज अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज में सुधार किया है। प्रौद्योगिकी विकास के कारण 11 व 13 मई, 1998 के परमॉणु परीक्षणों के बाद परमॉणु शस्त्र ध ारक देश बनने के कारण विश्व में भारत की छबि सुदृढ़ हुई है। भारत की विदेश नीति के निर्धारण में सांस्कृतिक मूल्यों, ऐतिहासिक मूल्यों तथा राजनीतिक मूल्यों का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत की विदेश नीति विश्व शांति, झगड़ों के निपटारे के लिए शांतिपूर्ण साधनों, सहनशीलता, अहस्तक्षेप तथा शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व को महत्व देती है, वह भारतीय संस्कृति के प्रभाव के कारण ही है।

घरेलू वातावरण भारत की विदेश नीति का महत्वपूर्ण निर्धारक है। भारत की विदेश नीति पर कांग्रेस की नीतियों का स्पष्ट प्रभाव रहा है। भारत में विद्यमान हित समूह तथा राजनीतिक दल भी भारत की विदेश नीति विशेषकर गुट निरपेक्षता की नीति को आकार देने के साधन रहे हैं। भारत में विद्यमान मुसलमानों की संख्या सामाजिक बनावट, विरोधी दल की प्रकृति, साम्यवादी दलों की नीतियाँ, भारतीय प्रेस की भूमिका, विद्यमान क्षेत्रीयवाद की प्रवृत्ति, राजनीतिक उथल-पुथल ने हमेशा भारतीय विदेश नीति को प्रभावित किया है। भारत की विदेश नीति के निर्माण में विचारधारा का भी महत्व रहा है। गाँधी जी की विचारधारा जिसमें शांति, अहिंसा, मानवीय भाईचारा, अन्तर्राष्ट्रवाद तथा दूसरों के मामलों में अहस्तक्षेप पर पूरी तरह बल दिया गया है।

विदेश नीति का शांतिपूर्ण साधनों तथा सहयोग द्वारा शांति की प्राप्ति का उद्देश्य गांधीवाद से प्रभावित है। चूंकि किसी राष्ट्र की विदेश नीति मनुष्यों के एक समूह द्वारा बनाई जाती है जिसमें नेता, राजनेता तथा कूटनीतिज्ञ होते हैं, इसलिए इसमें उनके मूल्यों, प्रतिभाओं, पसन्दों, नापसन्दों, विचारों, क्षमताओं ज्ञान तथा विश्व दृष्टिकोण का प्रभाव होता है। नेहरू की गुटनिरपेक्षता की नीति, शांति की नीति, पंचशील पर जोर देने वाली नीति, पहले एशियाई राष्ट्रों की एकता तथा सहयोग प्राप्त करने की इच्छा तथा फिर उसे अफ्रीकी-एशियाई एकता की अवधारणा तक ले जाना आदि निर्णय उनके चिन्तन तथा विश्व स्थिति पर उनके विचारों का ही परिणाम थे। 1998-2004 के दौरान भारतीय विदेश नीति निश्चित ही अटल बिहारी वाजपेयी की सोच तथा व्यक्तित्व से प्रभावित रही।

भारत U.N.O. का मौलिक सदस्य है तथा उसे इसके आदर्शो, एवं सिद्धान्तों में पूर्ण विश्वास है। भारत U.N.O. को विश्व शांति स्थापित करने वाला एक सहारा मानता है तथा भारत कभी भी अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन नहीं करता है तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थायी सदस्यता के लिए प्रयासरत है। गुटनिरपेक्षता, साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद तथा नव-उपनिवेशवाद का विरोध, नस्लीय भेदभाव का विरोध, साधनों की शुद्धता, पंचशील पर जोर देने वाली नीति, यू०एन०ओ० के प्रति समर्थन की नीति, एशिया तथा अफ्रीका के साथ एकता, पड़ोसियों के साथ मित्रता, सहयोग तथा शान्ति, भारत के राष्ट्रीय हितों पर आधारित स्वतन्त्र विदेश नीति, निःशस्त्रीकरण, स्वतन्त्र परमॉणु नीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए सभी देशों से सहयोग करने की नीति भारतीय विदेश नीति की विशेषताएं मानी जाती हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में अपनी शाख को बनाये रखने या वृद्धि करने के लिए जरूरी है कि राष्ट्र का सर्वांगीण विकास हो और राष्ट्र के बहुमुखी विकास के लिए जरूरी है कि उसका दूसरे देशों के साथ सम्बन्ध (राजनीतिक, सामरिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, प्रौद्योगिक, व्यापारिक) कायम हो जिससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में प्रतिस्पर्द्धा कायम रह सके। इन सब वजहों से जरूरी है कि कई राष्ट्र मिलकर आपसी विकास को गति देने के लिए क्षेत्रीय स्तर पर संगठन बनाकर उन्नति करते रहे। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद क्षेत्रीय सहयोग संगठनों की भरमार हुई। इन क्षेत्रीय संगठनों की स्थापना का उद्देश्य आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का समाधान करना अथवा क्षेत्रीय सुरक्षा व्यवस्था को पुख्ता करना है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक उद्देश्यों में समानता रखने वाले देशों का पारस्परिक संगठन विश्वव्यापी संगठन की अपेक्षा शान्ति बनाए रखने की दिशा में अधिक सफल हो सकता है।

क्षेत्रीय संगठनों के माध्यम से स्वतन्त्रता एवं सम्प्रभु राष्ट्र क्षेत्रीय हितों की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद निर्मित क्षेत्रीय संगठनों को मोटे रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम, वे संगठन जो सैनिक संधि की भाँति है जैसे-नाटो, सीटो, सेण्टो, वारसा पैक्ट आदि, द्वितीय, वे संगठन जिनका उद्देश्य आर्थिक विकास, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और जन कल्याण के क्षेत्र में कार्य करना है। ऐसे संगठनों में अरब-लीग, आसियान, सार्क आदि प्रमुख है। प्रथम विश्व युद्ध के 20 वर्ष के बाद ही संसार में पुनः एक ऐसा महायुद्ध हुआ जो प्रथम विश्वयुद्ध की तुलना में अधिक भयंकर, विनाशकारी और अधिक व्यापक था।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पूर्व ही मित्र राष्ट्रों के नेता इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि विश्व की समस्याओं को निपटाने और भविष्य में विश्वयुद्ध की संभावना को टालने के लिए एक ऐसा मंच स्थापित किया जाये जो राष्ट्र संघ से अधिक प्रभावशाली हो इस पृष्ठभूमि में और भविष्य में युद्ध न हो, इस उद्देश्य से यू0एन0ओ0 की स्थापना की गई। जिसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की व्यवस्था करना, सभी राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करना, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना तथा इन उद्देश्यों की उपलब्धि के लिए एक केन्द्रीय संस्था की स्थापना करना आदि इसके लक्ष्य थे। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने शांति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भले ही उसके कानूनों को

(राष्ट्रीय कानून की तरह) राष्ट्रों के द्वारा न विशेष तरजीह दिया गया हो किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति में यू0एन0ओ0 का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

भारत-बांग्लादेश विवाद तथा पश्चिम एशिया संकट में उसके विचार-विमर्श एवं सलाह मशविरे के माध्यम से हालत की गहमागहमी को कम करने में 'कूलर' की भूमिका निभाई हैं अफगानिस्तान से सोवियत सैनिकों की वापसी के बारे में जेनेवा समझौता (1988) ईरान-ईराक युद्ध विराम समझौता (अगस्त-1988), नामीबिया की स्वतन्त्रता सम्बन्धी समझौता (13 दिसम्बर, 1988), अंगोला से क्यूबाई सैनिकों की वापसी के लिए पर्यवेक्षकों का दल तैनात करना महत्वपूर्ण उपलब्धियां है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की 16 शान्ति सेनाएं विभिन्न क्षेत्रों में तैनात हैं। 1945 से अब तक संघ की देख-रेख में लगभग 172 क्षेत्रीय संघर्षो का निदान शान्तिपूर्ण समझौतों द्वारा किया जा चुका है। लगभग 60 वर्ष की अवधि में कम्बोडिया, नामीबिया, अलसल्वाडोर, मोजाम्बिक जैसे 45 देशों में निष्पक्ष चुनाव करवाकर लोकतन्त्र की स्थापना में संयुक्त राष्ट्र संघ ने सहयोग दिया है। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद समाप्त करने की दिशा में संघ को अभूतपूर्व सफलता मिली है।

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में क्षेत्रीय शान्ति, सुरक्षा तथा सहयोग स्थापित करने के लिए क्षेत्रीय संगठनों की धारणा को स्वीकार किया गया है। अमरीका, फ्रांस, अरब लीग, भूतपूर्व सोवियत संघ तथा कई दूसरे राज्यों द्वारा दबाव डाले जाने के कारण संयुक्त राष्ट्र चार्टर में क्षेत्रीय संगठन की धारणा को मान्यता दी गई। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के आठवें अध्याय को पूर्णतया क्षेत्रीय संगठनों को समर्पित किया गया है। क्षेत्रीय संगठन अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा स्थापित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र की सहायता करने में असफल ही रहे हैं। यद्यपि गैर-सुरक्षा क्षेत्रीय संगठनों ने आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास को प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया की बहुत सी स्थितियों में काफी सहायता की।

बड़ी संख्या में क्षेत्रीय संगठनों सीमित अन्तर्राष्ट्रीय संगठन या क्षेत्रीय वर्ग कार्यकर्ता के रूप में राष्ट्रों के मध्य सम्बन्धों के संचालन में प्रभावशाली भूमिका निभाते रहे हैं तथा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यापारिक उद्देश्य के लिए इन संगठनों का निर्माण हुआ है, जिसमें 'सार्क' नामक संगठन भी आता है। जिसका उद्देश्य सम्बन्धित राष्ट्रों के लोगों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कल्याण की स्थापना कस अनवरत विकास करना है।

स्वतन्त्रता के बाद पं0 जवाहरलाल नेहरू के समय में भारत की विदेश नीति स्वतन्त्र दृष्टिकोण और गुटनिरपेक्षता की रही है। विश्व शान्ति को बनाए रखना, युद्ध की संभावनाओं को टालना, विवादों का मध्यस्थता या पंच निर्णय द्वारा निपटारा करना, जातिभेद, रंगभेद और साम्राज्यवाद का विरोध करना तथा राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना विदेश नीति के लक्ष्य रहे हैं। नेहरू ने किसी तरह के क्षेत्रीय संगठनों के निर्माण तथा विस्तार करने में रुचि नहीं ली। विश्व के दो गुटों में बंट जाने से भारत ने किसी भी गुट के साथ रहने में रुचि नहीं ली तथा दोनों से (अमरीका, सोवियत संघ) समान दूरी बनाए रखा तथा गुटों से अलग गुट निरपेक्षता की नीति पर कायम रहा। प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने भी नेहरू की विदेश नीति का पालन करते हुए किसी प्रकार के क्षेत्रीय संगठन का समर्थन नहीं किया, किन्तु प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी के कार्यकाल में (सन् 1971) भारत-सोवियत मैत्री सन्धि की गई तथा इसके बाद क्षेत्रीय संगठनों की महत्वा को स्वीकार किया जाने लगा तथा इसी क्रम में सार्क जैसे संगठन की स्थापना हुई। यह दक्षिण एशिया के सात पड़ोसी देशों की विश्व राजनीति में क्षेत्रीय सहयोग की पहली शुरुआत थी।

दक्षिण एशिया के क्षेत्र की जनता के कल्याण एवं उनके जीवन स्तर के सुधार, सामूहिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि, क्षेत्र की सामाजिक, सांस्कृतिक विकास में तेजी लाना, आपसी विश्वास सूझ-बूझ तथा एक दूसरे की समस्याओं का मूल्यांकन करना, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में सक्रिय सहयोग एवं पारस्परिक सहयाता में वृद्धि करना, अन्य विकासशील देशों के साथ सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाना, सामान्य हित के मामलों पर अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर आपसी सहयोग मजबूत करना सार्क के प्रारम्भिक उद्देश्य घोषित किए गये।

शोधार्थी ने इस शोध प्रबन्ध "दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति (प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के विशेष संदर्भ में") के माध्यम से भारतीय विदेश नीति के विकास एवं क्रियान्वयन में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री, श्रीमती इन्दिरा गाँधी, राजीव गाँधी, पी0वी0 नरसिंहाराव एवं अन्य प्रधानमन्त्रियों की विदेश नीति को रेखांकित करते हुए प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की दक्षिण एशिया के देशों के प्रति विदेश नीति का विस्तृत अध्ययन किया गया है। प्रधानमंत्री वाजपेयी के पूर्व प्रधानमन्त्रियों की अपने पड़ोसियों (विशेषकर दक्षिण एशिया) के साथ सम्बन्धों को दर्शाते हुए उनके समय (1999-2004) में पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, मालद्वीव के साथ सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने तेरह दिन के कार्यकाल में विदेश नीति के सम्बन्ध में जो निर्णय किया या तेरह महीने के कार्यकाल में उनके द्वारा पड़ोसियों के लिए जो नीति अपनाई गयी या तेरहवीं लोकसभा में उनके द्वारा (1999-2004) विदेश नीति के संदर्भ में जो कदम उठाए गए और उन विदेश नीतियों के माध्यम से विश्व में भारत की छवि पर असर को शोधार्थी द्वारा इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से रेखांकित किया गया है।

भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के समय में जो अन्तर्राष्ट्रीय छबि विकसित हुई है और एक ऐसी धारणा का विकास हुआ है जो वाजपेयी की विदेश नीति के सम्बन्ध में भारतीय राष्ट्रीय हितों के अनुरूप उनका अपना एक स्वतन्त्र सकारात्मक दृष्टिकोण है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उनके इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टिकोण से शीर्षक - ''दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति (प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के विशेष संदर्भ में)'' को विभिन्न अध्यायों में विभाजित किया गया है।

शोध प्रबन्ध के **प्रथम अध्याय**, में श्री अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का उल्लेख किया गया है, जिसके अन्तर्गत उनके संक्षिप्त जीवन परिचय, शिक्षा, दीक्षा एवं राजनीति में प्रवेश को रेखांकित किया गया है तथा प्रधानमंत्री बनने के पूर्व में उनके द्वारा विदेश नीति के संदर्भ में जो विचार व्यक्त किये गये थे तथा सांसद या विदेश मंत्री के समय जो भी विदेश नीति के सम्बन्ध में सक्रिय कार्य किया उसको प्रथम अध्याय में परिलक्षित किया गया है। अतः वाजपेयी के संक्षिप्त जीवन परिचय तथा राजनीति में प्रवेश एवं विदेश नीति सम्बन्धी विचारों को प्रथम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में रुचि को दर्शाया गया है, जिसके तहत उनके प्रधानमन्त्रित्वकाल में यूरोपीय महाद्वीप के कुछ प्रमुख देशों ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी तथा रूस के साथ सम्बन्धों को स्पष्ट किया गया है। अमेरिका, जिसकी विदेश नीति का प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ता है के साथ सम्बन्धों को भी इसी अध्याय के अन्तर्गत दर्शाया गया है। एशिया महाद्वीप के कुछ देशों जैसे-चीन, जापान के साथ भी सम्बन्धों को प्रधानमंत्री वाजपेयी के शासनकाल में दर्शाया गया है। इस प्रकार इस अध्याय में प्रधानमंत्री के रूप में वाजपेयी को विश्व के प्रमुख देशों के साथ सम्बन्धों की चर्चा की गई है, अर्थात् पड़ोसियों के साथ सम्बन्धों को रेखांकित किया गया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत दक्षिण एशिया के स्वरूप तथा राज्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों को दर्शाया गया है जिसमें भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, मालद्वीव, श्रीलंका देशों की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति तथा इन देशों के सम्बन्धों की प्रासंगिकता पर विचार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत दक्षिण एशिया के देशों पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रभाव को दर्शाया गया है जिसमें दक्षिण एशिया पर संयुक्त राष्ट्र संघ की नीतियों तथा अमेरिका का दक्षिण एशिया पर प्रभाव, रूस तथा चीन का दक्षिण एशिया पर प्रभाव, दक्षिण-पूर्व एशिया के 10 देशों के संगठन 'आसियान' एवं दक्षिण एशिया तथा दक्षिण एशिया के देशों के संगठन 'सार्क' बनने के बाद के इन देशों के आपसी प्रभाव को दर्शाया गया है। इस अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के साथ सम्बन्धों को दक्षिण एशिया के साथ दर्शाया गया है।

शोध प्रबन्ध के **पाँचवे अध्याय** में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के पूर्व प्रधानमन्त्रियों की विदेश नीतियों का संक्षिप्त अवलोकन किया गया है, जिसमें विदेश नीति के संस्थापक जवाहरलाल नेहरू से लेकर लाल बहादुर शास्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी, मोरारजी देसाई, चरण सिंह, राजीव गाँधी, वी०पी० सिंह, चन्द्रशेखर, पी०वी० नरसिंहाराव एवं एच०डी० देवेगौड़ा एवं इन्द्रकुमार गुजराल तक के शासनकाल की विदेशनीति का दक्षिण-एशिया के देशों के साथ सम्बन्धों पर चर्चा की गई है।

छठवें अध्याय के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में दक्षिण एशिया के प्रति प्रधानमंत्री वाजपेयी की विदेश नीति को सविस्तार अवलोकित किया गया है। प्रधानमंत्री वाजपेयी के तीनों कार्यकालों में पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, मालद्वीव, नेपाल, भूटान के साथ विदेश नीति को दर्शाकर उसकी प्रासंगिकता को बताया गया है जो कि शोधार्थी का मुख्य शोध विषय है। शोधार्थी ने अपने शोध विषय "दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति (प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के विशेष संदर्भ में)" के माध्यम से प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी का योगदान दर्शाकर भारतीय विदेश नीति के स्वरूप निर्धारण में उनके महत्व का प्रतिपादन करना है।

सप्तम अध्याय के अन्तर्गत उपरोक्त अध्यायों का सम्यक अनुशीलन करते हुए समीक्षात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। परिकल्पनाओं का परीक्षण करते हुए अन्त में कुछ सुझाव भी प्रस्तुत किये गये हैं।

अध्याय-प्रथम

अटल बिहारी वाजपेयी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(अ) संक्षिप्त जीवन परिचय

(ब) राजनीति में प्रवेश एवं विदेश नीति सम्बन्धी विचार

अटल बिहारी वाजपेयी - व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्य, युग प्रवर्तक, मार्गदर्शक पं० दीनदयाल उपाध्याय ने जिस जन्मजात कवि तथा ओजस्वी वक्ता, श्रेष्ठ चिन्तक, विचारक और लेखक, अत्यन्त दयालु एवं भावुक हृदय, वर्तमान राजनीति के उज्जवल नक्षत्र को अपने उत्तराधिकारी के रूप में इस राष्ट्र को सौंपा है, वे हैं - भारतीय जनता पार्टी के शीर्ष एवं वरिष्ठ नेता, लोकसभा में प्रतिपक्ष के नेता, पूर्व विदेशी मंत्री एवं तीन बार प्रधानमंत्री रह चुके श्री अटल बिहारी वाजपेयी।

अटल बिहारी वाजपेयी हमारे उन महान नेताओं में से हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन राष्ट्रहित एवं देश सेवा में लगा दिया है। उनमें भारतीयता, राष्ट्रीयता, मानवता, सहृदयता तथा उदारता कूट-कूट कर भरी है। उनकी वेष-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, बोली-बाणी सभी कुछ पूर्णरूपेण भारतीय है। ''उनका भारतीयता से ओत-प्रोत व्यक्तित्व किसे नहीं भाता? वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल पक्षधर हैं, देश हो या विदेश वे अपना व्याख्यान अधिकतर हिन्दी में ही बोलते हैं। वे मूलतः एक साहित्यकार हैं, क्योंकि साहित्य उन्हें विरासत में अपने परिवार से मिला है। यह भी कहा जाता है कि कविता उनकी घुट्टी में बचपन में पिलाई गयी है।''[1]

देश में वक्ता अनेक हुए तथा वर्तमान में उपस्थित हैं भी, लेकिन अटल जी की वाणी में जो सम्मोहन क्षमता है, उसकी वजह से उनका अपना एक अलग स्थान है। यही कारण है कि उनके भाषणों में साहित्यसेवी, बुद्धिजीवी तथा अन्य सामान्यजन समान रूप से भाग लेते हैं। उनके भाषणों की प्रशंसा संसद या संसद के बाहर उनके विरोधी भी मुक्त कंठ से करते हैं। वाजपेयी एक अपराजेय वक्ता, एक संवेदनशील कवि और एक विचारवान लेखक के साथ-साथ एक सच्चे इंसान हैं। वे जन-जन से प्रेम करने वाले जननायक है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय, देश-विदेश के संकुचित भावों से ऊपर उठकर अटल जी भारत के महान नेता है। उनमें कवि और राजनेता का समन्वित व्यक्तित्व है। ऐसा कहा जाता है कि वे अपने इस समन्वित व्यक्तित्व की वजह से ही बहुत जल्द भावुक हो जाते हैं।

अटल बिहारी वाजपेयी ने समय-समय पर कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं जिनमें- 'मृत्यु या हत्या', 'जनसंघ और मुसलमान', अमर-बलिदान', 'कैदी कविराज की कुण्डलियाँ। इसके अलावा 1995 में 'मेरी

इन्क्यावन कविताएँ नाम से उनकी कविताओं का प्रकाशन किया गया है। इसके अतिरिक्त वाजपेयी के भाषणों का संकलन भी प्रकाशित है, जिनमें लोकसभा में अटल जी, संसद में तीन दशक तथा 'न्यू डाइमेन्सन्स ऑफ एशियन फारेन पालिसी' है। जिनमें क्रमशः उनके द्वारा दिये गये भाषणों तथा विदेश मंत्री के रूप में दिये गये भाषणों का भी संकलन है। कुछ समय पहले प्रकाशित पुस्तकों 'कुछ लेख, कुछ भाषण', 'सुवासित पुष्प', तथा 'कवि राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी' प्रमुख हैं।

सन् 1957 से अब तक लोकसभा और राज्यसभा में जितने भी महत्वपूर्ण भाषण दिए हैं, वे सब 'मेरी संसदीय यात्रा' के इन चार खंडों के प्रकाशन के साथ ही पुस्तक रूप में पाठकों तक आ चुके हैं। "वर्ष-1998 तथा 1999 में बारहवीं लोकसभा में प्रधानमंत्री के रूप में सदन और संसार के महत्वपूर्ण मंचों से दिए गये आपके चुनिंदा भाषण 'संकल्प-काल' पुस्तक में समाहित है। 'अटलजीचे आह्वान' नाम से मराठी में वाजपेयी सार्वजनिक मंचों, सदन और पार्टी बैठकों के चुनिंदा संभाषणों का संग्रह कई वर्ष पहले प्रकाशित हो चुका है।"[2]

बहुमुखी प्रतिभा के धनी अटल बिहारी वाजपेयी ने विभिन्न पदों पर आसीन रहकर उनको सुशोभित किया है। पत्रकार के रूप में अपना जीवन शुरु करने वाले वाजपेयी ने विदेश मंत्री तथा तीन बार प्रधानमंत्री तक के पद को शोभायमान किया है।

(अ) संक्षिप्त जीवन परिचय

"अटल बिहारी वाजपेयी का जन्म 25 दिसम्बर, 1924 ई० को ग्वालियर (म०प्र०) में शिन्दे की छावनी वाले घर में हुआ था। जिस समय बालक अटल का जन्म हुआ था, उस समय पड़ोस के गिरिजाघरों से घण्टे के स्वर और तोपों के गोलों की आवाज आ रही थी, उसी दिन ईसामसीह का भी जन्म दिन था, तोपों की सलामी तो ईसामसीह के जन्म दिन के उपलक्ष्य में थी, किन्तु ऐसा प्रतीत हुआ कि तोपे नव-शिशु के जन्म पर सलामी दे रही हैं।"[3]

अटल बिहारी वाजपेयी के बाबा (पितामह) पं० श्यामलाल वाजपेयी उत्तर प्रदेश के आगरा जिले की बाह तहसील में स्थित ग्राम-बटेश्वर के रहने वाले थे। ग्राम-बटेश्वर अतीत में अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक धरोहर के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ एक प्राचीन महादेव का मन्दिर है, जिसे बटेश्वर महादेव के मन्दिर के नाम से जाना जाता है। "इसी बटेश्वर गाँव में प्राचीन काल में 'वाजपेय यज्ञ' हुआ बताया जाता है। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में ऊँचे बीस विस्वा वाले वाजपेयियों का सम्बन्ध इसी यज्ञ से माना जाता है। इसी वाजपेयी वंश में पंडित काशी प्रसाद वाजपेयी हुए, जो अपनी विद्वता के कारण समूचे क्षेत्र में विख्यात थे। ये काशी प्रसाद वाजपेयी अटल के पड़बाबा थे।" पं० काशी प्रसाद वाजपेयी के एक पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्री के विवाह के कुछ समय बाद ही उनका देहावसान हो गया था, उस समय उनके पुत्र पं० श्यामलाल वाजपेयी की उम्र कम थी। श्यामलाल वाजपेयी भी अपने पिता की तरह शिक्षा ग्रहण करने वाराणसी गए। वहाँ गुरुकुल में रहकर संस्कृत साहित्य का इतना गहन अध्ययन किया कि उन्हें अनेक ग्रंथ कंठस्थ हो गए।

पण्डित श्यामलाल वाजपेयी का विवाह भिण्ड जिले के अटेर गाँव में हुआ था। श्रीमती सुखदेवी आपकी धर्मपत्नी थी। कई शिशुओं के निधन के बाद केवल एक पुत्री तथा एक पुत्र बचे। "अच्छी शिक्षा दीक्षा के बाद श्यामलाल वाजपेयी ने अपनी पुत्री का विवाह लखनऊ के एक दीक्षित परिवार में किया तथा अपने पुत्र कृष्णबिहारी वाजपेयी का विवाह इटावा की सुमा देवी (सोमा) नामक कन्या के साथ किया। इनके बच्चों ने आगे चलकर इनका नाम 'कृष्णा' रखा तथा यही नाम प्रचलित हो गया।"[4] यही पण्डित कृष्ण बिहारी वाजपेयी अटल जी के पिता तथा श्रीमती कृष्णा देवी माता जी थीं।

अटल बिहारी वाजपेयी के पितामह पं० श्यामलाल वाजपेयी एक दूरदृष्टि वाले व्यक्ति थे, वह स्वयं जीवन पर्यन्त अपने गाँव बटेश्वर में रहे, किन्तु उन्होंने अपने पुत्र कृष्ण बिहारी वाजपेयी को

ग्वालियर में बसने की सलाह दी, क्योंकि बटेश्वर में जीविकोपार्जन का कोई अच्छा साधन नहीं था। ग्वालियर में कृष्ण बिहारी वाजपेयी अध्यापक बने। कृष्ण बिहारी वाजपेयी ने जब अध्यापन कार्य शुरु किया तब वे केवल हाईस्कूल पास थे। इसके बाद प्राइवेट इण्टर, बी०ए० और एम०ए० हिन्दी विषय में उत्तीर्ण किया।

पण्डित कृष्ण बिहारी वाजपेयी अध्यापन के साथ-साथ काव्य-रचना भी करते थे। उनकी कविताओं में राष्ट्रप्रेम के स्वर भरे रहते थे, 'सोते हुए सिंह के मुँह में हिरण कहीं घुस जाते' यह प्रसिद्ध पंक्ति उन्हीं की है। वे उन दिनों ग्वालियर के प्रख्यात कवि थे। पण्डित कृष्णबिहारी वाजपेयी गोरखी विद्यालय में अध्यापक, प्रधानाध्यापक और प्राचार्य रहे तथा आगे चलकर जिला विद्यालय निरीक्षक के सम्मानित पद पर प्रोन्नत हुए।

पण्डित कृष्ण बिहारी वाजपेयी के चार पुत्र अवध बिहारी वाजपेयी, सदाबिहारी वाजपेयी प्रेमबिहारी वाजपेयी तथा अटल बिहारी वाजपेयी और तीन पुत्रियाँ-विमला, कमला और उर्मिला हुई। "परिवार का विशुद्ध भारतीय वातावरण अटल जी के रग-रग में बचपन से ही रचने बसने लगा था। वे आर्य कुमार सभा के सक्रिय कार्यकर्ता बन गए, परिवार संघ के प्रति विशेष निष्ठावान था। परिणामतः अटल जी का झुकाव भी उसी ओर हुआ तथा वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयं सेवक बन गए। अध्ययन के प्रति बचपन से ही लगाव था। अटल जी ने स्वयं कहा है- "मेरे बाबा संस्कृत के जाने-माने विद्वान थे। गाँव के छोटे से घर में संस्कृत की सैकड़ों पुस्तकें थीं। बाबा गाँवों में घूम-घूमकर श्रीमद्भागवत की कथा बाँचते थे। इसी से परिवार का भरण-पोषण होता था। साहित्य-प्रेम बाबा से मेरे पिता जी को मिला। वे हिन्दी के अच्छे कवि थे। ऐसे परिवार ने मुझमें साहित्य के बीज स्वतः डाल दिए। मैं बचपन से ही बाबा की पोथियाँ लेकर पढ़ा करता था।"[5]

"अटल बिहारी वाजपेयी की माता श्रीमती कृष्णा देवी बहुत मृदुभाषी कोमल स्वभाव की थीं। रामायण का पाठ, तुलसी की पूजा, व्रत आदि में भी उनका मन रमता था। अपने बच्चों में उन्होंने यही संस्कार डाले थे। अक्रोधी स्वभाव, कितना भी बड़ा नुकसान क्यों न हो जाए, वह बच्चे को अपने क्रोध से भयाक्रान्त नहीं करती थीं, हाँ उन्हें समझाती थीं।"[6]

शिक्षा-दीक्षा :

जब वे पाँच वर्ष के हुए तो उन्हें पढ़ने के लिए पाठशाला भेज दिया गया। बालक अटल ने गोरखी विद्यालय से मिडिल की परीक्षा पास की। इसके बाद उन्हें विक्टोरिया कॉलेजिएट में (अब हरिदर्शन उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय) प्रवेश दिलाया गया, जहाँ से वे हाईस्कूल तथा इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात विक्टोरिया कॉलेज (अब शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय) से उच्च श्रेणी में हिन्दी साहित्य, संस्कृत साहित्य, अंग्रेजी साहित्य और सामान्य अंग्रेजी विषय लेकर बी०ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

"वाजपेयी सन् 1943 में विक्टोरिया कॉलेज के छात्र संघ के सेक्रेटरी तथा 1944 में उपाध्यक्ष चुने गए। उन दिनों छात्र संघ का अध्यक्ष कोई प्राध्यापक ही हुआ करता था। इसके अतिरिक्त 1942 में उन्हें डिबेट सेक्रेटरी भी चुना गया। वाजपेयी वाद-विवाद प्रतियोगिता में सदैव भाग लेते। वे कविताओं को स्वयं लिखते तथा मधुर स्वर में गाते थे तथा सदैव पुरस्कार प्राप्त करते थे।"[7]अटल बिहारी वाजपेयी वाद-विवाद प्रतियोगिता के अलावा कवि-सम्मेलनों में भी खूब जाते थे, और कविता पाठ करते थे। अटल जी जब बी०ए० के विद्यार्थी थे तो उस समय उनकी कई कविताएं प्रसिद्धि पा चुकी थीं।

अटल की इच्छा राजनीति विज्ञान में एम०ए० और कानून की शिक्षा प्राप्त करने की थी। उस समय विक्टोरिया कॉलेज में एम०ए० की पढ़ाई की व्यवस्था नही थी। इसलिए विद्यार्थी अटल ने कानपुर जाकर एम०ए० (राजनीति विज्ञान) और कानून दोनों की शिक्षा एक साथ शुरु करने का निश्चय किया। उन दिनों आगरा विश्वविद्यालय से एम०ए० तथा कानून की पढ़ाई एक साथ पढ़ने की अनुमति थी।

जब अटल बिहारी वाजपेयी शिक्षा केन्द्र डी०ए०वी० कॉलेज आए तब उनके पिता कृष्ण बिहारी वाजपेयी अपनी राजकीय सेवा से सेवानिवृत्त हो चुके थे। वह भी अटल के साथ कानपुर जाकर एल०एल०बी० में प्रवेश लिया। अटल जी ने एम०ए० (राजनीति विज्ञान) में तो प्रवेश ले ही लिया था। छात्रावास में भी पिता-पुत्र एक साथ रहते थे। एम०ए० में पूरे विश्वविद्यालय के चार उच्च स्थान डी०ए०वी० कॉलेज के हिस्से में आए। उन चारों में अटल जी का द्वितीय स्थान आया, प्रथम स्थान त्रिलोकीनाथ श्रीवास्तव का रहा जो अटल से केवल दो नम्बर आगे थे।

कानपुर में अटल बिहारी वाजपेयी पढ़ाई के अतिरिक्त अपना सर्वाधिक समय संघ के कार्यों में देते थे। खेलकूद तथा अन्य क्रियाकलापों में हिस्सा लेने के लिए उनके पास समय ही नहीं रहता था, पर साहित्यिक कार्यों में चढ़-बढ़कर हिस्सा लेते थे। सन् 1942 में जब महात्मा गाँधी ने 'अंग्रेजों, भारत छोड़ों' का नारा दिया तो ग्वालियर मे छात्र वर्ग की अगुवाई किशोर अटल कर रहे थे। आन्दोलन के उग्र रूप धारण करने पर पकड़-धकड़ चालू हो गई तो अटल को घर वालों ने बटेश्वर भेज दिया, लेकिन वहाँ वे बन्दी बना लिए गये तथा प्रथम जेल यात्रा करनी पड़ी।

एम०ए० प्रथम श्रेणी में पास करने के बाद अटल जी ने कानून का अन्तिम वर्ष पूरा नहीं किया और लखनऊ जाकर वहाँ के विश्वविद्यालय में पी-एच०डी० करने का बन बनाया। उन दिनों प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्र ही आई०ए०एस० की परीक्षा में बैठते थे या पी-एच०डी० करते थे। अटल जी सरकारी नौकरी तो करना नहीं चाहते थे, किन्तु अध्यापक बनना पसन्द करते थे। उनका अध्यापक बनने का सपना पूरा न हो सका।

सन् 1946 में लड्डुओं के प्रमुख नगर सण्डीला में अपने संघ के विस्तारक के रूप में कार्य किया। कुछ समय सण्डीला में रहने के बाद लखनऊ में 'राष्ट्र धर्म' के प्रथम सम्पादक नियुक्त किए गए। 'राष्ट्र धर्म' की अप्रत्याशित सफलता से उत्साहित होकर पं० दीनदयाल जी ने 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक प्रकाशित करने का निश्चय किया तथा अटल जी को इसका सम्पादक बना दिया। अटल जी ने नवम्बर, 1949 में लखनऊ से 'दैनिक स्वदेश' का सम्पादन प्रारम्भ कर दिया। परन्तु सात दिन के बाद ही सरकारी आदेश से प्रेस को सील कर दिया गया और 'दैनिक स्वदेश बन्द हो गया। ''1949 में ही काशी से 'चेतना' साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उसके संपादन का निमंत्रण मिलने पर अटल जी काशी चले गए।''[8]

''सन् 1950 में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से प्रतिबन्ध हटने के पश्चात ''दैनिक स्वदेश' का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ हुआ तथा अटल जी ने सम्पादन का भार पुनः संभाला। प्रथम आम चुनाव के बाद आर्थिक संकट के कारण ''दैनिक स्वदेश' बन्द हो गया तथा अटल जी का अन्तिम सम्पादकीय 'अलविदा' बहुत चर्चित रहा। ''दैनिक स्वदेश'' से अवकाश ग्रहण कर अटल जी दिल्ली चले गए और वहाँ उन्होंने 'वीर अर्जुन' का सम्पादन भार संभाला। 'वीर अर्जुन' का सम्पादन अटल जी के पत्रकार जगत का अन्तिम कार्य था।''[9]

गए। अटल जी ने अपनी योग्यता और सफलता के जो झण्डे गाड़े, उसमें उनकी पाकिस्तान के राष्ट्रपति जिया-उल-हक से भेंट एक प्रमुख स्थान रखती है। अटल जी ने U.N.O. में हिन्दी में भाषण देकर एक नई परम्परा डाली तथा हिन्दी का गौरव बढ़ाया।

सन् 1979 में कतिपय मतभेदों के कारण जनता पार्टी की सरकार के साथ-साथ जनता पार्टी भी टूट गई और जनसंघ घटक ने भी अलग होकर 6 April, 1980 को बम्बई में अपने एक विशाल अधिवेशन में एक नये दल 'भारतीय जनता पार्टी' का गठन किया। वाजपेयी इस दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाए गए। इस महा अधिवेशन में अटल जी का ऐतिहासिक स्वागत हुआ। 1980 में अटल जी सातवीं लोकसभा के लिए नई दिल्ली से निर्वाचित हुए और भारतीय जनता पार्टी संसदीय दल के नेता चुने गये। सन् 1984 की लोकसभा में अटल जी ग्वालियर संसदीय क्षेत्र से चुनाव लड़े, किन्तु ग्वालियर के महाराज माधवराव सिन्धिया से चुनाव हार गए और 1986 में उन्हें पुनः राज्यसभा के लिए निर्वाचित किया गया। सन् 1991 में उन्हें उ0प्र0 के लखनऊ और म0प्र0 में विदिशा संसदीय क्षेत्रों से विजय प्राप्त हुई। विदिशा से त्यागपत्र दे दिया तथा लखनऊ का प्रतिनिधित्व करना स्वीकार किया।

1996 के लोकसभा चुनाव में अटल जी पुनः लखनऊ से चुने गए। इस निर्वाचन में भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर आयी और वाजपेयी को 16 May, 1996 को दोपहर 12 बजे बी0जे0पी0 के प्रथम प्रधानमंत्री के नाते शपथ दिलाई गई। वाजपेयी की सरकार केवल 13 दिन चली, क्योंकि समता पार्टी, हरियाणा विकास पार्टी, अकाली दल एवं शिवसेना को छोड़कर शेष सभी तेरह छोटे-बड़े दलों के इकट्ठे होकर भा0ज0पा0 के विरुद्ध मत देने के कारण अटल जी की सरकार 28 May, 1996 को संसद में विश्वास मत के समय बहुमत प्राप्त न कर सकी और उसी समय प्रधानमंत्री वाजपेयी ने तत्काल राष्ट्रपति को त्याग पत्र दे दिया।

सन् 1998 के चुनावों में पुनः अटल बिहारी वाजपेयी लखनऊ से जीते तथा दोबारा प्रधानमंत्री बने। 19 March, 1998 को वाजपेयी के नेतृत्व में 'राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन सरकार' बनी तथा 28 March, 1998 को इसने लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध कर दिया। यह सरकार 13 महीने चली। 13वीं लोकसभा के लिए चुनाव हुए जिसमें वाजपेयी पुनः लखनऊ से निर्वाचित हुए तथा N.D.A. पुनः वाजपेयी के नेतृत्व में सत्ता में आई। 13.10.1999 को पुनः वाजपेयी को तीसरी बार प्रधानमंत्री की शपथ दिलवाई गई तथा 06.02.2004 तक राष्ट्रीय गठबन्धन सरकार अस्तित्व में बनी रही। 14वीं लोकसभा के चुनावों में भी अटल बिहारी वाजपेयी लखनऊ संसदीय क्षेत्र से चुनाव जीते तथा आगे के चुनावों में न खड़े होने की बात कही।

वाजपेयी का संसद में कार्य करने का निम्न क्रम रहा -

श्री अटल बिहारी वाजपेयी संसद में

1957-1962, दूसरी लोकसभा
बलरामपुर (उ०प्र०) का प्रतिनिधित्व

|

1962-1967, राज्यसभा
उ०प्र० का प्रतिनिधित्व

|

1967-1971 चौथी लोकसभा
बलरामपुर (उ०प्र०) का प्रतिनिधित्व

|

1971-1977, पाँचवी लोकसभा
ग्वालियर (म०प्र०) का प्रतिनिधित्व

|

1977-1979 छठी लोकसभा
नई दिल्ली का प्रतिनिधित्व
(जनता सरकार में भारत के विदेशी मंत्री)

|

1980-1984, सातवीं लोकसभा
नई दिल्ली का प्रतिनिधित्व

|

1986-1991 राज्य सभा
म०प्र० का प्रतिनिधित्व

|

1991-1996 दसवीं लोकसभा
लखनऊ (उ०प्र०) का प्रतिनिधित्व
(सदन में प्रतिपक्ष के नेता)

|

1996-1998 ग्यारहवीं लोकसभा
लखनऊ (उ०प्र०) का प्रतिनिधित्व
(16 से 28 मई, 1998 तक भारत के प्रधानमंत्री) प्रथम बार

|

1998-1999 बारहवीं लोकसभा
लखनऊ (उ०प्र०) का प्रतिनिधित्व
(भारत के प्रधानमंत्री) द्वितीय बार

|

1999-2004 तेरहवीं लोकसभा
लखनऊ (उ०प्र०) का प्रतिनिधित्व
(भारत के प्रधानमंत्री) तृतीय बार

|

मई 2004 से चौदहवीं लोकसभा
लखनऊ (उ०प्र०) का प्रतिनिधित्व

अपने संसदीय जीवन में वाजपेयी विभिन्न समितियों के सदस्य तथा अध्यक्ष रहे। 25 जनवरी, 1992 को वाजपेयी को 'पद्म विभूषण' से अलंकृत किया गया। 20 जनवरी, 1993 को उन्हें कानपुर विश्वविद्यालय ने मानद् डी०लिट० की उपाधि प्रदान की। 28 सितम्बर, 1992 को उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने 'हिन्दी गौरव' के सम्मान से सम्मानित किया। अगस्त, 1994 को 'लोकमान्य तिलक सम्मान' दिया गया। 17 अगस्त, 1994 को संसद ने उन्हें सर्वसम्मति से 'सर्वश्रेष्ठ सांसद' के सम्मान से सम्मानित किया। जब वाजपेयी को 'सर्वश्रेष्ठ सांसद' के सम्मान से सम्मानित किया गया था उस अवसर पर उन्होंने कहा था- "मैं अपनी सीमाओं से परिचित हूँ, मुझे अपनी कमियों का अहसास है, निर्णायकों ने अवश्य ही मेरी न्यूनताओं को नजरअन्दाज करके मुझे निर्वाचित किया है, सद्भाव में अभाव दिखाई नहीं देता है। यह देश बड़ा अद्भुत है, बड़ा अनूठा है, किसी भी पत्थर को सिन्दूर लगाकर अभिवादन किया जा सकता है।"[11]

सादा जीवन व्यतीत करने वाले अटल बिहारी वाजपेयी उच्च विचारों के व्यक्ति हैं। बोलने से अधिक वह पढ़ते हैं, पढ़ने से अधिक वह मनन करते हैं। एक महापुरुष के यही लक्षण हैं जो उनमें स्पष्ट नजर आते हैं। वर्तमान में अटल बिहारी वाजपेयी देश के महान तथा राष्ट्रीय क्षितिज पर एक स्वच्छ छबि वाले राजनेता माने जाते हैं, किन्तु साहित्य प्रेमियों को उनका कवि रूप भी बहुत प्रिय है। राजनीति में रहते हुए भी वे अजातशत्रु हैं। उनमें राष्ट्रभक्ति कूट-कूट कर भरी है। स्वयं वाजपेयी के शब्दों में - "हम जिएंगे तो देश के लिए, मरेंगे तो देश के लिए। इस पावन धरती का कंकर-कंकर शंकर है, बिन्दु-बिन्दु गंगाजल है। भारत के लिए मैं हँसते-हँसते प्राण न्यौछावर करने में गौरव और गर्व का अनुभव करूँगा।"

अपने प्रधानमन्त्रित्वकाल में वाजपेयी ने जो उपलब्धियाँ हासिल की हैं उन्हें सहज शब्दों में कहा जा सकता है- जो कहा वह कर दिखाया। प्रधानमंत्री पद पर आसीन होने के बाद भी उनकी कथनी और करनी एक ही बनी रही। अपनी बात को स्पष्ट और दृढ़ शब्दो में कहना अटल जी जैसे निर्भय और सर्वमान्य व्यक्ति के लिए सहज और संभव रहा है। मुद्दा चाहे पड़ोसियों से संबंध सुधारने की दिशा में चीन यात्रा का हो, लाहौर बस यात्रा हो या कारगिल से दुश्मन को खदेड़ना, आगरा वार्ता हो या फिर से खेल संबंधों की बहाली, परमाणु परीक्षण हो या डब्लू०टी०ओ० पर दो टूक राय या अमेरिका की मध्यस्थता को ठुकराने का फैसला।

अटल जी के शासनकाल में देश की अर्थव्यवस्था ने कई ऊँचाइयों को छुआ है। विदेशी मुद्रा भंडार, सूचना प्रौद्योगिकी, आउट-सोर्सिंग, किसान बीमा योजना, किसान क्रेडिट कार्ड, प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क परियोजना, स्वर्ण चतुर्भुज राजमार्ग, नदियों का एकीकरण, सागर माला, दूरसंचार सुविधाओं का विकास, ऊर्जा क्षेत्र का विस्तार जैसी दर्जनों योजनाएँ हैं जो अटल जी के कार्यकाल में शुरु हुई और जो भविष्य में भारत को विकसित देशों की पंक्ति में स्थान दिलाने में सफल होंगी।

भारतीय राजनीति को अटल जी का योगदान है-

''समन्वय की राजनीति, सामंजस्य की राजनीति, मिल-जुलकर राष्ट्रहित में आगे बढ़ने की दिशा देना।''[12]

वाजपेयी के विदेश नीति सम्बन्धी विचार

अटल बिहारी वाजपेयी की प्रारम्भ से ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में रुचि रही है। भारतीय विदेश नीति की ओर रूझान एक पत्रकार के रूप में देखा जा सकता है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि एक पत्रकार को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सभी प्रकार की घटनाओं का अध्ययन करना पड़ता है। वाजपेयी ने 1947 में लखनऊ से पत्रकार जगत में प्रवेश किया और अपने पत्रकारिता के जीवन में 'राष्ट्रधर्म', 'पाञ्चजन्य', 'दैनिक स्वदेश', 'चेतना' एवं 'वीर अर्जुन' जैसे समाचार-पत्रों में काम किया। इसलिए यह स्वाभाविक है कि अटल बिहारी वाजपेयी का भारतीय विदेशी नीति सम्बन्धी रुझान एक पत्रकार के रूप में हुआ।

अटल जी की दृष्टि में पाकिस्तान का निर्माण सैनिक, आर्थिक, सामाजिक और प्राकृतिक रूप में एक भयानक दूरगामी अदम्य भूल थी। 2 सितम्बर, 1957 को संसद में पहली बार विदेश नीति पर अत्यन्त महत्वपूर्ण सारगर्भित, चेतावनीपूर्ण तथा सुझावों से युक्त भाषण देकर अटल जी ने भारतीय विदेश नीति में अपनी गहरी आस्था को परिलक्षित किया। "इस प्रकार 1957 से अटल जी ने भारत की विदेश नीति पर विचार व्यक्त करना प्रारम्भ किया। अटल जी ने पण्डित नेहरू की विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का गम्भीर आलोचनात्मक अध्ययन प्रारम्भ किया। उनका दृष्टिकोण विस्तृत, प्रतिक्रियाविहीन यथार्थपरक और राष्ट्रीयहितों की रक्षा के प्रति सजग रहा। अतः अटल जी की विदेश नीति व्यवहारिकता, रचनात्मकता तथा भारतीय हितों की खोज के प्रति रही। वाजपेयी प्रधानमंत्री पण्डित नेहरू की विदेश नीति के निर्गुट राजनीति के प्रबल पक्षधर बन गए।"[13]

"पण्डित नेहरू भी संसद में बारम्बार उनके विदेश नीति सम्बन्धी विचारों का उल्लेख करके तथा विदेशी राजनीतिज्ञों से परिचय करवाकर अटल जी को परोक्ष रूप से प्रोत्साहित किया तथा उन्हें अपनी विदेश नीति का विपक्षी और युवा आलोचक बताया।"[14] पण्डित नेहरू अटल जी के प्रच्छत्र गुरु थे और अटल जी उनके प्रच्छन्न शिष्य थे। अटल जी के दूसरे गुरु पूज्यनीय माधव सदाशिव गोलवलकर थे, जिनकी इच्छा अटल जी के लिए आदेश होती थी। "पं० नेहरू ने भारत की विदेश नीति और आदर्शों को गढ़ा, परन्तु नेहरू से भी अधिक सक्षमता से अटल जी ने उसकी व्याख्या की तथा विदेश नीति के सांस्कृतिक और व्यावहारिक आदर्श, वसुधैव कुटुम्बकम्, पड़ोसियों से सम्बन्ध और राष्ट्रीय हित की संकल्पना आदि पर विशेष जोर दिया।"[15]

अटल बिहारी वाजपेयी ने अपने संसदीय जीवन में जनसंघ के नेता के रूप में, सांसद के रूप में, विदेश मंत्री के रूप में, भारतीय जनता पार्टी के नेता के रूप में तथा तीन बार भारतीय प्रधानमंत्री के रूप में विदेश नीति व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर अपने जो विचार प्रकट किये हैं, उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वाजपेयी का प्रारम्भ से ही भारतीय विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में रुचि रही है, जो जनता पार्टी के शासनकाल में एक वैज्ञानिक रचनात्मक विश्वस्तरीय विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय राज़नीति में परिवर्तित हो गयी तथा 'राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन सरकार' के शासनकाल में वाजपेयी की विदेश नीति भारतीय राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित तथा विकसित करने का प्रयास करती रही।

जब 1947 में पं० नेहरू प्रथम बार भारत के प्रधानमंत्री बने थे तब वे हृदय से इतने पवित्र, विश्व नैतिकता के प्रति इतने आस्थावान थे कि वह सोचते थे, कि जब भारत विशुद्ध नैतिकता, मानवता और विश्व कल्याण की बात अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रस्तावित करेगा तो अधिकांश देश इसे अवश्य स्वीकार करेंगे। इसी दिवास्वप्न को लेकर उन्होंने विदेश नीति का अनूठा निर्धारण और संचालन किया। वाजपेयी ने विपक्षी संसद सदस्य होते हुए भी नेहरू जी की विदेश-नीति की प्रशंसा तो की परन्तु उन्होंने सदैव अपने भाषणों से उनकी स्वप्नवत् कल्पनाशीलता अथवा दिवास्वप्नों को त्याग, चेतावनी, परामर्श और राष्ट्रीय हितों की संकल्पना के माध्यमों से यथार्थ और व्यवहार के धरातल पर लाने का प्रयत्न किया।

अटल जी ने नेहरू की विदेश नीति की द्वेष रहित आलोचना भी की। इसी कारण उसका हृदय नेहरू की विदेश नीति का प्रशन्सक बन गया और वह उनकी निर्गुट राजनीति के प्रबल पक्षधर बन गए। अतः कहा जा सकता है कि पं० नेहरू अटल जी के विदेश नीति के गुरु थे। वाजपेयी के शब्दों में - "यह स्वतन्त्रता का युग है, साम्राज्यवाद समाप्ति पर है। जो देश स्वाधीन हुए हैं उनके सामने सबसे बड़ा सवाल आर्थिक, सामाजिक, पुनर्निर्माण का है। इसके लिए आत्मनिर्भरता और पारस्परिक निर्भरता दोनों को सहारा लेना होगा। आत्म-निर्भरता के लिए कुछ मात्रा में आत्मकेन्द्रित होना जरूरी है, लेकिन हम जिस विश्व में रहते हैं, उसमें राष्ट्र छबि ठीक तरह उभरे, इसके लिए भी लगातार प्रयत्न करने होते हैं।

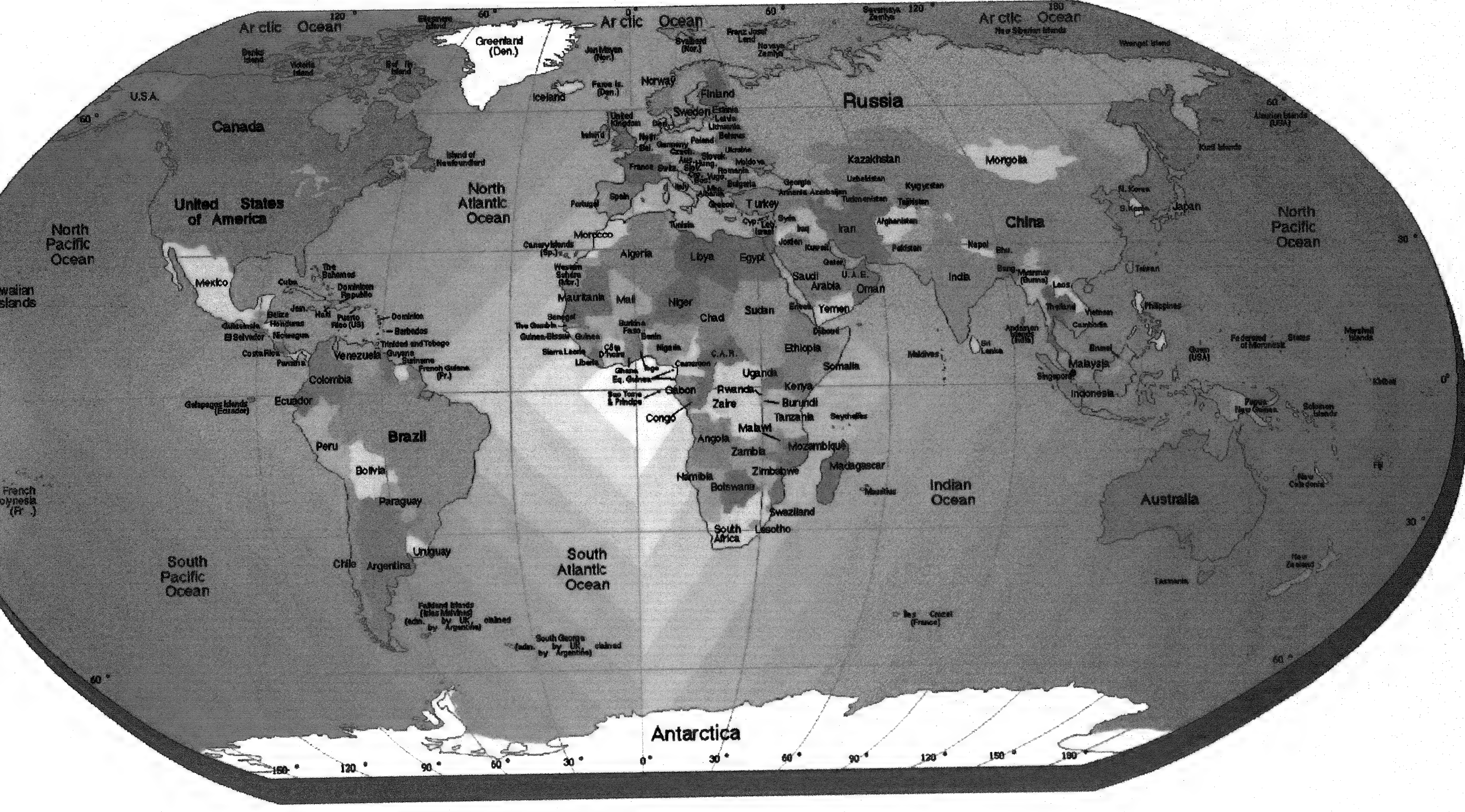
राष्ट्र का दृष्टिकोण सही समय में सही ढंग से पेश किया जाय, इसके लिए भी लगातार प्रयत्न करने होते हैं तथा इसके लिए कूटनीतिक सम्बन्धों की जरूरत है। पारस्परिक निर्भरता के लिए व्यापार

आर्थिक सहयोग तथा सहायता निरन्तर वार्तालाप तथा समझौता वार्ता को महत्वपूर्ण बना देते हैं। यह कार्य राजदूतों के द्वारा हो सकता है।''[16]

प्रधानमंत्री बनने के पश्चात वाजपेयी ने विदेश-नीति के सम्बन्ध में बोलते हुए एक चर्चा में कहा था कि, ''हमारी सरकार शान्ति, समानता और सहयोग के मूल्यों पर आधारित विदेश नीति का दृढ़तापूर्वक पालन करेगी। हमारा तात्कालिक लक्ष्य पाकिस्तान सहित अपने सभी पड़ोसियों से सम्बन्ध सुधारना है।'' वाजपेयी की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में रुचि के सम्बन्ध में पूर्व प्रधानमंत्री श्री पी०वी० नरसिंहराव ने अपने भाषण में कहा कि - ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर अटल जी की जानकारी और विदेश मंत्री के तौर पर उनके अनुभव के कारण आज विश्व में वह अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति के शीर्ष विशेषज्ञों में से एक हैं।''

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा (संपादक) : कुछ लेख कुछ भाषण – अटल बिहारी वाजपेयी, किताब घर, नई दिल्ली, 1996, पृ0–242.
2. डॉ0 ना0मा0 घटाटे (संपादक) : अटल बिहारी वाजपेयी–गठबन्धन की राजनीति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0–06.
3. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा : कवि राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी, किताब घर नई दिल्ली, 1997, पृ0–30.
4. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा (संपादक) : कुछ लेख कुछ भाषण–अटल बिहारी वाजपेयी, किताब घर, नई दिल्ली, 1996, पृ0–244.
5. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा : कुछ लेख कुछ भाषण–अटल बिहारी वाजपेयी, किताब घर, नई दिल्ली, 1996, पृ0–244.
6. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा : कवि राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी, किताब घर, नई दिल्ली, 1997, पृ0–32–33
7. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा : कवि राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी, किताब घर, नई दिल्ली, 1997, पृ0–37.
8. अस्थाना एवं दीक्षित (संकलनकर्ता) : सुविकसित पुष्प अटल बिहारी वाजपेयी के श्रेष्ठतम भाषण, दीनदयाल उपाध्याय प्रकाशन, लखनऊ, 1997, पृ0–06.
9. अस्थाना एवं दीक्षित (संकलनकर्ता) : सुविकसित पुष्प अटल बिहारी वाजपेयी के श्रेष्ठतम भाषण, दीनदयाल उपाध्याय प्रकाशन, लखनऊ, 1997, पृ0–07.
10. हिन्दी संवाद समिति : यूनीवार्ता को दिए एक साक्षात्कार में अटल बिहारी वाजपेयी.
11. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा : कुछ लेख कुछ भाषण–अटल बिहारी वाजपेयी, किताब घर, नई दिल्ली 1996, पृ0–242–243.
12. डा0 ना0मा0 घटाटे : अटल बिहारी वाजपेयी-गठबन्धन की राजनीति, प्रभात प्रकाशन, 1996, पृ0–242–243.
13. एम0सी0 छागला : भारत की विदेश नीति; अटल बिहारी वाजपेयी, नई दिल्ली–1997, पृ0–39.
14. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा : कवि राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी, किताब घर, नई दिल्ली, 1997, पृ0–197.
15. अमृत–अटल (डॉ0 पूनमचन्द्र तिवारी), पृ0 193–195.
16. दैनिक हिन्दुस्तान (नई दिल्ली), 2 मई, 1977.



Arctic Ocean
Greenland (Den.)
Iceland
Canada
U.S.A.
United States of America
Mexico
North Pacific Ocean
North Atlantic Ocean
South Pacific Ocean
South Atlantic Ocean
Indian Ocean
Russia
Kazakhstan
Mongolia
China
Japan
India
Iran
Turkey
Norway
Sweden
Finland
Spain
Portugal
France
Morocco
Algeria
Libya
Egypt
Mali
Niger
Chad
Sudan
Mauritania
Ethiopia
Somalia
Kenya
Uganda
Rwanda
Burundi
Zaire
Tanzania
Congo
Gabon
C.A.R.
Angola
Zambia
Malawi
Mozambique
Zimbabwe
Namibia
Botswana
Swaziland
Lesotho
South Africa
Madagascar
Saudi Arabia
Yemen
Oman
U.A.E.
Venezuela
Colombia
Ecuador
Peru
Brazil
Bolivia
Paraguay
Uruguay
Chile
Argentina
Malaysia
Indonesia
Singapore
Philippines
Australia
Antarctica

अध्याय-द्वितीय

प्रधानमन्त्री के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

(अ) वाजपेयी एवं यूरोप

(ब) वाजपेयी एवं अमरीकी महाद्वीप

(स) वाजपेयी एवं एशिया

(द) वाजपेयी एवं दक्षिण एशिया

प्रधानमंत्री के रूप में वाजपेयी एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

अटल बिहारी वाजपेयी एक ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने पं० जवाहर लाल नेहरू, इन्दिरा गाँधी के बाद तीन बार प्रधानमंत्री बनने का अवसर प्राप्त किया। मई, 1996 को केवल तेरह दिन के लिएं प्रथम बार प्रधानमंत्री बने, इसके बाद मार्च, 1998 को दूसरी बार प्रधानमंत्री का पद सुशोभित किया, फिर अक्टूबर, 1999 को तीसरी बार भारत के प्रधानमंत्री बने जो फरवरी, 2004 तक सत्तासीन रहे। अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्रित्वकाल में भारतीय विदेश नीति पर बड़ी सक्रियता तथा सुदृढ़ता से ध्यान दिया गया जिसकी विश्व में प्रशंसा हुई तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत को एक परमाणु सम्पन्न जिम्मेदार देश तथा एक शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।

अपने लगभग 6 वर्षो के कार्यकाल में (तीन बार प्रधानमंत्री) अटल बिहारी वाजपेयी ने सभी देशों के साथ शान्तिपूर्वक मित्रता बनाने की नीति का अनुसरण किया तथा शीत युद्ध के समय आई झुकाव की नीति को सही करने का भरसक प्रयास किया। जिन देशों के साथ भारत के सम्बन्धों में खटास थी, उनसे बातचीत, विचार-विमर्श, दौरों के द्वारा समस्या को सुलझाने का प्रयास किया। अमरीका के साथ सम्बन्धों में आई कमी (11 मई, 13 मई 1998 के परमाणु परीक्षण के कारण) को अन्ततः प्रगाढ़ मित्रता में बदलने का भरसक प्रयास किया तथा सफलता भी प्राप्त किया। चाहे अमरीकी महाद्वीप के देश हो या अफ्रीकी महाद्वीप के सभी के साथ मिलकर भेदभावहीन राजनीतिक सम्बन्धों को मजबूत करने का प्रयास किया। विशेषकर एशिया महाद्वीप के देशों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के मामलों में दूसरे महाद्वीप के देशों की तुलना में प्राथमिकता के बिन्दु पर रखा।

दक्षिण एशिया के देशों के साथ भारत के सम्बन्धों (विशेषकर पाकिस्तान, बांग्लादेश) में धीरे-धीरे काफी दरार पड़ चुकी थी को आपस में बातचीत के द्वारा सुलझाने का युद्ध स्तर पर प्रयास किया तथा एक सीमा तक सफलता का वरण भी किया। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अपनी विदेश नीति के द्वारा जो धाक, प्रतिष्ठा तथा मान, सम्मान विश्व में प्राप्त किया जिसके कारण भारत को बड़े तथा शक्तिशाली देश भी अपना सहमित्र स्वीकार करने में गर्व का अनुभव करने लगे। ईमानदार छवि, कवि हृदय वाजपेयी ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज में अपने देश भारत को एक विशेष स्थान दिलवाने में कामयाब हुए।

(अ) वाजपेयी एवं यूरोप

भारत का यूरोपीय राष्ट्रों के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है तथा इसे और निकटता प्रदान करने की आवश्यकता है। व्यापार, पूँजी निवेश, प्रौद्योगिकी-हस्तान्तरण के स्रोतों के रूप में भारत के लिए इनके साथ सम्बन्धों की प्रगाढ़ता नितान्त जरूरी है। यूरोपीय राष्ट्रों को दो तिहाई व्यापार आपस में अर्थात यूरोपीय संघ के अन्दर होता है। भारत का काफी समय से पारम्परिक एवं सुदृढ़ व्यापारिक यूरोपीय संघ के बहुत से देशों-ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, नीदरलैण्ड, इटली, बेल्जियम, लक्जमबर्ग, स्वीडन, डेनमार्क आदि के साथ हैं। भारत का इन देशों के साथ सम्बन्धों में लगातार वृद्धि हो रही है।

1 जनवरी, 1995 को मुम्बई में एक यूरोपीय व्यवसाय सूचना केन्द्र की स्थापना कर दी गई थी। इस प्रक्रिया को त्वरण प्रदान करने के लिए भारत-यूरोप पार्टनेरिएट-1998 के आरम्भ में गठित करने का विचार किया गया था। हाँलांकि भारत अभी तक यूरोपीय बाजार में वास्तविक जोर आजमाइस नहीं कर पाया है या फिर उसकी प्रौद्योगिकी और अतिरिक्त पूँजी पाने का सफल प्रयास नहीं कर पाया है फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत यूरोपीय राष्ट्रों से आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों स्तर से बेहतर सम्बन्ध बनाने का पक्का इरादा रखता है। यूरोपीय राष्ट्रों के भीतर भी अन्य कई प्रकार के परिवर्तन जारी है। जिनसे भारत वर्तमान समय में फायदा उठाना चाहता है। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी इस दिशा में विशेष प्रयत्नशील रहे।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने न केवल अपने पड़ोसियों के साथ सम्बन्धों को सुधारने के लिये निरन्तर प्रयास किये बल्कि दूसरे महाद्वीप के देशों के साथ भी सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने का भरसक प्रयास किया एवं इस प्रयास में उन्हें काफी सफलता भी मिली। आज वैश्विक परिदृश्य में किसी भी महाद्वीप के देश का यूरोप जैसे विकसित, तकनीकी रूप से दक्ष तथा लोकतंत्र समर्थक महाद्वीप के साथ सम्बन्धों को बढ़ाना एक आवश्यक कदम माना जाता है। जिसे भारत ने प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बखूबी निभाया तथा इस महाद्वीप के देशों के साथ सम्बन्धों को एक नई गति प्रदान की।

भारत-ब्रिटेन सम्बन्ध

पश्चिमी यूरोप के एकजुट होने से 31 दिसम्बर, 1992 की मध्यरात्रि में यूरोपीय संधि लागू हुई। इसके लागू होने के परिणामस्वरूप यूरोप-12 जो बाद में यूरोप-15 के रूप में बदला विश्व में सबसे बड़ा बाजार बना है। अगर यूरोपीय संघ शेष बचे यूरोपीय क्षेत्र को भी इस बाजार में शामिल करने में सफल हुआ तो लगभग 50 करोड़ यूरोपीय जनता को इसमें शामिल कर लेगा, फिर ऐसी अर्थव्यवस्था की रचना करने में सफल होगा जिसकी बराबरी शायद ही कोई और कर सकेगा। अतःभारत के लिए यूरोप समान रूप से महत्वपूर्ण है। यूरोपीय संघ इकाई के रूप में भी भारत के साथ सम्बन्धों में सबसे बड़ा साझेदार है।

ब्रिटेन यूरोपीय राष्ट्रों में एक प्रमुख स्थान रखता है और ब्रिटेन के साथ भारत के सम्बन्धों में मूलभूत सक्रियता भी रही है। अतः भारत और ब्रिटेन के सम्बन्धों में कई उतार-चढ़ाव आए पर निश्चय ही इनके बीच अन्तः सम्बन्ध बना रहा। ब्रिटेन में भारतीय समुदायों की विशाल मौजूदगी ने भारत के साथ ब्रिटेन के सम्बन्धों में कुछ देरी और रुकावट के बावजूद अन्तः सम्बन्धों को विकसित किया, लेकिन उल्लेखनीय बात यह रही कि वाजपेयी एवं प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर सरकार के बीच लन्दन में इस दौरान न केवल नया बल्कि विशेष प्रकार का सम्बन्ध इस पारम्परिक विश्वास पर विकसित हुआ कि भारत श्रमिकों का खास हमदर्द रहा है। इस सम्बन्ध में आर्थिक और राजनीतिक दोनों तरह के मैत्री सम्बन्ध बढ़ाए।

चूँकि भारत एक गुट निरपेक्ष देश है तथा ब्रिटेन अमरीका का पिछलग्गू है जो इराक पर अमेरिकी हस्तक्षेप से स्पष्ट है। "अटल बिहारी वाजपेयी सरकार द्वारा भारत की परमाणु नीति में भी परिवर्तन किया गया था जो मई, 1998 में पोखरण-2 से स्पष्ट है। अतः अमरीका का पिछलग्गू होने के परिणामस्वरूप ब्रिटेन ने भी अमरीकी आर्थिक प्रतिबन्धों का भारत के प्रति समर्थन किया था, लेकिन ब्रिटेन उस हद तक कठोर नहीं रहा जितना कि अमरीका ने भारत के प्रति प्रदर्शित किया था।"[1]

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में "राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन सरकार" के समय भारत-ब्रिटेन सम्बन्धों के कई महत्वपूर्ण चरण हैं लेकिन भारत-ब्रिटेन सम्बन्धों में एक नया मोड़ उस समय प्रकट हुआ जब वाजपेयी अमेरिका में हुए आतंकवादी हमलों के बाद बदलते विश्व परिदृश्य

में तीन देशों की 10 दिवसीय यात्रा पर 12 नवम्बर, 2001 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर से मुलाकात की। वाजपेयी ने सर्वप्रथम रूस तथा अमरीका और उसके बाद ब्रिटेन की यात्रा आरम्भ की। ब्रिटेन की इस यात्रा के दौरान मुख्य रूप से अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, अफगानिस्तान की भावी सरकार और वहाँ की जर्जर अर्थव्यवस्था सम्बन्धी मुद्दे छाये रहे। इसके बावजूद भारत ब्रिटेन के बीच द्विपक्षीय सहयोग के अनेक मसलों पर निर्णायक फैसले लिए गए। भारत ब्रिटेन सम्बन्धों को विभिन्न तथ्यों के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है- जो वाजपेयी के शासनकाल में घटित हुए :-

(1) परमाणु विस्फोट तथा भारत-ब्रिटेन सम्बन्ध :-

भारत ने 11 व 13 मई, 1998 में अपनी परमाणु नीति में विस्फोटक परिवर्तन किया तथा अपने को एक परमाणु शस्त्र धारक देश घोषित कर परमाणु शस्त्र क्लब के देशो में सम्मिलित हो गया। अमरीका ने इसकी व्यापक निन्दा की तथा यह प्रकट भी कर दिया कि वह भारत के परमाणु परीक्षण का विरोध करता था। ब्रिटेन चूँकि अमरीकी चश्में से भारत के परमाणु परीक्षणों को देखता था अतः उसका विरोध किया जाना स्वाभाविक था। "अमरीका ने भारत के परमाणु परीक्षणों को मान्यता नहीं दी तो प्रतिक्रियास्वरूप ब्रिटेन ने भी भारतीय परमाणु परीक्षणों को मान्यता देने से इंकार करते हुए भारत को स्पष्ट संकेत दिए कि उसे अब तुरन्त सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर कर देना चाहिए तथा आगे परमाणु परीक्षण न करने का संकल्प लेना चाहिए। बाद में अमरीका ने भारतीय सुरक्षा व्यवस्थाओं की मजबूरी व आवश्यकता को स्वीकार करते हुए माना कि भारतीय परमाणु परीक्षण वैध हैं लेकिन ब्रिटेन ने इसे बाद में ही मान्यता प्रदान की।"[2]

(2) कारगिल संघर्ष (1999) तथा ब्रिटिश दृष्टिकोण :

भारत ब्रिटेन सम्बन्धों का स्पष्ट दृष्टिकोण तथा ब्रिटेन का भारत के प्रति रूख उस समय समझ में आया जब पाकिस्तान द्वारा भारत के कारगिल क्षेत्र में घुसपैठियों द्वारा अवैध रूप से घुसपैठ की कार्यवाही को अंजाम दिया गया। ब्रिटेन ने अपना स्पष्ट मत व्यक्त करते हुए कहा कि वह भारत सहित सभ्य राष्ट्रों के पक्ष में है। पाकिस्तान द्वारा कारगिल में की जा रही आतंकवादी गतिविधियों तथा घुसपैठ की कार्यवाही को अवैध ठहराया तथा पाकिस्तान को नियन्त्रण रेखा का सम्मान किये जाने पर जोर दिया। वस्तुतः अमरीका ने अपना दृष्टिकोण भारत के प्रति सकारात्मक रखा था, अतः ब्रिटेन ने

भी उसका समर्थन किया। ब्रिटेन के विदेश सचिव जैक स्ट्रा ने कहा कि – "आतंकवाद के प्रति अपने रूख में हम भारत समेत सभ्य सरकारों के साथ है।"[3]

कारगिल संघर्ष के दौरान पाकिस्तान विश्व में अलग-थलग था तथा भारत के प्रति इस बार अमरीका समेत सभी का रूख उसके पक्ष में था। यह वाजपेयी सरकार की कूटनीतिक विजय का परिणाम था। सम्पूर्ण यूरोपीय संघ भारत के पक्ष में था। कारिगल संघर्ष के बाद भारत-ब्रिटेन सम्बन्धों में सकारात्मक सुधार हुआ जो प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी की 2001 की ब्रिटेन यात्रा से स्पष्ट परिलक्षित होता है।

(3) प्रधानमंत्री वाजपेयी की ब्रिटेन यात्रा (12 नवम्बर, 2001):

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने अपनी विदेश यात्रा में रूस, अमरीका होते हुए यात्रा के अन्तिम चरण में 12 नवम्बर, 2001 को प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर से मुलाकात की। वाजपेयी की ब्रिटेन यात्रा 6 वर्ष बाद किसी भारतीय प्रधानमंत्री की यात्रा थी। वाजपेयी ने विभिन्न मसलों पर वार्ता करते हुए आतंकवाद के खिलाफ मौजूदा विश्वव्यापी संघर्ष को आतंकवादी सरगना ओसामा बिन लादेन के आतंकवादी संगठन अलकायदा से आगे बढ़ाने पर बल दिया। इतना ही नहीं इसमें उन सभी को शामिल करना जरूरी बताया जो आतंकवाद को प्रश्रय, समर्थन तथा वित्तीय सहायता दे रहे हैं। ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने भारत व ब्रिटेन के बीच व्यापारिक व आर्थिक सम्बन्धों को सबल बताते हुए राजनैतिक सम्बन्धों को और सुदृढ़ बनाए जाने की जरूरत बताई। दोनों देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध विश्वव्यापी अभियान को मजबूत बनाने हेतु कटिबद्धता व्यक्त की।

प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर ने विशेष रूप से कश्मीर पर बयानबाजी पर रोक लगा दी लेकिन वाजपेयी द्वारा की गई ब्रिटेन यात्रा ने इस पर सकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। ब्लेयर ने उप-महाद्वीप के संघर्षशील मुद्दों को अधिक विचारशील माना तथा स्पष्ट किया कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। पाकिस्तान को अपना हठ छोड़ देना चाहिए तथा द्विपक्षीय माध्यम से उपस्थित संघर्षो को सुलझाने का प्रयास करना चाहिए, उसमें पाकिस्तान को सहयोगी की भूमिका अदा करना चाहिए, जिससे भारत-पाक सम्बन्धों को मधुर आयम मिल सके। वाजपेयी ने कहा कि ब्रिटेन उनके इस उठे हुए हाँथ को पकड़कर सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने में जरूरी सहयोग देगा। क्योंकि भारत-ब्रिटेन सम्बन्धों का

एक लम्बा इतिहास रहा है। पिछले सम्बन्धों को भूलकर हमें अब विश्वव्यापी सकारात्मक तथा शाँतिपूर्ण सह-अस्तित्व से सम्बन्धित सहयोगात्मक सम्बन्धों को विकसित करना चाहिए।

प्रधानमंत्री वाजपेयी की यात्रा निःसन्देह सफल, सकारात्मक व संतोषप्रद रही। एक ओर जहाँ पुराने व पक्के मित्र रूस को आजमाने की जरूरत नहीं, वहीं ब्रिटेन से भी रिश्ते परिणामस्वरूप पुराने ही है। ये तो इस वार्ता व वार्ता की पृष्ठभूमि में आतंकवाद का मुद्दा ही मुख्यतः छाया रहा, किन्तु यात्रा का महत्त्व इस बात में है कि भारत और ब्रिटेन के रिश्तों के दायरें को व्यापक स्तर पर देखा गया। प्रधानमंत्री वाजपेयी ब्रिटेन के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर को अपनी बात समझाने मे सफल रहे। यह स्पष्ट हो गया कि दोनों देशो के सम्बन्ध पाकिस्तान और अफगानिस्तान के संदर्भ तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि दोनों देशों के नेता एक-दूसरे को ग्लोबल पार्टनर के रूप में देखते हैं। ब्लेयर ने सैन्य कार्यवाही के बाद अफगानिस्तान में व्यापक आधार वाली सरकार के निर्माण में भारत की प्रमुख भूमिका का समर्थन किया।

प्रधानमंत्री वाजपेयी के शब्दों में, ''ब्रिटेन के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर ने मेरे न्यूयार्क से दिल्ली लौटते समय मुझे एक दिन के शासकीय दौरे पर लंदन में रुकने के लिए आमंत्रित किया था। टोनी ब्लेयर और मैने नई दिल्ली में अक्टूबर में उनके संक्षिप्त प्रवास के दौरान हुई बातचीत को जारी रखा। हमने अपने द्विपक्षीय संबंधों के कई पहलुओं की समीक्षा की जिनमें हाल के वर्षो में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इन चर्चाओं को जारी रखते हुए निकट भविष्य में उस समय विस्तारपूर्वक बातचीत होगी, जब प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर भारत के शासकीय दौरे पर आएँगे।''[4]

सूचना प्रौद्योगिकी से जुडे हुए प्रवासियों में विश्व से सबसे अधिक भारत के लोग ही ब्रिटेन गये हैं। इसलिए वर्ष 2000 में इंग्लैण्ड में आने वाले सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़े 18,257 विदेशियों में से 11474 भारतीय थे। दोनों देशों के मध्य लगभग 200 प्रकार की साझेदारियाँ विकसित हुई है। इसके अतिरिक्त 2002 में नई दिल्ली मे आयोजित एक 'विज्ञान मेले' का उद्घाटन प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर ने किया जिसके माध्यम से दोनों देशों के प्रमुख वैज्ञानिकों को करीब लाना था। ''सन् 2002 में ही नीले आकाश में शोध हेतु दोनों के द्वारा 'भारत ब्रिटेन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी नेटवर्किंग 'कार्यक्रम' की शुरुआत की गई।''[5] जहाँ तक द्विपक्षीय व्यापार का प्रश्न है, ब्रिटेन अब भारत का विश्व में दूसरा

सबसे बड़ा व्यापारिक सहयोगी हो गया है। इसके साथ-साथ वह यूरोपीय संघ के देशो में भारत का सर्वाधिक व्यापार करने वाला देश बन गया है।

प्रधानमंत्री वाजपेयी के कार्यकाल के मध्य (2001-2003) में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर ने अक्टूबर, 2001 एवं 2002 में भारत की यात्राएं की। भारत की ओर से भी नवम्बर, 2001 व जून, 2003 में क्रमशः प्रधानमंत्री वाजपेयी तथा उप प्रधानमंत्री एवं गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी ने इंग्लैण्ड का दौरा किया। सन् 2002 का प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर का दौरा कई संदर्भो में दोनों देशों के बीच राजनैतिक सूझबूझ विकसित करने में कारगर सिद्ध हुआ।

प्रथम, इस यात्रा के दौरान दोनों देशों में (भारत-इंग्लैण्ड) संबंधों की साझीदारी को नई सहस्राब्दि की रूपरेखा प्रदान करने सम्बन्धी सहमति हो गई। द्वितीय, दोनों देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को आपसी सहयोग से समाप्त करने की अपनी प्रतिबद्धता को पुनः अभिव्यक्त किया। तृतीय, दोनों ने ही विकास, गरीबी उन्मूलन, शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में सहयोग बढाने की बात को स्वीकार किया। अन्ततः इंग्लैण्ड ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत के स्थायी सदस्यता के दावे का समर्थन करने की बात कही। जिससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रधानमंत्री वाजपेयी की ब्रिटेन यात्रा सफल रही तथा प्रधानमंत्री वाजपेयी का कार्यकाल दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों को एक नई दिशा प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुआ।

भारत-फ्रांस सम्बन्ध तथा प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी

फ्रांस उन तीन या चार यूरोपीय देशों में है जिनके साथ भारत ने आर्थिक और राजनीतिक रूप से अन्तः सम्बन्ध कायम करने के विशेष प्रयास किए। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी सरकार द्वारा शुरु किए गए भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार और उदारीकरण ने जब गति पकड़ी तो अन्य यूरोपीय देशों की तरह फ्रांस की भी रुचि भारत की ओर आकर्षित हुई, लेकिन भारत भी समान रूप से फ्रांस से उच्चस्तरीय सम्बन्ध बढ़ाने में स्वयं सक्रिय रहा।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने टिप्पणी की कि भारत का फ्रांस से बहुत अच्छा सम्बन्ध रहा है और वह उससे और भी प्रगाढ़ सम्बन्ध बनाने को उत्सुक रहता है। भारत-फ्रांस सम्बन्धों को और अधिक सशक्त आधार प्रदान करने हेतु प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी 27 मई से 3 जून,

2003 के बीच अपनी विदेश यात्रा में जी-8 शिखर सम्मेलन में भाग लेने फ्रांस के एक शहर इवियाँ पहुँचे, जहाँ जी-8 का शिखर सम्मेलन प्रस्तावित था। वाजपेयी की यह यात्रा कूटनीतिक दृष्टि से सफल रही।

वाजपेयी सरकार का उद्देश्य पेरिस के साथ अधिक व्यापक आर्थिक और राजनीतिक अन्तः सम्बन्ध विस्तारित करना था। फ्रांस यूरोपीय देशों में प्रमुख देश ही नहीं बल्कि यूरोप तथा अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच दोनों पर सार्थक खिलाड़ी की भूमिका निभाने वाला देश है। वह भारत के तारापुर ताप प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने फ्रांस के उद्योग और व्यापार जगत के नेताओं को आश्वासन दिया की भारत की अर्थव्यवस्था में तरह-तरह के सुधारों को लागू करने से सम्बन्धित आवश्यक कानूनों को बनाने और लागू करने में कोई मुश्किल नहीं आएगी। वाजपेयी के कार्यकाल में भारत-फ्रांस सम्बन्धों को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है :-

(1) भारत की नाभिकीय परीक्षण तथा भारत-फ्रांस सम्बन्ध :

फ्रांस विश्व के सर्वाधिक, शक्तिशाली, धनी व विकसित राष्ट्रों के जी-8 का सदस्य है परन्तु वास्तविकता यह है कि वह भारत के नाभिकीय परीक्षणों को ब्रिटेन की तरह अमरीका चश्में से नहीं देखता तथा उसने भारत के परमाणु परीक्षणों के पश्चात कोई तीखी प्रतिक्रिया भी नहीं व्यक्त की, कारण यह है कि फ्रांस भारत को एक विकास की ओर उन्मुख विकासशील राष्ट्र समझता है, जिसके अन्दर आर्थिक तथा व्यापारिक दृष्टिकोण से पर्याप्त संभावनाएं हैं जिन्हें भारत-फ्रांस सम्बन्धों की जड़ कहा जा सकता है।

वस्तुतः इन्हीं कारकों के परिणामस्वरूप फ्रांस ने भारत के परमाणु परीक्षणों का विरोध नहीं किया बल्कि जापान समेत फ्रांस ने भी अमरीका के आर्थिक प्रतिबन्ध लगाए जाने पर भारत को सहायता देने का खुला ऐलान किया। फ्रांस यह भलीभाँति जानता है कि वर्तमान युग में व्यापारिक दृष्टि से भारत में विस्तृत बाजार मौजूद है जिसको वह अपने 'राष्ट्रीय हितों' को ध्यान में रखकर उपयोग में ला सकते हैं तथा भारत को भी इस आर्थिक पहल से स्पष्ट फायदा पहुँच सकता है।

अतः परमाणु परीक्षणों के समय भारत-फ्रांस सम्बन्ध सहयोगात्मक रहे। भारत की परमाणु नीति को फ्रांस ने गलत नहीं बताया बल्कि उसकी सुरक्षा आवश्यकताओं को समझते हुए सही करार

दिया। फ्रांस भारत को कितना महत्वपूर्ण मानता है, इसका स्पष्ट उदाहरण जून, 2003 का जी-8 शिखर सम्मेलन है, क्योंकि भारत के प्रधानमंत्री को जी-8 सम्मेलन में बुलाने की खास पहल फ्रांस के राष्ट्रपति जैक शिराफ ने की थी। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की फ्रांस यात्रा, भारत-फ्रांस सम्बन्धों में एक गतिशील पहल है। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के निमन्त्रण देने पर राष्ट्रपति जैक शिराक ने यह तर्क दिनया कि इन विकासशील देशों को विश्व के सम्मुख खड़ी प्रमुख चुनौतियों पर पारस्परिक विचार विनिमय के लिए इवियाँ (फ्रांस) आने का निमन्त्रण दिया गया था। चूँकि भारत तथा चीन विकासशील देशों में अग्रणी राष्ट्र हैं, अतः ग्रुप-8 विकसित राष्ट्रों का मंच होते हुए भी भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों को महत्वपूर्ण मानता है।[6] प्रधानमन्त्री वाजपेयी की फ्रांस यात्रा भारत-फ्रांस सम्बन्धों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती है।

(2) वाजपेयी की फ्रांस यात्रा (1 जून, 2003) तथा भारत-फ्रांस सम्बन्ध, जी-8, शिखर सम्मेलन

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी अपनी विदेश यात्रा के अन्तिम पड़ाव में जर्मनी, रूस होते हुए 1 जून, 2003 को फ्रांस के रिसार्ट शहर इवियाँ पहुँचे, जहाँ उन्होंने जी-8 शिखर सम्मेलन में आमंत्रित अतिथि के रूप में भाग लिया। विश्व के 8 सर्वाधिक शक्तिशाली और सम्पन्न राष्ट्रों का संगठन जी-8 का वार्षिक शिखर सम्मेलन 1-3 जून, 2003 को फ्रांस के सीमावर्ती शहर 'इवियाँ' मे आयोजित हुआ था। फ्रांस की मेजबानी और अध्यक्षता में हुए इस शिखर सम्मेलन में इसके 8 सदस्य देशों अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, कनाड़ा, इटली, जापान, रूस तथा फ्रांस के राष्ट्राध्यक्षों ने भाग लिया।

यदि देखा जाए तो जी-8 शिखर सम्मेलन का असली उद्‌देश्य धनी एवं शक्तिशाली देशों को इराक युद्ध के दौरान इंग्लैण्ड अमरीका तथा फ्रेंच-जर्मन धुरियों के बीच बढ़े मतभेदों को कम करना व मेल-मिलाप की प्रक्रिया को तेज करना ही था। लेकिन इस अवसर को अधिक प्रचार देने के मकसद से भारत सहित अन्य विकासशील राष्ट्रों को भी सम्मेलन में शिरकत करने के लिए बुला लिया गया था। ''भारत को फ्रांस के राष्ट्रपति 'जैक शिराक' की खास पहल पर बुलाया गया था। वास्तविक रूप से भारत को जी-8 का सदस्य बनाने की कोई योजना नहीं थी, लेकिन भारत को लेकर दिलचस्पी जरूर दिखी। यह दिलचस्पी स्वाभाविक भी थी क्योंकि भारत का आधुनिक औद्योगिक उत्पादन इटली जैसे देशों के मुकाबले कहीं बड़ा है और सामान्य रूप में इसकी अर्थव्यवस्था भी बड़ी है।''[7]

जी-8 सम्मेलन मे भारत को बुलाने से यह बात उभरकर सामने आई कि फ्रांस जैसे औद्योगिक राष्ट्रों की समृद्धि कुछ विकासशील राष्ट्रों की प्रगति पर निर्भर करती है मगर औद्योगिक राष्ट्रों का इस दिशा में दृष्टिकोण निराशाजनक है, जबकि फ्रांस भारत को महत्वपूर्ण मानता है। भारत-फ्रांस सम्बन्धों में फ्रांस के राष्ट्रपति ने स्पष्ट प्रतिक्रिया जताते हुए भारतीय उत्पादों को अपने बाजार खोलने का निर्णय लिया तथा पर्यावरण सुरक्षा तथा बालश्रम को हटाए जाने के लिए भारत को फ्रांसीसी सहयोग की पेशकश की तथा आगाह किया कि सीमा-पार आतंकवाद तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का बेलगाम प्रसार अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा है।

भारत-फ्रांस सम्बन्धों को आगे बढ़ाते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया कि दोनों देश शांति तथा आतंकवाद के विरुद्ध मिलकर साझा प्रयत्न करेंगे। फ्रांस के राष्ट्रपति ने यह वक्तव्य दोहराया कि भारत-फ्रांस की साझी जिम्मेदारी है कि हमारी अर्थव्यवस्था में अपना योगदान कर सके। यह योगदान ढाँचागत सुधारों और लचीलेपन पर ज्यादा जोरदार ढंग से निर्भर होना चाहिए। इसलिए इनके प्रति भी अपनी प्रतिबद्धता जताते हैं। श्रम उत्पादन और पूँजी बाजारों में ढाँचागत सुधारों को लागू करना हमारी प्राथमिकता है। उन्होंने सुझाव दिया कि भारत को पेंशन और स्वास्थ्य सेवा सुधारों को भी लागू करना चाहिए क्योंकि बुजुर्गों की आबादी बढ़ रही है।

विश्व के सर्वाधिक धनी देशों के संगठन जी-8 से भारत का कोई सीधा रिश्ता नहीं रहा है (सदस्यों से व्यक्तिगत सम्बन्ध है), पर प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के प्रयासों तथा पहल से भारतीय अर्थव्यवस्था में आई मजबूती और यहाँ के विशाल बाजार के मद्देनजर अब विश्व की किसी भी शक्ति द्वारा इसे अनदेखा करना नामुमकिन है। फ्रांस में आमंत्रित अतिथि के रूप में भाग लेने वाले भारतीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भारत-फ्रांस सम्बन्धों को स्पष्ट करते हुए यह उम्मीद जताई कि दोनों देशों के सम्बन्ध तथा जी-8 विश्व में एक नया आर्थिक मंच का शक्ल ले रहा है जिसमें विकसित तथा विकासशील दोनों तरह के देशों की समुचित भूमिका होगी ताकि विश्व को सही प्रतिनिधित्व मिल सके।

इस अवसर पर वाजपेयी ने अपने दिए गए वक्तव्य पर विकासशील देशों को विकास के लिए धन उपलब्ध कराए जाने का आह्वान अमीर देशों से किया। साथ ही चेतावनी भरे शब्दों में कहा कि यदि वे इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए शीघ्र ही कदम नहीं उठाते हैं तो अधिकतर विकासशील

देशों के लिए व्यापार उदारीकरण अथवा पर्यावरण मुद्दों पर राजनैतिक समर्थन हासिल करना मुश्किल हो जाएगा।

राष्ट्रपति जैक शिराक ने यूरोप, रूस तथा मध्य एशिया के समग्र विकास के बारे में बताया, जबकि वाजपेयी ने दक्षिण एशिया की स्थिति का विवरण देते हुए भारत के आर्थिक विकास और इसके पड़ोसियों, चीन और पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों का भी जिक्र किया। वाजपेयी ने फ्रांस के राष्ट्रपति को बताया कि यूरोप भारत का सबसे बड़ा बाजार ग्राहक रहा है और उसे भारत सहित अन्य विकासशील देशों के लिए खुला रहना चाहिए। दोनों नेताओं ने भारत-फ्रांस मंच को अपना पूर्ण सहयोग का वचन दोहराया जिसका पिछली नरसिंहराव सरकार द्वारा गठन किया गया था। उन्होने यह भी फैसला किया कि दोनों देशों के वित्तमंत्रियों की शीघ्र एक बैठक होना चाहिए ताकि फ्रांस का निवेश बढ़ाने के बारे में वित्तीय समस्याओं पर चर्चा कर एक नए समझौते के ज्ञापन पर हस्ताक्षर हो सके। "दोनों देश विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक विचार-विमर्श बढ़ाने पर भी सहमति जाहिर की तथा पूरी क्षमता के साथ भारत-फ्रांस सम्बन्धों को विकसित होने पर जोर दिया।"[8]

"सन् 2003 में फ्रांस के रक्षामंत्री की भारत यात्रा के समय भी भारत ने फ्रांस से रक्षा उपकरणों की खरीद हेतु उत्साह दिखाया। दूसरी ओर फ्रांस भी भारत को 'सामरिक सहयोगी' का दर्जा प्रदान करना चाहता है।"[9] दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों में प्रगाढ़ता निरन्तर बढ़ी तथा वार्तालाप एवं एक दूसरे देश की यात्राओं से विभिन्न मुद्दों पर समझौते हुए। भारत की तरफ से प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने सितम्बर, 1998 को फ्रांस की यात्रा की। इसके बाद वाजपेयी के शासनकाल में ही नजमा हेपतुल्ला (उपसभापति, राज्यसभा) ने मार्च, 2000 में फ्रांस की यात्रा की। मार्च, 2000 में ही स्पीकर जी०एम०सी० बालयोगी ने फ्रांस की यात्रा की। अप्रैल, 2000 में राष्ट्रपति के०आर० नारायणन ने फ्रांस की यात्रा की। मुरासोलीमारन, राजनाथ सिंह, प्रमोद महाजन, रामविलास पासवान, सुषमा स्वराज, सुरेश प्रभु, वैंकैया नायडू, जसवन्त सिंह, ब्रजेश मिश्र आदि लोगों ने फ्रांस की यात्रा की।

"दोनों देशों का कश्मीर मसले पर कोई मतभेद नहीं था। शिरॉक का मत था कि "इसको शिमला समझौते के प्रावधानों के तहत भारत और पाकिस्तान आपस में सीधा संवादकर सुलझाएँ और इस बात की भी सराहना की कि भारत का दृष्टिकोण कश्मीर मुद्दे पर पारदर्शिता की नीति का है और स्वयं यूरोपीय संघ के प्रतिनिधि-मण्डल को कश्मीर का दौरा कर हालात का जायजा लेने की अनुमति देना इस बात का सबूत है।"[10]

दोनों देशों के दृष्टिकोण में अगर कहीं फर्क था तो वह सी०टी०बी०टी० को लेकर था। फ्रांस चाहता था कि भारत इस पर हस्ताक्षर करे जबकि भारत ने भेदभावमूलक संधि मानकर इसका विरोध दुहराया फिर भी फ्रांस के राष्ट्रपति ने इस अप्रसार संधि के पक्ष में कोई खास जोर नहीं दिया। प्रधानमंत्री वाजपेयी के शासनकाल में भारत-फ्रांस सम्बन्ध सामान्य बने रहे। ऐसे में उच्च स्तर पर राजनीतिक संवाद द्वारा भारत-फ्रांस मंच को ऊपर से पुनः शक्ति देने के लिए काफी प्रोत्साहन और प्रेरणा की जरूरत है जिससे दोनों देशों के सम्बन्ध सहयोगात्मक व मधुर बने रहे।

"प्रधानमंत्री वाजपेयी ने एंवियां (फ्रांस) में जी-8 बैठक में भाग लिया। वाजपेयी इस बैठक में विकासशील देशों की ओर से विशेष आमन्त्रित थे। वाजपेयी ने यहाँ विश्व के नेताओं के सम्मुख आतंकवाद पर भारत की चिन्ताओं को दर्ज कराया। साथ ही इस बात पर जोर दिया कि अधिक सम्पन्न देशों को अपनी खुशहाली में पिछड़े और विकासशील देशों को साझीदार बनाना होगा।"[11] विभिन्न यात्राओं तथा आपसी समझौतों और एक दूसरे देशों को दिये गये सहयोग (सामरिक, व्यापारिक, आर्थिक तथा तकनीकी) के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वाजपेयी के प्रधानमन्त्रित्व काल में दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों में समीपता आयी तथा विश्वास के वातावरण का सृजन हुआ जिससे दोनों देशों में नजदीकी बढ़ी और दोनों के मध्य व्यापार में उत्तरोत्तर प्रगति हुई।

भारत-जर्मनी सम्बन्ध तथा प्रधानमंत्री वाजपेयी

जर्मनी भारत के लिए व्यापार साझीदार के रूप में, प्रौद्योगिकी आपूर्तिकर्ता के रूप में और तेजी से उभर रहे यूरोपीय आर्थिक समुदाय तथा यूरोपीय संघ के रूप में विकसित होने से महत्वपूर्ण है। जर्मनी और भारत दोनों लोकतंत्र के मौलिक राजनीतिक सिद्धान्तों और कानून के नियमों के विश्वासों में सहयोगी हैं। यद्यपि दोनों में नाभिकीय-अप्रसार, मानवाधिकारों, बौद्धिक सम्पदा तथा अधिकारों के बारे में दृष्टिभेद थे। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अपनी विदेश यात्रा आरम्भ करते समय यूरोप के जिन देशों को चुना उसमें जर्मनी भी शामिल था। भारत की आर्थिक मदद अधिकारिक रूप से करने वाले देशों में जर्मनी दूसरा बड़ा देश है।

वस्तुतः भारत की विदेश नीति कभी भी आक्रामक नहीं रही है तथा वाजपेयी के सत्ता में आने के बावजूद भी, स्वयं वाजपेयी के शब्दों में "उनकी सरकार अपनी विदेश नीति में कोई खास परिवर्तन नहीं करेगी वह शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं गुटनिरपेक्षता तथा पंचशील के माध्यम से ही विदेश नीति

का क्रियान्वयन करेगी लेकिन वर्तमान चुनौतियों को स्वीकार करते हुए वह जिस सीमा तक आगे बढ़ गई उसने विश्व के सामने एक आदर्श विदेश नीति का स्वरूप प्रस्तुत किया है।"

"मई, 1998 में पोखरण परमाणु परीक्षणों के तुरन्त बाद फ्रांस ने तो यह घोषणा कर दी थी कि उसको भारत की परमाणु सफलता से कोई आपत्ति नहीं थी परन्तु उस समय जर्मनी क्रोधित हुआ था और उसने प्रस्तावित विकास-सहयोग सम्बन्धी वार्ता रद्द कर दी थी कि उसको भारत की परमाणु सफलता से ऐतराज है, यद्यपि इस बातचीत के लिए भारत का एक शिष्टमण्डल बॉन पहुँच चुका था, परन्तु वर्ष, 2000 के मध्य तक जर्मन दृष्टिकोण में सुखद परिवर्तन हो चुका था।"[12]

कुछ विद्वानों ने इसका श्रेय क्लिंटन की भारत यात्रा को दिया परन्तु जैसा कि पूर्व विदेश सचिव जे०एन० दीक्षित ने कहा- "प्रत्येक कूटनीतिक सफलता को क्लिंटन की यात्रा से नहीं जोड़ा जाना चाहिए।" इससे पूर्व प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव ब्रजेश मिश्र की जर्मनी में सरकारी अधिकारियों के साथ विस्तृत चर्चा हुई थी तथा पुनः जसवंत सिंह की जर्मन विदेश मंत्री फिशर के साथ दार्शनिक स्तर की बातचीत हुई जिससे वातावरण मे अमूल्य सुधार हो चुका था। इस पृष्ठभूमि में विदेश मंत्री फिशर की भारत-यात्रा ने द्विपक्षीय सम्बन्धों को नई मैत्रीपूर्ण दिशा प्रदान की।

जर्मनी की नीति भारत के सम्बन्ध में वर्ष, 2000 मध्य में यह थी कि आपस में बेहतर व्यवहार किया जाए। जर्मनी स्वयं सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता का दावेदार था। अतः उसने इस संदर्भ में भारत के दावे पर कोई स्पष्ट समर्थन व्यक्त नहीं किया, फिर भी जर्मन विदेश मंत्री ने कहा कि - "हम भारत का भरपूर समर्थन करते हैं। भारत विश्व की एक बड़ी और महत्वपूर्ण शक्ति है, तथा हम उसके समर्थन पर निर्भर करते है।" "फिशर ने यह आशा व्यक्त की कि जर्मनी को भारत के साथ सकारात्मक बातचीत की अपेक्षा थी और यह भी अपेक्षा व्यक्त की कि 'परमाणु शस्त्र सम्पन्न' देश के रूप में वह अपने अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों का निर्वहन करेगा।"[13] विश्व ने भारत की परमाणु-सम्पत्रता की वास्तविकता को न केवल स्वीकार कर लिया है,वरन् मौन सहमति भी दे दी है। पूर्व विदेश सचिव जे०एन० दीक्षित के अनुसार- "शक्ति से ही शक्ति प्राप्त होती है।"[14] उन्होंने यह भी कहा कि "रूस और चीन भी अब भारत पर अधिक ध्यान केन्द्रित कर रहे थे, ताकि भारत और अमेरिका के सम्बन्धों की रणनीतिक सामर्थ्य से उत्पन्न असंतुलन को संतुलित किया जा सके।"[15]

वस्तुतः इस बार भारत को विभिन्न देशों के सीमापार से प्रोत्साहित आतंकवाद के प्रश्न पर समर्थन मिलता रहा। जर्मन विदेश मंत्री फिशर ने बिना किसी दबाव के स्पष्ट किया कि ''आतंकवादी कार्यो की निन्दा करना हमारी विदेश नीति का अंश है। हम न केवल अपने भारतीय मित्रों की चिन्ताओं से अवगत हैं, बल्कि बातचीत के प्रति उनकी बचनबद्धता का भी हमें ज्ञान है।''[16] जर्मनी द्वारा भारत के मई, 1998 के परमाणु विस्फोटो पर तीव्र प्रतिक्रिया के बावजूद उसने 1999 के कारगिल संकट के समय भारत का समर्थन किया।

जर्मनी ने पाकिस्तान को स्पष्ट शब्दों में भारत-पाकिस्तान नियन्त्रण रेखा पार न करने को कहा। बाद में सन् 2000 में 'भारत महोत्सव' का आयोजन कर जर्मनी ने दोनों देशों के मध्य पनपते सांस्कृतिक, विज्ञान एवं प्रौद्योगिक आदि में सहयोग को उजागर किया। दोनों देशों के मध्य मधुर सम्बन्धों में मजबूती दो कारणों पर निर्भर करेगी- (1) जर्मनी की तृतीय विश्व की ओर सामान्य रूप से तथा भारत की ओर विशेष रूप से बढ़ते विदेशनीति के अभिमुखन पर तथा (2) भारत द्वारा आर्थिक सुधारों के माध्यम से बाह्य पूँजी निवेश एवं प्रौद्योगिकी को आकर्षित करने की क्षमता पर।''[17]

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की जर्मनी यात्रा (27-30 मई, 2003)

प्रधानमंत्री वाजपेयी की सफल विदेश यात्रा कही जा सकने वाली जर्मन यात्रा अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। अपने यात्रा के क्रम में वाजपेयी सबसे पहले जर्मनी गए जबकि उसके बाद ही उन्होंने रूस तथा फ्रांस की यात्राओं को स्थान दिया। अपने तीन दिन के जर्मनी प्रवास के दौरान उन्होंने चांसलर 'गेरहार्ड श्रोएडर' तथा अन्य नेताओं से महत्वपूर्ण बातचीत की। भारत एवं जर्मनी के सम्बन्धों में आयी नजदीकियों का ही यह प्रमाण है कि अब दोनों देशों ने दस साल पर होने वाली शिखर बैठक को प्रत्येक वर्ष करने का निर्णय लिया। जर्मनी में भारतीय साफ्टवेयर विशेषज्ञों की माँग कुछ समय से काफी बढ़ी है। अब दोनों देशों ने द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ाने के लिए इस मार्ग में आने वाले गतिरोधों को दूर करने का फैसला किया है। इस दौरान जर्मनी के औद्योगिक केन्द्र 'बेवरिया' तथा भारत के किसी एक शहर के बीच बौद्धिक व्यापार के क्षेत्र में परस्पर भागीदारी के लिए ही सहमत हुई।

कश्मीर मुद्दे पर एक सवाल का जवाब देते हुए जर्मनी ने किसी अन्य देश की मध्यस्थता से समस्या के समाधान का पुरजोर विरोध किया तथा इसका भारत एवं पाकिस्तान के बीच संवाद द्वारा ही बिना इसका अन्तर्राष्ट्रीयकरण किए निपटाए जाने का समर्थन किया। भारत एवं पाकिस्तान के बीच

तनाव विश्व समुदाय के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ है और जर्मनी चाहता है कि भारत-पाक संवाद फिर से शुरु हो तथा आपसदारी से शीघ्र सुलह हो। वाजपेयी की जर्मनी यात्रा के अवसर का उपयोग करते हुए जर्मन पक्ष के प्रति भारत ने पाकिस्तान द्वारा परमाणु बम निर्माण हासिल करने और खास तौर पर इसकी कुछ सामग्री जर्मनी द्वारा छद्‌म रूप से मुहैया कराए जाने पर चिंता प्रकट की।

"भारत ने कहा कि पाकिस्तान ने नाभिकीय हथियार क्षमता बहुत से देशों पर परमाणु प्रौद्योगिकी और उसके लिए फुटकर कल पुर्जे मुहैया कराए जाने पर ही प्राप्त की जिसमें जर्मनी भी एक था। जर्मनी की ओर से स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने कहा कि यह नाजुक मसला है और वह इस तरह के निजी चुपचाप सामग्री विक्रय के सख्त खिलाफ हैं। इसलिए सरकार ने उस जर्मन विक्रेता खिलाफ उसके इस अवैध रूप से प्रौद्योगिकी तथा सामग्री विक्रय-विनिमय के लिए सख्त कार्यवाही की है।"[18]

अपनी समस्याओं की ओर भारत का ध्यान आकर्षित करते हुए जर्मनी ने अवैध रूप से आ बसे 10 हजार भारतीय अप्रवासियों की समस्या सुलझाने का आग्रह 'श्रोएडर' ने किया, क्योंकि वे देश छोड़ने से मना कर रहे हैं। जर्मन पक्ष ने एक पूँजी निवेश संवर्धन समझौते को सलाह दी और दोहरे कराधान को हटाकर निवेश और सहयोग बढ़ाने के लिए समझौते का अनुरोध किया गया। यह भी तय किया गया कि भारत-जर्मन सलाहकार ग्रुप को विभिन्न आर्थिक मुद्‌दों को निपटाने के लिए और अधिक सक्रिय किया जाना चाहिए। अमरीका के बाद भारत ने व्यापार का आकार जर्मनी के साथ दूसरे स्थान पर रहा। राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्ध बढ़ाने के प्रयास कायम रहे, भले ही परमाणु अप्रसार सन्धि मसले तथा मानवाधिकार मसले पर मतभेद रहे हों।

जर्मनी ने कश्मीर पर मानवाधिकारों का मुद्दा उठाया। प्रधानमंत्री वाजपेयी के अनुसार उन्होंने भारत को इसके उल्लंघन का दोषी ठहराने के लिए अंगुली उठाने की कोई कोशिश नहीं की, वाजपेयी ने कश्मीर की स्थिति में अपना संक्षिप्त मत प्रकट करते हुए यह स्पष्ट किया कि पाकिस्तान लगातार भारत पर पार-सीमा आतंकवाद प्रेषित कर उसे परेशान करता रहा है। उन्होंने इस बात की पुष्टि की कि कारगिल युद्ध (1999) इसी संवेदनशील स्थिति का परिणाम है। वाजपेयी ने कहा कि जरनल परवेज मुशर्रफ के उकसाने वाले गैर जिम्मेदाराना बयानों के कारण आतंकवाद पड़ोसी देशों से मदद पा रहा है, फिर भी भारत जिस तरह चीन से विरोधी मुद्‌दे छोड़कर अन्य क्षेत्रों में सहयोग कर रहा है, वैसा

ही पाकिस्तान के साथ सहयोग करने को इच्छुक है। "भारत, जर्मनी का सहयोग संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग में चाहता है जहाँ पाकिस्तान द्वारा भारत पर हमला बोलने का इरादा बताया जा रहा था।"[19]

भारत-जर्मनी सम्बन्धों में यह बात महत्वपूर्ण थी कि चांसलर गेरहार्ड श्रोएडर ने वाजपेयी की जर्मनी यात्रा के दौरान व्यापक परमाणु अप्रसार संधि का मुद्दा नहीं उठाया लेकिन इसके अलावा अन्य अनेक ऐसे मुद्दे थे जिन पर ध्यानाकर्षण की जरूरत थी। जर्मनी ने भारत से लुफ्तहंसा एयर लाइंन की भारत में सेवाएँ और बढ़ाने का अनुरोध किया जिसमें लुप्तहंसा की सीधी मद्रास तक सेवा की अनुमति वांछित थी। वाजपेयी ने इस बारे में ध्यान देने का वचन दिया।

जर्मन उद्योग ने भारत-जर्मन सम्बन्धों की पहल करते हुए कुछ माँगे प्रस्तुत कीं थीं, वे कुछ अतार्किक एवं प्रतिकूल प्रतीत होती थीं। वे भारत के औद्योगिक मामलों से सम्बन्धित अधिनियम में परिवर्तन, उत्पादित वस्तु का शीघ्र पेटेण्ट चाहते थे। ये दोनों बहुत दूर तक भारतीय श्रम और उत्पादक जगत को प्रभावित करने वाले थे। अतःइनके क्रियान्वयन के लिए पूँजी निवेशकों के हितों की अनुकूलता को ध्यान में रखते हुए इनमें तदर्थ तरीके से संशोधन करना आसान और भारत के हित में नहीं था। "जर्मनी के उद्योग निवेशकों ने पर्यावरण का ज्वलंत मुद्दा भी उठाया जो कि कच्चा माल लाने और पैकिंग से भी जुड़ा होने से भारतीय विधि और व्यवस्था की दृष्टि से मौजूदा स्थिति में उनकी अनुकूलता के लिए और छूट देना अव्यावहारिक लगता था।"[20]

जर्मन सरकार ने बहुत सहयोगी भावना से वाजपेयी का स्वागत किया था तथा स्पष्ट रूप से बयान दिया कि उनका देश पूरी तरह से भारत के विकास में सहयोग देता रहेगा। ये दूसरे देश के साथ बहुत अधिक सहयोग की प्रतिबद्धता के बावजूद भारत के साथ तेजी से विकसित की जाएगी। भारत ने भी जर्मनी की अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के प्रयासों की सराहना की और वाजपेयी ने जर्मन सरकार तथा जर्मनी के व्यवसायियों को भारत की आर्थिक नीतियों और नियमों में किए गए सुधारों एवं नियमों में मिलने वाली छूट के बारे में विस्तार से बताया।

"वाजपेयी ने पत्रकारों से बताया कि उनकी यात्रा के परिणामस्वरूप जर्मनी भारत के विकास में पर्याप्त सहयोग देगा जो कि भावी आर्थिक सहयोग के रूप में होगा।"[21] वाजपेयी की इस यात्रा ने दोनों देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों तथा राजनीतिक उद्देश्यों को घनिष्ठ बनाने का एक सार्थक अवसर

मुहैया कराया। प्रस्तुत विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत-जर्मनी सम्बन्धों में कुछ सामान्य बातों को छोड़कर शेष सम्बन्ध सहयोगात्मक तथा व्यापारिक एवं आर्थिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण रहे हैं तथा भविष्य में भारत जर्मनी सम्बन्धों में एक रचनात्मक पहल करने की आवश्यकता है।

भारत जर्मनी के सम्बन्ध निरन्तर मैत्रीपूर्ण एवं मधुर रहे हैं। भारत 1951 में जर्मनी के संघीय गणतन्त्र (पहले पश्चिमी जर्मनी) के साथ राजनयिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले प्रथम चार देशों में से एक था और जर्मनी के एकीकरण को आरम्भिक अवस्था से समर्थ करने वाले कुछ देशों में से था। जर्मनी ने भारत को 'पार्टनर ऑफ प्वाइन्ट' के रूप में संदर्भित किया है और विदेश नीति में प्राथमिकता के रूप में भारत के साथ अपने सम्बन्ध की पहचान की। मई, 2000 में जोशक फिशर की यात्रा के दौरान दोनों देशों ने 21वीं शताब्दी में भारत-जर्मनी पार्टनरशिप हेतु एजेंडा' को अपनाया। अक्टूबर, 2001 में चांसलर श्रोएडर की यात्रा के दौरान दोनों देश 'रणनीतिक साझेदारी' स्थापित करने पर सहमत हुए। "भारत के पास सशक्त अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी कुशलता है, जिसका जर्मनी की विनिर्माण क्षमताओं के साथ समायोजन से रक्षा सहयोग के क्षेत्र में प्रभावशाली समायोजन होगा।"[22]

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने यूरोपीय महाद्वीप के देशों के साथ सम्बन्धों को मधुर बनाने का सफलता पूर्वक प्रयास किया जिसके परिणाम स्वरूप जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन तथा अन्य देशों के साथ राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक, सामरिक तथा तकनीकी आदि विभिन्न क्षेत्रों में सम्बन्धों में मजबूती आयी।

भारत-यूरोपीय संघ संबंध तथा प्रधानमंत्री वाजपेयी

यूरोपीय संघ एवं भारत के संबंधों की शुरुआत 1960 के दशक के पूर्वार्द्ध में हुई है। भारत तत्कालीन यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) के साथ राजनयिक संबंध स्थापित करने वाले आरम्भिक देशों में से था। 1994 में यूरोपीय संघ एवं भारत के बीच हुए समझौते से दोनों पक्ष द्विपक्षीय संबंधों को व्यापार और आर्थिक संबंधों के परे भी देखने पर सहमत हुए। यूरोपीय संघ की रणनीतिक भागीदारी केवल पाँच अन्य देशों के साथ है। (अमेरिका, कनाड़ा, रूस, चीन, जापान) और अब भारत के साथ है।

2001 में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सहयोग हेतु एक समझौता किया। इस समझौते से

भारत के साथ सहयोग के लिए इच्छुक यूरोपीय संघ की कंपनियाँ एवं शोध संस्थानों के लिए एक पूर्वानुमेय एवं सुरक्षित आईपीआर रीजिम की संभावना है। नवम्बर, 2001 में नई दिल्ली में आयोजित भारत-यूरोपीय संघ शिखर सम्मेलन में विजन स्टेटमेंट जारी किया गया जो विनियामक कार्यो, औद्योगिक पहलों में आपसी सहयोग और विशिष्ट मुद्दों एवं द्विपक्षीय हितों की परियोजनाओं पर विचार-विनिमय हेतु एक फ्रेमवर्क उपलब्ध कराता है।

भारत एवं यूरोपीय-संघ ने व्यापार एवं निवेश प्रवाह के वृद्धि पर सहयोग के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के खिलाफ सहयोग के प्रति भी प्रतिबद्धता जारी किया है। यूरोपीय संघ का भारत के अलावा अमेरिका, कनाड़ा, रूस, चीन, जापान के साथ ही सामरिक सहयोग है। भारत तथा E.U ने बहुध्रुवीय विश्व के आधारभूत महत्व तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा बनाए रखने, सभी लोगों की आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति को प्रोत्साहित करने तथा वैश्विक खतरों तथा चुनौतियों से निपटने में यू०एन०ओ० की भूमिका का समान रूख प्रदर्शित किया है। दोनों पक्ष आतंकवाद को अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा के लिए सर्वाधिक गम्भीर खतरा स्वीकार किया है। भारत तथा E.U. मिलकर एक 'ई०यू०-भारत सुरक्षा वार्ता' का गठन करेंगे। जिसमें शामिल मुद्दे होगे- वैश्विक तथा क्षेत्रीय सुरक्षा मुद्दे, निःशस्त्रीकरण तथा परमाणु अप्रसार।

पहला भारत-यूरोपीय शिखर सम्मेलन जून, 2000 में लिस्बन में सम्पन्न हुआ। यह सम्मेलन भारत-ई०यू० के बीच व्यापार तथा निवेश को नई ऊँचाइयाँ देने के उद्देश्य से सम्पन्न हुआ। दूसरा दिल्ली में, तीसरा कोपेनहेगेन में चौथा पुनः दिल्ली में तथा पाँचवा शिखर सम्मेलन-2004 में हेग में सम्पन्न हुआ। छठवां सम्मेलन भी दिल्ली में सम्पन्न हुआ। सातवाँ सम्मेलन फिनलैण्ड में हुआ। ई०यू० भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है। वर्ष-2004 में भारत के निर्यात में इसका हिस्सा 21.2% तथा आयात में 15.9% था। ई०यू० के व्यापारिक भागीदारों में भारत का स्थान 14वां है। यूरोपीय संघ को होने वाले निर्यात में भारत का योगदान 1.8% तथा आयात में हिस्सा 1.6% है। ई०यू०-भारत का कुल व्यापार 1991 में 9.9% बिलियन डॉलर था, जो कि 2004 तक बढ़कर 33.2 बिलियन डालर हो गया। वर्ष 2008 तक इसे 50 बिलियन डालर तक बढाने का लक्ष्य रखा गया है।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की विदेश नीति के कारण भारत एक मात्र एशियाई देश बन गया जिसके साथ यूरोपियन-संघ ने एक संरचनात्मक-राजनैतिक संवाद के लिए संस्थापित पद्धति

अपनाई है। जिसके मुख्य मुद्दे हैं- अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, नाभिकीय निरस्त्रीकरण, मानवाधिकार। भारतीय बाजार का आकार व प्रकृति, अंग्रेजी बोलने वाले भारतीय अभिजात-वर्ग की उपस्थिति, बढ़ती आर्थिक शक्ति, आधुनिक, कानूनी, बैंकिंग और वाणिज्यिक आधारभूत अवसंरचना, बड़ी संख्या में उच्च शिक्षित, तकनीकी एवं पेशेवर विशेषज्ञों की भरमार, राजनीतिक व्यवस्था का लोकतांत्रिक चरित्र, मुक्त प्रेस स्वतन्त्र न्यायापालिका एवं संसदीय लोकतंत्र आदि कारक दोनों देशों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध बनाते हैं। कश्मीर समस्या पर ई०यू० ने बहुत संतुलित विचार व्यक्त किए हैं।

राजनैतिक वार्ता द्वारा विवाद हल करने का सुझाव दिया। वाजपेयी ने पोलैण्ड से 2003 में तीन प्रमुख संधियों पर हस्ताक्षर किए इसमें (1) द्विपक्षीय प्रत्यर्पण संधि (2) एक रक्षा समझौता (3) आतंकवाद से लड़ने में सहयोग शामिल है। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने यूक्रेन के साथ 2002 में प्रत्यर्पण संधि पर हस्ताक्षर किए। वे अंतरिक्ष अनुसंधान, आर्थिक क्षेत्र और नई पीढ़ी के सैन्य वाहन (ए-तोनोव-70) के क्षेत्र में सहयोग करने पर सहमत हो गए हैं।

भारत ने दक्षेस देशों में पर्यवेक्षक के रूप में शामिल होने के लिए E.U. द्वारा दिए गए आवेदन का समर्थन किया है, जिसे ढ़ाका में हुई 27वीं मंत्रिपरिषद बैठक में अनुमति मिल गई है। इसी कारण अप्रैल, 2007 में दिल्ली में होने वाले दक्षेस सम्मेलन में पर्यवेक्षक का दर्जा मिल गया है। ई०यू० ने भी भारत को एशिया-यूरोप मीटिंग में पर्यवेक्षक का दर्जा दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। ई०यू० भारत के गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर स्वास्थ्य, शिक्षा की लगभग 118 परियोजनाओं में कार्य कर रहा है। ई०यू० तथा भारत मिलकर विश्व व्यापार संगठन के दोहा विकास एजेंड़ा में सहयोग कर रहे हैं। इजरायल मुद्दे पर गाजा पट्टी से इजरायल की सेना की वापसी के निर्णय का स्वागत किया गया। "दोनों पक्षों ने ईराक में पूर्ण संप्रभुता की पुनः स्थापना का भी स्वागत किया।

श्रीलंका मुद्दे पर सरकार एवं लिट्टे के बीच विवादों के निपटारे हेतु शांतिपूर्ण प्रयासों का दोनों ने स्वागत किया है। दोनों पक्षों ने जलवायु परिवर्तन पर यू०एन० फ्रेमवर्क कन्वेंशन को प्रबल समर्थन किया है तथा क्योटो प्रोटोकॉल की केन्द्रीय भूमिका पर जोर दिया है।"[24] इस प्रकार भारत की यूरोपीय-संघ के साथ लगातार उन्नति हो रही है जो काफी हद तक प्रधानमंत्री वाजपेयी की विदेश नीति की सार्थकता को दर्शाता है।

(ब) प्रधानमंत्री वाजपेयी एवं अमरीका

भारत व अमरीका दुनिया के दो बड़े एवं महत्वपूर्ण प्रजातान्त्रिक देश हैं तथा अपने-अपने क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थिति रखते हैं। 1996-98 के दौरान भारत-अमरीकी सम्बन्धों में जो मधुरता तथा विकास होने की प्रक्रिया उत्पन्न हुई, उसे एक बड़ा धक्का परमाणु परीक्षण करने के बाद अपने को परमॉणु शस्त्र धारक देश घोषित करने पर अमरीकी प्रशासन ने इसकी न केवल कड़ी आलोचना की अपितु इसके साथ ही भारत के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्धों को लगाने की घोषणा भी की। अमरीका तथा कुछ अन्य देशों ने मिलकर सुरक्षा परिषद से भारत की नई परमाणु नीति तथा शस्त्रों के विरुद्ध एक प्रस्ताव भी पारित करवाया तथा भारत को अपना परमाणु शस्त्र कार्यक्रम समाप्त कर CTBT पर एकदम हस्ताक्षर करने को कहा। अमेरिका ने यह माना कि भारतीय परमाणु परीक्षण पाकिस्तान को परमाणु परीक्षण करने के लिए प्रेरित करेंगे तथा दक्षिण एशिया में एक भयंकर और हानिकारक परमाणु दौर प्रारम्भ हो जाएगा।

''भारत के परमाणु परीक्षणों के 15 दिन बाद पाकिस्तान ने भी परमाणु परीक्षण कर परमाणु शस्त्र प्राप्त करने की घोषणा की तो अमेरिका का रूख और भी कड़ा हो गया तथा भारत-अमरीकी सम्बन्ध एक प्रकार से गतिहीन हो गए।''[25] भारत ने अपनी नई परमाणु नीति के विरुद्ध अमरीकी प्रतिक्रिया को सहज रूप में लिया। अपने परमाणु शस्त्र कार्यक्रम को जारी रखने का निर्णय लिया तथा सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर न करने की नीति अपनाई रखी, परन्तु अमरीका के साथ सम्बन्धों के महत्व तथा आवश्यकता को देखते हुए उसने उच्च स्तरीय वार्तालाप आरम्भ करने का निर्णय लिया। 12 जून, 1998 को जसवन्त सिंह (जो बाद में विदेश मंत्री बन गए) तथा अमरीकी उप-विदेश सचिव श्री स्ट्रोव टालवोट के मध्य उच्च स्तरीय वार्तालाप का पहला दौर हुआ।

जून, 1998 से जनवरी 1999 के मध्य सुरक्षा, परमाणु अप्रसार तथा निःशस्त्रीकरण के मुद्दों पर वार्तालाप के आठ दौर हुए। दोनों देश परमाणु मुद्दे पर अपने मतभेदों को कुछ कम करने में सफल हुए। मार्च, 1999 में अमरीकी कांग्रेस के एक मण्डल ने भारत का दौरा किया तथा बातचीत किया। परन्तु अप्रैल, 1999 में बी०जे०पी० नेतृत्व वाली साझी सरकार लोकसभा में विश्वासमत प्राप्त न कर सकी तथा एक कार्यवाहक सरकार बन गई। इससे भारत-अमरीकी वार्तालाप में कुछ शिथिलता आ गई।

लेकिन इसके बाद के कुछ महीनों में अमरीका ने भारत के विरुद्ध उत्तर-पोखरन काल के आर्थिक प्रतिबन्धों को कुछ ढ़ीला कर दिया।

मई-जून, 1999 में भारत तथा पाकिस्तान के मध्य भड़के कारगिल युद्ध के समय अमरीका ने वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाया। अमरीका ने पाकिस्तान को नियंत्रण रेखा के उल्लंघन से वापस हटने को कहा, दोनों देशों से नियन्त्रण रेखा का सम्मान करने को कहा तथा आपसी वार्तालाप आरम्भ करने को कहा। उसने पाकिस्तान को नियन्त्रण रेखा के उल्लंघन करने वालों को वापस बुलाने के लिए कहा। भारत के सन्तुलित तथा संयम की प्रशंसा भी की। पाकिस्तान द्वारा कारगिल क्षेत्रों से घुसपैठ समाप्त करवाने में अमरीका ने एक अच्छी भूमिका निभाई। इसने भारत-अमरीकी सम्बन्धों के वातावरण को और भी सकारात्मक तथा सुखद बना दिया।

25 जुलाई, 1999 को विदेशमंत्री जसवन्त सिंह तथा अमरीकी विदेश सचिव मैडम अल्ब्राइट के मध्य सिंगापुर में एक बैठक हुई तथा इसने दोनों देशों के सम्बन्धों में गुणात्मक परिवर्तन किया। सी०टी०बी०टी० पर मतभेद के बावजूद अमरीका ने कश्मीर मुद्दे पर एक अच्छी सोच को प्रकट किया। यह बैठक उद्देश्यपूर्ण, मित्रतापूर्ण तथा उत्पादक रही अर्थात् भविष्य में अच्छे सम्बन्धों का संकेत मिला।

जुलाई-अगस्त, 1999 में भारत-अमरीकी सम्बन्धों के वातावरण में और सुधार हुआ। भारत ने कारगिल युद्ध के मुद्दे पर अमरीकी नीति की प्रशंसा की, क्योंकि इसमें पाकिस्तान को कारगिल घुसपैठ समाप्त करने के लिए कहा गया था। अमरीकी कांग्रेस में पेश भारत विरोधी दो संशोधनों 'गुडलिंग संशोधन तथा बर्टन संशोधन' के रद्द किए जाने को भी भारतीय सरकार ने सराहा। ऐसा स्पष्ट दिखाई दिया कि चिर-परिचित भारत-विरोधी अमरीकी रवैया अब परिवर्तित हो रहा था तथा अमरीका भारत को महत्व दे रहा था। सितम्बर, 1999 में अफगानिस्तान संकट पर भारत-अमरीका वार्तालाप हुआ तथा दोनों देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के उभर रहे संकट पर चिन्ता व्यक्त की तथा इसके विरुद्ध सहयोगी प्रयासों की आवश्यकता को स्वीकार किया।

भारत में 13वीं लोकसभा के चुनावों के पश्चात 13 अक्टूबर, 1999 के 'राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन' की सरकार का गठन हुआ। यह भारत में लोकतन्त्र की सफलता का एक बड़ा प्रतीक माना गया तथा अमरीका ने प्रसन्नता व्यक्त की। इसके एक दिन पहले पाकिस्तान में लोकतन्त्रीय सरकार का गला दबाकर सैनिक शासन की स्थापना हुई थी, जिसकी अमरीका ने तीखी आलोचना की। अमरीका ने भारत में लोकतन्त्र की सफल प्रक्रिया, बढ़ती आर्थिक प्रगति तथा तकनीकी विकास विशेषकर सूचना-तकनीक विकास को देखते हुए भारत के साथ सम्बन्धों को अधिक महत्त्व देने की नीति अपनाई। दिसम्बर, 1999 में जब भारतीय वायुसेना का एक हवाई जहाज आई०सी०-814 को इस्लामिक आतंकवादियों ने अगवा कर कन्धार (अफगानिस्तान) में उतार लिया तो अमेरिका ने कड़े शब्दों में निन्दा की तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के पक्ष में कार्य करने की नीति को दोहराया।

अमरीकी राष्ट्रपति की भारत यात्रा तथा भारत-अमरीकी सम्बन्ध :

मार्च, 2000 में भारत-अमरीकी सम्बन्धों में एक बड़ी प्रगति तब हुई जब अमरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने पाँच दिन की भारत यात्रा की। इस अवसर पर दोनों देशों ने अपने सम्बन्धों के भविष्य के प्रति एक साझी सोंच बनाई तथा 21वीं शताब्दी में भारत-अमरीका सहयोग को व्यापक रूप से तथा तेज गति से विकसित करने का निर्णय किया। दोनों देशों ने एन०पी०टी०, सी०टी०बी०टी० तथा भारतीय परमाणु शस्त्र नीति के प्रति विद्यमान मतभेदों को अपने सम्बन्धों पर हावी न होने देने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने एक दृष्टि वक्तव्य (Vision Statement) पर हस्ताक्षर किए। दोनों देशों में विज्ञान तथा टेक्नोलॉजी क्षेत्र में सहयोग के सम्बन्ध में एक समझौता हुआ एवं व्यापार तथा निवेश पर $1-4 बिलियन के समझौते, जो भारतीय तथा अमरीकी कम्पनियों ने सूचना तकनीक, पर्यटन, ऊर्जा तथा वातावरण रक्षण के सम्बन्ध में किए गये, इन सबने यह स्पष्ट दिखलाया कि दोनों देशों ने नई शताब्दी में अपने सम्बन्धों को विकसित करने के लिए एक वास्तविक पंहल की थी तथा द्विपक्षीय सम्बन्धों के विकास को एक नई सशक्त आधारशिला दी थी।

21 मार्च, 2000 को भारत तथा अमरीका ने द्विपक्षीय सहयोग को बढ़ाने की ओर एक स्वागत भरा पग उठाया जब यह प्रण लिया गया कि विश्व के दो सबसे बड़े लोकतंत्रों में दीर्घकाल तक चलने

वाले, राजनीतिक तौर पर रचनात्मक तथा आर्थिक तौर से उत्पादक भागीदारी स्थापित की जायेगी। "हम नियमित परामर्श करेंगे तथा एशिया और इसके चार सामरिक स्थायित्व के लिए इकट्ठे कार्य करेंगे। हम आतंकवाद तथा क्षेत्रीय सुरक्षा की चुनौतियों के विरुद्ध बड़े प्रयास करेंगे। हम संयुक्त राष्ट्र सहित अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा व्यवस्था को शक्तिशाली बनाएंगे तथा शांति सुरक्षा प्रयासों में संयुक्त राष्ट्र का समर्थन करेंगे। हम स्वीकार करते हैं कि दक्षिण एशिया में विद्यमान तनाव दक्षिण एशिया के राष्ट्रों द्वारा ही हल किये जा सकते हैं। भारत इस क्षेत्र में सहयोग, शांति तथा स्थायित्व में वृद्धि के प्रति बचनबद्ध हैं।"

अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन ने प्रधानमंत्री वाजपेयी को अमेरिका आने का निमंत्रण दिया जिसे वाजपेयी ने स्वीकार कर लिया। यह भी निर्णय लिया गया कि भविष्य में अमरीकी राष्ट्रपति या भारतीय प्रधानमंत्री को नियमित रूप से मिलना चाहिए ताकि द्विपक्षीय वार्तालाप को संस्थागत रूप प्रदान किया जा सके। वक्तव्य में कहा गया कि दोनों देश इस विषय से सहमत हैं तथा इसके अतिरिक्त भी उच्चस्तरीय परामर्श तथा साझे कार्य समूह में वार्तालाप होंगे एवं यह उन सभी मुद्दों और विषयों के सम्बन्ध में होंगे, जिनके सम्बन्ध में हमने सहयोग बढ़ाने तथा संस्थागत करने का निश्चय किया है। दोनों देश लोगों के साथ रिश्तों को उत्साहित तथा आगे से और भी दृढ़ करेंगे। दोनों देशों ने और परमाणु परीक्षण न करने के निर्णय के प्रति बचनबद्धता को दोहराया तथा यह स्वीकार किया कि वह परमाणु शस्त्रों के लिए आवश्यक सामग्री के उत्पाद को रोकने की सन्धि के लिए जल्दी बातचीत की प्रक्रिया को आरम्भ करने के साझे प्रयास करेंगे।

इस विचार वक्तव्य में स्पष्ट रूप में कहा गया कि भारत तथा अमरीका भविष्य की ओर देखेंगे तथा भूतकाल को भूतकाल ही रखेंगे तथा आने वाले वर्षों में भारत-अमरीका सम्बन्धों के निर्माण के लिए नई और स्वस्थ आधार शिलाएं रखेंगे। नीति पत्र ने यह स्पष्ट दिखलाया कि अब अमरीका भारत को एक स्वतन्त्र तथा सक्रिय महत्वपूर्णकर्ता के रूप में देख रहा था तथा भारत और पाकिस्तान को एक धरातल पर रखने की नीति छोड़ रहा था।

भारत तथा पाकिस्तान में वार्तालाप आरम्भ किये जाने की इच्छा करते हुए अमरीकी राष्ट्रपति ने यह स्पष्ट कहा कि, "तुम कभी एक वार्तालाप के चलते रहने की आशा नहीं कर सकते जब तक हिंसा समाप्त न हो तथा नियंत्रण रेखा का सम्मान न किया जाए।" यह भी घोषणा की गई कि

अमरीका, भारत तथा पाकिस्तान के बीच मध्यस्थता नहीं करेगा। भारत तथा पाकिस्तान के सम्बन्धों के सन्दर्भ में अमरीकी नेतृत्व ने यह कहा कि भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों में सुधार के लिए कुछ सिद्धान्तों को अपनाया जाना चाहिए :-

(1) उपमहाद्वीप में सब को संयम बनाए रखना चाहिए।

(2) पाकिस्तान को भारत के साथ तनावों को कम करना चाहिए।

(3) कश्मीर में नियंत्रण रेखा का सम्मान किया जाना चाहिए।

(4) नियंत्रण रेखा के पास नागरिकों पर हमले करने अमानवीय तथा गैर लोकतांत्रिक है।

(5) कश्मीर समस्या का कोई सैनिक समाधान नहीं हो सकता।

(6) पाकिस्तान को चुनौतियों का सामना करना होगा, नहीं तो उसे अलग-थलग होना पड़ेगा।

(7) भारत तथा पाकिस्तान में वार्तालाप आरम्भ करने का कोई मार्ग तलाश किया जाना चाहिए।

राष्ट्रपति क्लिंटन की यात्रा ने स्पष्ट रूप से अमरीका की भारत के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों को दृढ़ करने की नई नीति को प्रकट किया। भारत के न्यूनतम परमाणु निवारण निर्णय के प्रति मतभेद रखते हुए भी अमरीका ने भारत की सुरक्षा चिंता को समझने का प्रयास किया। अमरीकी राष्ट्रपति की यात्रा की उपलब्धियों की समीक्षा करते हुए वाजपेयी ने यह कहा कि इस यात्रा ने द्विपक्षीय सम्बन्धों को ऐतिहासिक मोड़ देने का अनुपम अवसर दिया। दोनों देशों ने आतंकवाद, अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, पार-सीमा आतंकवाद तथा नशीले पदार्थो की तस्करी से जुड़े आतंकवाद के विरुद्ध सहयोगपूर्ण तथा संयुक्त रूप से कार्य करने का निर्णय किया। इस यात्रा के कुछ दिनों बाद ही अमरीकी गुप्तचर एजेन्सी सी०आई०ए० ने भारत में अपना एक कार्यालय खोला ताकि दुनिया के इस भाग में विद्यमान आतंकवादी समूहों की गतिविधियों पर निगरानी रखी जा सके तथा भारत की खुफिया एजेन्सियों के साथ इस सम्बन्ध में सहयोग किया जा सके।

प्रधानमंत्री वाजपेयी की अमरीका यात्रा तथा भारत-अमरीका सम्बन्ध (सितम्बर, 2000)

भारत-अमरीकी सम्बन्धों में उत्पन्न हुई सकारात्मक सहयोग की प्रक्रिया को और दृढ़ता प्रदान करने के लिए जैसा कि दृष्टि-2000 में अंकित किया गया था, भारतीय प्रधानमंत्री तथा अमरीकी राष्ट्रपति ने सितम्बर, 2000 में दोनों देशों के सम्बन्धों को और अधिक विकसित करने का निश्चय

दोहराया। ऐसा प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी की अमरीकी यात्रा (सितम्बर, 2000) के दौरान किया गया। पाँच दिवसीय यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री ने अमरीकी कांग्रेस को भी सम्बोधित किया तथा राष्ट्रपति क्लिंटन तथा अन्य अमरीकी अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श भी किया। भारत ने 6 बिलियन डॉलर के वाणिज्यिक समझौते किए जिनका सम्बन्ध ऊर्जा, ई-कामर्स तथा बैंकिंग क्षेत्रों से था। अमरीकी वस्तुओं और सेवाएं खरीदने के लिए अमरीकी एक्जिम बैंक के साथ 900 मिलियन डालर ऋण लेने का समझौता भी हुआ। भारत में 3 ऊर्जा केन्द्र स्थापित किए जाने के भी तीन समझौते किए गए। दोनों देशों के सम्बन्धों के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमुख विषयों पर सहमति बनी :-

(1) आतंकवाद का मुकाबला करने तथा इसे समाप्त करने के लिए द्विपक्षीय सहयोग को और दृढ़ किया जाएगा।

(2) सुरक्षा तथा अप्रसार के मुद्दों पर विद्यमान मतभेदों को सीमित करने के लिए आगे से अधिक वार्तालाप किए जाएंगे।

(3) भारत परमाणु परीक्षणों पर लगाई गयी स्वैच्छिक रोक को तब तक जारी रखेगा जब तक सी०टी०बी०टी० प्रभावित नहीं हो जाती, परन्तु भारत ऐसा अपने सर्वोच्च्व राष्ट्रीय हितों की आवश्यकता अनुरूप ही करेगा।

(4) एशिया सुरक्षा वार्तालाप को जारी रखा जाएगा ताकि आपसी समझ को शक्तिशाली बनाया जा सके।

(5) दोनों देश यह स्वीकार करते हैं कि दक्षिण एशिया की समस्याएं (भारत-पाक) दक्षिण एशिया के देशों द्वारा शांतिपूर्ण साधनों से ही हल की जा सकती है।

(6) अमरीका कश्मीर समस्या में मध्यस्थता नहीं करेगा।

(7) पूंजी निवेश को उत्साहित करने और विश्व तथा व्यापर व्यवस्थाओं को दृढ़ता प्रदान करने के लिए द्विपक्षीय व्यापार वातावरण में सुधार किया जाएगा।

(8) दोनों देशों ने स्वच्छ वातावरण, ऊर्जा तथा वैज्ञानिक और टेक्नोलॉजी संगठनों पर साझे परामर्श समूह की कार्यवाही पर संतोष प्रकट किया।

(9) डिजिटल विभाजन के अन्त को कम किया जाएगा ताकि सूचना टेक्नोलॉजी का लाभ गरीब तथा अमीर दोनों प्रकार के देशों को प्राप्त हो सके।

(10) दोनों देशों में आपसी समझ को बढ़ाने के क्षेत्र में अमरीका में बसे भारतीयों के योगदान को स्वीकार कर इसकी प्रशंसा की गई।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कामना की कि आने वाले 3 वर्षों में 15 मिलियन डॉलर का अमरीकी निवेश भारतीय बाजारों में हो सकेगा। यात्रा के अन्त में जारी किए गए संयुक्त वक्तव्य में यह कहा गया कि इस यात्रा ने दोनों देशों के सम्बन्धों में एक गुणात्मक परिवर्तन लाने का काम किया तथा सम्बन्धों के राजनीतिक, आर्थिक, वाणिज्यिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, सामाजिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्रो में आपसी समझ तथा सहयोग बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सन् 2001 के आरम्भ में भारत-अमरीकी सम्बन्धों का बहुत अच्छा प्रोत्साहन उस समय मिला जब नए अमरीकी राष्ट्रपति जार्ज डब्ल्यू बुश के प्रशासन ने विदेशी सम्बन्धों में भारत को अधिक महत्व दिए जाने का निर्णय लिया। अमेरिका के विदेश सचिव जनरल कोलिन पावेल ने फरवरी, 2001 में अमरीकी सीनेट में यह कहा कि अमरीकी विदेश नीति में भारत को एक अच्छी पहल देनी आवश्यक थी क्योंकि भारत एक परमाणु सम्पन्न देश था तथा यह अब अपनी अर्थव्यवस्था को एक मुक्त अर्थव्यवस्था बना रहा है। ''भारत को पहल देने की क्लिंटन प्रशासन की नीति को बुश प्रशासन ने जारी रखने का निर्णय लिया। इस निर्णय ने भारत-अमरीकी सम्बन्धों के विकास को प्रोत्साहित किया।''[26]

फरवरी, 2001 में बुश प्रशासन ने इंग्लैण्ड द्वारा भारतीय नौ सेना को सीकिंग हेलीकाप्टर की आपूर्ति किए जाने के सम्बन्ध में लगाई गई पाबन्दी को समाप्त कर दिया और यह भी संकेत मिला कि पोखरन-2 के बाद अमरीका द्वारा भारत पर लगाई गई पाबन्दियों को नरम किया जाएगा या फिर इन्हें समाप्त करने की प्रक्रिया को आरम्भ किया जाएगा। अप्रैल, 2001 में भारतीय विदेश तथा रक्षा मंत्री जसवंत सिंह ने अमरीका का दौरा किया तथा बुश प्रशासन के साथ भी बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस यात्रा से यह भी संकेत मिला कि अब भारत तथा अमरीका आपसी सम्बन्धों को अधिक स्वस्थ सहयोगी तथा दृढ़ बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

यद्यपि अमेरिका ने पाकिस्तान को आतंकवाद समर्थक देश तो घोषित न करने का निर्णय लिया तथापि इसने कश्मीर के मुद्दे पर भारतीय सकारात्मक दृष्टिकोण की महत्ता को स्वीकार करना आरम्भ

कर दिया। बुश प्रशासन के द्वारा यह भी विचार प्रकट किया गया कि विद्यमान पार-सीमा आतंकवाद के पीछे पाकिस्तान के राष्ट्रपति का आशीर्वाद विद्यमान था। वाजपेयी ने अमरीका के साथ मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का सामना करने के लिए आपसी सहयोग को बढ़ाने का निर्णय दोहराया। अब यह भी अनुभव किया जाने लगा कि अमरीका एशिया में चीन की तुलना में अब लोकतंत्रीय भारत को अधिक अधिमान देने की ओर झुक रहा था।

मई, 2001 में बुश प्रशासन द्वारा घोषित राष्ट्रीय मिसाइल सुरक्षा प्रोग्राम के प्रति भारत ने अपना समर्थन प्रकट किया और यह स्वीकार किया कि इसके द्वारा शस्त्र नियंत्रण तथा निःशस्त्रीकरण की दिशा में प्रगति होगी। जुलाई-अगस्त, 2001 में जब अमरीका के नव-नियुक्त राजदूत श्री राबर्ट डी-ब्लैकवेल भारत पहुँचे तथा इंडिया टुडे के कार्यकारी संपादक श्री राजचेंगप्पा से कहा कि मई, 1998 के बाद लगे आर्थिक तथा सैनिक प्रतिबन्ध समाप्त किए जा सकते हैं। कहा कि दोनों देशों के उच्च्व स्तरीय नीति-निर्माता लगातार सम्पर्क में रहेंगे, यात्राओं का आदान-प्रदान करेंगे तथा दोनों देशों के सम्बन्ध को दक्षिण एशियाई परिप्रेक्ष्य से बाहर लाकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को चुनौतियों के संदर्भ में विकसित किया जाएगा। इस प्रकार भारत-अमरीकी सम्बन्ध 2001 के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते एक नई आशा तथा विश्वास से परिपूर्ण हो गए।

11 सितम्बर, 2001 को जब अमरीका में विश्व व्यापार केन्द्र तथा अमरीकी सुरक्षा प्रतिष्ठान-पेंटागन पर आतंकवादी हमले हुए जिसमें भारी जानमाल की हानि हुई तो अमरीका ने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को जड़ से उखाड़ने का प्रण लिया। राष्ट्रपति बुश ने आतंकवाद को एक बुराई एक कलंक और बर्बरतापूर्ण, कायरतापूर्ण और घिनौना कार्य माना तथा इस बुराई का सामना करने तथा इसकी समाप्ति के लिए कार्यवाही करना अमरीकी विदेश नीति का सबसे प्रमुख लक्ष्य माना। इस संदर्भ में अमरीका ने पाकिस्तान के साथ अपने सम्बन्धों को दृढ़ करना एक आवश्यकता माना, क्योंकि अफगानिस्तान के तालिबान शासन के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पाकिस्तान ही एक ऐसा देश था जिसकी धरती तथा वायुमण्डल का प्रयोग किया जा सकता था।

भारत ने अमरीका में हुए आतंकवादी आक्रमणों की न केवल घोर निन्दा की अपितु अमरीकी लोगों के साथ पूर्ण सहानुभूति भी प्रकट की, आतंकवाद विरोधी कार्यवाही में अमरीका के साथ पूर्ण सहयोग करने की पेशकश की तथा विश्व स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को इसके सभी स्वरूपों के

साथ समाप्त करने के लक्ष्य को दृढ़ता से दोहराया। "अमरीकी नेताओं ने अब कश्मीर घाटी में विद्यमान आतंकवाद को भी एक बुराई और मुसीबत के रूप में देखना आरम्भ कर दिया। सितम्बर, 2001 के अन्तिम सप्ताह में अमरीका ने भारत तथा पाकिस्तान पर मई, 1998 के बाद लगाए गये सभी प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया। भारत ने इस निर्णय का स्वगत किया।"[27]

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी अपनी विदेश यात्रा के दौरान तथा अमेरिका में हुए आतंकवादी हमले के बाद बदले विश्व परिदृश्य में तीन देशों की 10 दिवसीय यात्रा पर रूस, अमेरिका तथा ब्रिटेन की यात्रा की। प्रधानमंत्री अपनी विदेश यात्रा के दूसरे चरण में 9 नवम्बर, 2001 को अमेरिकी राष्ट्रपति बुश से मिले। महत्वपूर्ण वार्ता के दौरान बुश ने स्पष्ट किया कि जम्मू कश्मीर में आतंकवाद की समस्या से लड़ने में अमेरिका भारत को पूर्ण सहयोग देगा तथा आतंकवाद का जहाँ कहीं और जिस रूप में है, उसे खत्म करने हेतु अमेरिका का सहयोग भारत को मिलता रहेगा। "नवम्बर, 2001 की अमरीकी यात्रा के दौरान भारत-अमरीका सम्बन्धों के बीच निम्न नए कदम स्पष्ट हुए :-

(1) भारत-अमरीका रक्षा सहयोग में नए अध्याय का संकेत देते हुए सैनिक समान और असैनिक तथा सैनिक इस्तेमाल की चीजों के हस्तांतरण पर बातचीत के लिए सहमत हुए।

(2) 1998 के प्रतिबन्धों के कारण रूकी पड़ी रक्षा सामग्री अब जारी हो सकती है।

(3) दिसम्बर, 2001 में नई दिल्ली में 'रक्षा नीति समूह' की बैठक में हथियार खरीद के बारे में वार्ता करने का फैसला किया गया।

(4) दोनों देशों के मध्य सहयोग का एक नया क्षेत्र असैनिक उद्देश्यों के लिए नाभिकीय क्षेत्र भी होगा। परमाणु सुरक्षा की तीन परियोजनाएं शुरु हुई।

(5) दोनों देशों ने साइबर आतंकवाद के खिलाफ साझा पहल की घोषणा की।"[28]

13 दिसम्बर, 2001 के दिन भारतीय संसद पर हुए आतंकवादी हमले की अमेरिका ने कड़े शब्दों में निन्दा की तथा इसे उदारवाद एवं लोकतन्त्र पर आक्रमण माना। भारत के पक्ष का समर्थन किया तथा पाकिस्तान पर यह दबाव डाला कि वह अपने भूक्षेत्र में विद्यमान आतंकवादी संगठनों की कार्यवाहियों की समाप्ति के लिए प्रयास करें। अमरीका ने लश्करे तोएबा तथा जैश-ए-मोहम्मद

जैसे-आतंकवादी संगठनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। भारत-अमरीका सम्बन्धों में आतंकवाद की समाप्ति के मुद्दे पर पूर्ण सहमति बनी तथा दोनों देशों ने आपसी आर्थिक, राजनीतिक, सामरिक तथा सुरक्षा सम्बन्धों को विकसित करने का निर्णय लिया। सुरक्षा सहयोग में महत्वपूर्ण निर्णय के साथ अमरीका ने भारत को सुरक्षा उपकरणों को बेंचने का निर्णय लिया। "अप्रैल, 2002 में अमरीका ने भारत की सुरक्षा आवश्यकताओं को देखते हुए तथा सुरक्षा आवश्यकताओं को स्वीकार करते हुए भारत को उच्च्य टेक्नोलॉजी रडार बेंचना स्वीकार किया। भारत के साथ सम्बन्धों के क्षेत्र में अब अमरीका द्विपक्षीय, क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं के संदर्भ में सम्बन्ध विकसित करने की ओर अधिक झुक रहा है।"[29]

"बुश सरकार ने आर्थिक मुद्दों पर भी पूर्व सरकार की तरह से आन्तरिक कारणों जैसे मजदूर कानून, पर्यावरण, मानवाधिकार आदि के आधार पर अड़चनें नहीं पैदा की। कश्मीर के मुद्दे पर भी अमेरिका की मूलनीति में बदलाव तो नहीं आया। वह अभी भी इस क्षेत्र को विवादास्पद मुद्दा मानता है। परन्तु थोड़ा सा बदलाव भारत के रक्षा शंकाओं को समझने तथा सीमा रेखा की पवित्रता पर बल देने पर अवश्य आया है।"[30]

2002 से मई 2004 के समय के दौरान भारत-अमरीका सम्बन्ध लगातार प्रगति करते रहे। दोनों देशों ने आपसी सम्बन्धों को और अधिक सहयोगी तथा उपयोगी बनाने के यत्न किए। परन्तु अमरीकी विदेशी नीति में पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों को सामरिक रूप में अधिक विकसित करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, विशेषकर पाकिस्तान की ओर से भारत में प्रायोजित पार-सीमा आतंकवाद की समाप्ति के प्रति अमरीकी तथा भारतीय दृष्टिकोणों में विद्यमान अन्तर ने द्विपक्षीय सम्बन्धों की प्रकृति तथा गति को सीमित ही बनाए रखा। अमरीका पाकिस्तान को अपने आतंकवादी विरोधी अभियान का एक कर्ता स्वीकार करता रहा तथा बाद में उसने पाकिस्तान को गैर-नाटो मित्र-देश का दर्जा भी दे दिया। शब्दो में तो भारत के साथ सम्बन्धों के महत्व को पूर्णरूप में स्वीकार किया, परन्तु वास्तविक व्यवहार में पाकिस्तान के साथ सामरिक सम्बन्धों के विकास को प्राथमिकता दी, पाकिस्तान को आर्थिक तथा सैनिक सहायता देने की नीति को पुनर्जीवित किया तथा पाकिस्तान के कर्ज भी माफ किये गये।

"इस प्रकार 2002-2004 के दौरान भारत-अमरीकी सम्बन्ध पाकिस्तानी तत्व से प्रभावित रहे, परन्तु अमरीकी तथा भारतीय नेताओं ने सदैव ये घोषणाएं कीं कि दोनों देशों के सम्बन्ध आपसी राष्ट्रीय

हितों, आवश्यकताओं और साझे मन्तब्यों पर आधारित थे तथा किसी तीसरे देश के साथ सम्बन्धों की प्रकृति पर निर्भर नहीं करते थे।"[31] सितम्बर, 2002 में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन में भाग लेने के समय अमरीकी राष्ट्रपति बुश के साथ द्विपक्षीय वार्तालाप का एक दौर किया तथा पाँच क्षेत्रों को चिन्हित किया- उच्च तकनीक, अंतरिक्ष अनुसंधान, नागरिक परमाणु तकनीक, आर्थिक और सुरक्षा सहयोग तथा क्षेत्रीय और वैश्विक मुद्दे।

दिसम्बर, 2002 में भारत और अमरीका ने एक गैर-प्रत्यर्पण समझौते (Non extradition Pact) पर हस्ताक्षर किए जिसमें यह स्वीकार किया गया कि वह अपने नागरिकों को अन्तर्राष्ट्रीय ट्रिब्यूनलों तथा तीसरे देशों को नहीं सौंपेगे। अन्तर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय की स्थापना के पश्चात ऐसा समझौता करना आवश्यक हो गया था। फरवरी, 2003 में दोनों देशों के प्रशासनिक मुखियाओं का एक दूसरे के यहाँ दौरा हुआ तथा विभिन्न समझौते हुए। मार्च, 2003 में अमरीका ने इस्रायल द्वारा भारत को अवाक्स (AWACS) बेचे जाने के निर्णय को स्वीकार कर लिया। इस निर्णय पर भारत ने प्रसन्नता व्यक्त की।

जून, 2003 में उप-प्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी ने अमेरिका की यात्रा की तथा अमरीकी उपराष्ट्रपति डिक्चेनी; रक्षा सचिव डोनाल्ड रम्सफील्ड, राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार कोंडेलिजा राईस से महत्वपूर्ण वार्तालाप किया। राष्ट्रपति बुश से भी 30 मिनट बातचीत की। बुश ने भारत द्वारा पाकिस्तान के साथ शांति प्रक्रिया आरम्भ करने की प्रधानमंत्री वाजपेयी की पहल की प्रशंसा की। आडवाणी ने सुझाव दिया कि पाकिस्तान पर सकारात्मक प्रत्युत्तर देने के लिए दबाव डाला जाना चाहिए और उसे सीमा-पार घुसपैठ को समाप्त किए जाने के लिए आगे आना चाहिए।

भारत अमरीका तथा यूरोपीय देशों के साथ सम्बन्धों के तीव्र विकास के उद्देश्य को अधिक महत्व दे रहा था। लेकिन भारत और अमरीका के बीच कुछ मुद्दों पर विद्यमान कुछ मतभेद द्विपक्षीय सम्बन्धों के तीव्र विकास को धीमा कर रहे थे। ये थे -

(1) अमरीका की ईराक नीति और युद्ध के सम्बन्ध में भारत के संदेह। भारत यह चाहता था कि इराक में कार्यवाही यू०एन०ओ० के नेतृत्व में ही होनी चाहिए थी।

(2) भारत अमरीका द्वारा चलाए जा रहे अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष को अधूरा और

सीमित मानता था, क्योंकि अमेरिका पाकिस्तान के क्षेत्र से भारत में आ रहे सीमा-पार आतंकवाद के विरुद्ध एक प्रकार का नरम दृष्टिकोण ही अपनाए हुआ था।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध अमरीकी संघर्ष में अमरीकी प्रशासन पाकिस्तान को आवश्यकता से अधिक महत्व और सहायता दे रहा था।

(4) भारतीय परमाणु शस्त्र नीति के प्रति अमरीका का दृष्टिकोण भारतीय दृष्टिकोण से काफी अलग था। जहाँ भारत अपने परमाणु तथा मिसाइल कार्यक्रम को अपनी राष्ट्रीय हित की महत्वपूर्ण आवश्यकता के रूप में देखता था वहाँ अमरीका इसे परमाणु प्रसार को सीमित करने की आवश्यकता के आधार पर देखता था।

(5) उभर रहे विश्वक्रम के सम्बन्ध में अमरीका भारत को अपने पक्ष में प्रभावित करना चाहता था। वहाँ भारत स्वतन्त्र विदेश नीति के आधार पर तथा विश्व व्यवस्था को बहुकेन्द्रीय व्यवस्था बनाने की आवश्यकता के आधार पर ही उभर रहे विश्वक्रम को देखने का इच्छुक था।

(6) भारत द्वारा संयुक्तराष्ट्र-सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता की प्राप्ति के लिए किए जा रहे प्रयासों को अमरीका अपना समर्थन देने के लिए तैयार नहीं था।

इन छः प्रमुख तत्वों ने 2002-2004 के समय में भारत-अमरीकी सम्बन्धों के विकास को निर्धारित किया। सभी क्षेत्रों में भारत-अमरीकी सम्बन्ध विकसित तो होते रहे, परन्तु यह न तो अच्छी गति प्राप्त कर सके और न ही वांछित स्वरूप।

वर्ष-2004 के आरम्भ में भारत-अमरीकी सम्बन्धों को काफी अधिक सुदृढ़ और सहयोगी बनाने के लिए एक बड़ा प्रयास किया गया, जब प्रधानमंत्री वाजपेयी तथा राष्ट्रपति बुश ने एक साथ ही एक समान वक्तब्य 13 जनवरी, 2004 के दिन जारी किया। दोनों नेताओं द्वारा जारी इस वक्तब्य में यह घोषणा की गयी कि भारत और अमरीका गैर सैनिक, परमाणु कार्यक्षेत्र, नागरिक अंतरिक्ष प्रोग्रामों, उच्च्व तकनीक व्यापार एवं मिसाइल सुरक्षा प्रोग्रामों के सम्बन्ध में आपसी सहयोग का विकास करेगे। इस वक्तव्य में यह भी दिखाया कि दोनों देश अब पोखरन-II के बाद के समय तथा सी.टी.बी.टी. के मुद्दे को छोड़कर आपसी सम्बन्धों का विकास करने के लिए कार्य कर रहे थे। वाजपेयी ने कहा कि

दोनों देशों के सम्बन्ध अब और अधिक रूप में साझें मूल्यों तथा साझे हितों पर आधारित हो रहे थे। दोनो देश विश्व शांति और समृद्धि के लिए सहयोग कर रहे थे।

भारत-अमरीकी सम्बन्धों को दृढ़ता और व्यापकता प्रदान करने के लिए जारी किया गया यह साझा वक्तव्य पिछले 18 महीने की उच्च स्तरीय द्वि-पक्षीय कूटनीतिक वार्तालापों तथा नेताओं की यात्राओं का सकारात्मक परिणाम था। इस घोषणा के कुछ दिन बाद 21 जनवरी, 2004 को विदेश मंत्री यशवन्त सिन्हा ने अमेरिकी यात्रा की तथा दोनों देशों में सामरिक सम्बन्धों को विकसित करने की प्रक्रिया को दृढ़ता प्रदान करने का प्रयास भी किया।

अमरीकी नेताओं द्वारा भी प्रयास किया गया। भारत ने पाकिस्तान के सम्बन्धों को सुधारने के सम्बन्ध में जो नया और अच्छा प्रयास प्रारम्भ किया था। उससे भी प्रसन्न होकर और उत्साहित. होकर अमरीका ने भारत के साथ सम्बन्धों के विकास को कुछ अधिक महत्व देने का निर्णय लिया। इस प्रकार वर्ष 2004 के आरम्भ में एक आशाजनक शुरुआत के बाद भारत-अमरीका सम्बन्ध पहले की भाँति ही विकसित होते रहे। दोनों देशों ने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नागरिक, उच्च तकनीक तथा सामरिक सम्बन्धों में प्रगति की प्रक्रिया को तो आगे बढ़ाया परन्तु प्रगति की गति धीमी ही रही।

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत के स्थायी सदस्यता के दावे के बारे में अमरीकी रवैया आने वाले दिनों में साफ हो जाएगी, लेकिन यह पहले से ही स्पष्ट है कि महाशक्ति देश भारतीय दावेदारी और बहुविधि सहूलियतें मुहैया कराने के ब्यौरे देखें तो अमरीकी चश्में में भारत-पाक का फर्क साफ हो जाता है। "अपनी दूसरी पारी में पहले से कहीं अधिक ताकतवर अमरीकी राष्ट्रपति की नीतियों पर प्रतिक्रिया दर्शाते हुए भारत को कहना न होगा बल्कि अधिक कूटनीतिक तैयारी और दूरदर्शिता का परिचय देना होगा।"[32]

अमरीका की विश्व में बढ़ती भागीदारी तथा उपनिवेशवादी, नव-उपनिवेशवादी नीतियों तथा पेंटागन के लीक हो चुके अत्यन्त गोपनीय दस्तावेज इस बात की पुष्टि करते हैं कि अमरीका कश्मीर मसले को दुनिया का सबसे ज्यादा विस्फोटक, वेहद संवेदनशील और रणनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता है। "गंगा के पानी को लेकर भारत के बीच मध्यस्थता के नाम पर सैनिक हस्तक्षेप आगे की रचना में शामिल हो सकता है।"[33]

आशा की जाती है कि आने वाले समय में भारत-अमरीकी सम्बन्ध सकारात्मक रूप में विकसित होते रहेंगे। दोनों देश न केवल अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध 'युद्ध' में सहयोग करेंगे अपितु आपसी सम्बन्धों के विभिन्न क्षेत्रों-आर्थिक, सामरिक (2 मार्च, 2006 का असैनिक परमाणु समझौता), सुरक्षा व्यापार तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी सहयोग को व्यापक रूप में सफलता से विकसित करेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि अमरीका भारत के साथ सम्बन्धों को अपनी पाकिस्तान नीति से अलग रखे।

भारत की विश्व राजनीति में भूमिका की वास्तविकता को महत्व दे तथा सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता के लिए भारतीय दावे का समर्थन करे। भारत अमरीकी असैनिक परमाणु समझौते को लागू होने के पहले अमरीका को चाहिए कि वह भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा, सम्प्रभुता तथा आन्तरिक स्थिति (मार्क्सवादियों तथा अन्य दलों के नेताओं द्वारा समझौते पर आपत्ति) को देखते हुए अर्थात् आपत्तियों को सुलझाते हुये समझौते को सकारात्मक नजरिया प्रदान करे तथा सम्बन्धों को तीव्र गति से बढ़ाने का मनोयोग से प्रयास करे ताकि विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत तथा विश्व के सबसे मजबूत लोकतांत्रिक देश अमरीका के बीच समन्वय तथा सहयोग के संचरण को गति मिल सकें।

(स) प्रधानमंत्री वाजपेयी एवं एशिया :

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में आजकल एशिया का महत्व बढ़ रहा है। 19वीं शताब्दी यूरोपियन देशों की प्रभुता की शताब्दी थी, जनसंख्या अल्प होते हुए भी अपनी उत्कृष्ट वैज्ञानिक, औद्योगिक, आर्थिक और सैनिक शक्ति के कारण, ब्रिटेन, फ्रांस, हॉलैण्ड, बेल्जियम, जर्मनी ने अपने देश की जनसंख्या और क्षेत्रफल से कई गुना अधिक जनसंख्या और क्षेत्रफल रखने वाले एशिया के अधिकांश देशों पर अपनी प्रभुता स्थापित की। किन्तु 20वीं शताब्दी में एशिया में यूरोप के सम्पर्क से अपनी स्वाधीनता पाने के लिए संघर्ष से जो नवजागरण हुआ, उससे इस समूचे महाद्वीप में नई चेतना की एक लहर आयी।

एशिया में नव जागरण के साथ-साथ विश्व युद्ध के पश्चात महाशक्तियों में सक्रिय अभिरुचि भी दिखाई देती है। एशियाई राजनीति में अमरीका, सोवियत संघ और चीन काफी रुचि ले रहे हैं। पश्चिम एशिया, दक्षिण-पूर्वी एशिया और हिन्द महासागर महाशक्तियों की शक्ति प्रतिस्पर्द्धा के केन्द्र बने हुए हैं। 1950 के कोरिया युद्ध में अमरीका, चीन और सोवियत संघ का हस्तक्षेप स्पष्ट परिलक्षित होता है। 1947 में ही कश्मीर को लेकर भारत और पाकिस्तान में जो विवाद छिड़ा उसमें अमरीका ने हमेशा पाकिस्तान की पीठ थपथपाई। 1956 में जब मिस्र ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया तो ब्रिटेन एवं फ्रांस ने मिस्र पर आक्रमण कर दिया। पश्चिम एशिया में जून, 1967 मे होने वाले अरब-इजरायल युद्ध में जहाँ सोवियत संघ ने अरबों का पक्ष लिया वहीं अमरीका ने इजरायल का समर्थन किया। हिन्द महासागर में अमरीका ने डियागो गार्सिया पर सैनिक अड्डे का निर्माण किया तो सोवियत संघ भी 1968 से ही इस क्षेत्र में सक्रिय हो गया। हिन्द महासागर में चीन की नौ-सेना का भी दखल है किन्तु शक्ति सन्तुलन की दृष्टि से वह अधिक महत्व नहीं रखता।

एशिया में सबसे अधिक चलने वाला वियतनाम युद्ध था। यह युद्ध एक ओर अमरीका तथा दूसरी ओर रूस-चीन समर्थन से लड़ा गया। दिसम्बर, 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान अमरीकी प्रशासन ने महासागर में स्थित सातवें बेडे के परमॉणु युद्धपोत 'एण्टरप्राइज' को बंगाल की खाड़ी में भेजकर युद्ध पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने की कोशिश की थी। दक्षिण-पूर्वी एशिया में कम्पूचिया लम्बे समय तक समस्या का केन्द्र बना रहा है। अमरीका ने पाकिस्तान को परमाणु शस्त्र बनाने की तकनीकी जुटाने में चुपके-चुपके मदद की तथा आर्थिक रूप से सशक्त बनाने की कोशिश कर रहा है। एशिया में चार देशों अमेरिका, रूस, चीन, जापान की निगाहें हैं।

इन सब बातों को देखते हुए प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विश्व के अन्य महाद्वीपों के साथ-साथ एशिया महाद्वीप पर अपनी विदेश नीति को अत्यधिक केन्द्रित किया। हम भारत के सम्बन्धों को प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के शासनकाल में एशिया के प्रमुख देशों के साथ चर्चा करेंगे। जिनमें चीन तथा जापान को हम लेंगे। जिनका विस्तार से वाजपेयी के शासनकाल में सम्बन्धों की समीपता या प्रगाढ़ता का अध्ययन करेंगे।

<u>प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं चीन</u> :

भारत की विदेश नीति में चीन के साथ सम्बन्धों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत द्वारा किए गए परमाणु परीक्षण (1998) से भारत के चीन के साथ सम्बन्धों की शुरुआत होती है। मई, 1998 में भारत-चीन सम्बन्धों में तनाव पैदा उस समय हो गया, जब भारत ने 11 व 13 मई, 1998 को पाँच परमाणु परीक्षण किए तथा अपने आपको परमाणु शस्त्र धारक देश घोषित कर दिया। भारत तथा चीन के मध्य निम्न विवादित क्षेत्र है :-

1. **मैकमोहन लाइन** - 550 मील की यह लाइन भूटान से हिमालय के सहारे ब्रह्मपुत्र नदी के महान् मोड़ तक जाती है। यह लाइन लगभग उतनी ही लम्बी है जितनी भारत निर्यागत क्षेत्र और चीन अधिकृत क्षेत्र के बीच वास्तविक नियन्त्रण रेखा इस लाइन को भारत अपनी स्थाई सीमा रेखा मानता है। जबकि चीन इसे अस्थाई नियन्त्रण रेखा मानता है। इसके अलावा चीन मैकमोहन लाइन के दक्षिण में स्थित अरुणाचल प्रदेश पर भी अपना अधिकार जताता है।

2. **अरुणाचल प्रदेश** - भारत का यह सुदूरवर्ती राज्य भारत चीन के बीच विवाद का एक मुख्य विषय बना हुआ है। मैकमोहन लाइन के दक्षिण में स्थित इस विवादित क्षेत्र को भारत ने 1954 में पूर्वोत्तर सीमा एजेन्सी (North-East agency-NEFA) नाम दिया और 1972 में इसे केन्द्रशासित प्रदेश का दर्जा देकर इसका नाम अरुणाचल प्रदेश कर दिया। 1987 में इसे पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया गया। 1949 में चीनी क्रान्ति के बाद स्थापित साम्यवादी सरकार ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार जताना आरम्भ कर दिया तब से लेकर अब तक यह दोनों देशों के बीच विवाद का मुद्‌दा बना हुआ है।

3. **अक्साईचिन** - जम्मू कश्मीर के पूर्वी क्षेत्र में स्थित अक्साईचिन का रणनीतिक दृश्य से काफी महत्व है। इस पर फिलहाल चीन का कब्जा है जबकि भारत हमेशा से ही इस पर अपना दावा जताता

रहा है। अक्साईचिन उद्गुर भाषा शब्द है, इसका मतलब चिन का सफेद पत्थरों वाला रेगिस्तान होता है। यहाँ 5,000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित पठार के इस हिस्से को सोड़ा मैदान भी कहा जाता है। यहाँ बारिस बहुत कम होती है। इसलिए यहां पर आबादी न के बराबर है। अक्साईचिन 19वीं शताब्दी तक लद्दाख साम्राज्य का हिस्सा था इसके बाद जब लद्दाख पर कश्मीर का कब्जा हो गया तो अक्साईचिन भी कश्मीर साम्राज्य का हिस्सा बन गया। 1950 के दशक में अक्साईचिन पर चीन ने कब्जा कर लिया और इस क्षेत्र से होते हुए उसने तिब्बत तक एक सड़क "चीन राष्ट्रीय राज्य मार्ग" 219 का निर्माण शुरु कर दिया। इस सड़क के निर्माण को लेकर भारत-चीन रिश्ते इस हद् तक बिगड़े कि उनकी परिणति 1962 के भारत-चीन युद्ध में हुई।

4. तिब्बत - चीन के कब्जे में आने से पूर्व तिब्बत की भूमिका ब्रिटिश भारत और उत्तर-पूर्वी ऐशियाई देशों के बीच एक 'वफर स्टेट' के रूप में थी। उस वक्त बाहर दुनिया से तिब्बत का जो भी व्यापारिक या सांस्कृतिक सम्पर्क होता था वो भारत के जरिए होता था। 1949 की चीनी क्रान्ति से पहले तिब्बत की राजधानी ल्हासा ने भारत और चीन के बहुत पहले 1842 में तिब्बत और कश्मीर के डोगरा शासकों ने एक अनाक्रमण सन्धि पर हस्ताक्षर करके सीमा रेखा का निर्धारण कर लिया था। लेकिन दोनों क्षेत्रों के बीच सीमा कहीं पर भी अधिकारिक तौर पर परिभाषित नहीं की गयी थी। 1847 में अंग्रेजों ने पहली बार स्पीति नदी से पेवांग झील तक सीमा रेखा तय की लेकिन उस समय भी कराकोरम दर्रे तक का हिस्सा बिना किसी मापन के ही छोड़ दिया गया बाद में 1865 में सर्वे ऑफ इण्डिया के डब्ल्यू.एच. जॉनसन ने पहली बार इस क्षेत्र में सीमा का निर्धारण किया और अक्साईचिन को जम्मू कश्मीर में शामिल करते हुए इसके आगे क्यूनलेन रेंज तक सीमा रेखा खींच दी थी। 1892 में तिब्बत को लेकर चीन ने दावे करने शुरु कर दिये और 1913 तक उसने कई बार कब्जा करने के असफल प्रयास किये।

1913 में तिब्बत ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और 1914 में इस मुद्दे को लेकर शिमला बैठक हुई। ब्रिटेन, तिब्बत और चीन के बीच हुई इस बैठक में तिब्बत ने सम्प्रभुता की मांग रखी जिसे चीन ने मानने से इंकार कर दिया। इसके बाद तिब्बत को आंतरिक व बाहरी तिब्बत में बांटने का निश्चय किया गया। इससे बाहर तिब्बत पर स्वायत्तता के साथ चीन की सर्वोच्चता स्थापित करने की बात कही गयी लेकिन चीन और आन्तरिक तिब्बत के बीच सीमा निर्धारण को लेकर बात बिगड़ गयी

और चीन इस बैठक से बाहर हो गया। 1949 में जब चीन में साम्यवादी सरकार बनी तब तिब्बत ने चीन से ल्हासा स्थित चीनी दूतावास छोड़ देने को कहा इससे चीन और तिब्बत के रिश्ते तनावपूर्ण हो गये। 1950 की शुरुआत में चीन ने तिब्बत से शांतिपूर्वक विलय की बात कही और तिब्बत के पूर्व में स्थित 'चामदो' शहर में अपनी सेना इकट्ठा कर ली। 7 अक्टूबर, 1950 को जब तिब्बती प्रतिनिधि ा मण्डल चीन से बात करने पहुँचने वाला था तो चीन के 80,000 सैनिकों ने तिब्बत पर हमला कर कब्जा कर लिया और दुनिया भर में प्रचारित किया कि हमने तिब्बतियों को साम्राज्यवादी ताकतों (भारत) के शिकंजे से मुक्त कर दिया। इसके बाद 23 मई 1951 के दिन चीन ने दलाई लामा से 17 सूत्रीय समझौते पर जबर्दस्ती हस्ताक्षर करवा लिये और तिब्बत पर चीन का अधिकारिक कब्जा हो गया। रही-सही कसर नेहरु ने पंचशील सिद्धान्त में तिब्बत पर चीन के कब्जे को मान्यता देकर पूरी कर दी और भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए जरूरी एक बंजर जोन को चीन का हिस्सा बना दिया।

5. ब्रह्मपुत्र को जोड़ने की योजना - चीन एक बार फिर एक ऐसी योजना को अंजाम देने की कोशिश कर रहा है जिससे भारत को मुश्किल हो रही है। चीन का इरादा है कि वह ब्रह्मपुत्र नदी से सालाना दो सौ अरब घन मी० पानी येतो नदी में डाल दे। भारत की पड़ोसी परमाणु ताकत का यह खामोश अभियान भारत के हित में नहीं है। चीन ने अधिकारिक रूप से इसकी पुष्टि नहीं की है। ब्रह्मपुत्र से पानी लेने की योजना पर चीन कुछ समय से विचार कर रहा है। यह चीन की विशाल साउथ-नाथ वाटर लिंक योजना का हिस्सा है। चीन की इस कोशिश को नदी में पानी की डकैती के रूप में देखा जा सकता है। भारत और बांगला देश के लिए ब्रह्मपुत्र पानी के बड़े स्रोतों में से एक है। चीन यदि अपनी योजना में कामयाब हो जाता है तो इससे भारत के लिए जल विज्ञान और भू-विज्ञान सम्बन्धी खतरे पैदा हो जायेंगे। एक रिपोर्ट के अनुसार चीन शुमाटन प्वाइंट पर प्रस्तावित बांध के लिए ब्रह्मपुत्र से पानी लेने की योजना बना रहा है। यह जगह चीन के हिमालय क्षेत्र में है। यह वह जगह है जहाँ भारतीय और यूरेशियन प्लेटे मिलती है जिसकी वजह से भारतीय हिस्से में भू-स्खलन या भूकम्प जैसी गतिविधियाँ होने की आशंका ज्यादा रहती है। मौजूदा परिस्थितियों में कूटनीतिक तरीके से ही इसका हल निकाला जा सकता है।

6. हिमालय पर चीनी खतरा - एक खुफिया रिपोर्ट ने हिमांचल सरकार को मुसीबत में डाल दिया है। इस रिपोर्ट के अनुसार चीन सतलज और उसकी सहायक नदियों पर तिब्बत में कई बिजली

परियोजनाओं का निर्माण कर रहा है। इसके कारण वर्षात के मौसम में यह नदियाँ हिमालय में तवाही ला सकती हैं। दूसरी ओर गर्मियों में इनके कारण पानी का अकाल पड़ सकता है। दरअसल चीन तिब्बत में इन नदियों पर क्या कर रहा है इसकी जानकारी बांटने के लिए भारत के साथ किये गये समझौते का पालन भी नहीं कर रहा है।

भारत की नई परमाणु-नीति तथा भारत-चीन सम्बन्ध :

भारत ने परमाणु परीक्षण करके शस्त्र धारक देश बनने के अपने निर्णय के पक्ष में जिन सुरक्षा कारणों को उद्धृत किया, वे थे -चीन की परमाणु शक्ति, पाकिस्तान द्वारा चोरी से विकसित कर रहे परमाणु शस्त्र क्षमता तथा चीन-उत्तर कोरिया-पकिस्तान का परमाणु तथा मिसाइल विकास सहयोग। भारत के रक्षा मंत्री जार्ज फर्नाडीस ने चीन को शत्रु नम्बर एक की संज्ञा भी दे डाली। इससे चीन की सरकार ने कठोर रूप में भारत की अलोचना की। भारतीय परमाणु विस्फोट को विश्व शान्ति,विशेषकर दक्षिण एशिया में शान्ति का दुश्मन बतलाया। यह भी कहा कि नई भारतीय परमाणु नीति पाकिस्तान को परमाणु शस्त्र बनाने के लिए विवश करेगी तथा दक्षिण एशिया में परमाणु शस्त्र दौड़ को पैदा करेगी। चीन ने अमरीका तथा कुछ अन्य देशों के साथ मिलकर भारत पर परमाणु शस्त्र नीति को समाप्त किये जाने के लिए तथा N.P.T. तथा C.T.B.T. पर हस्ताक्षर करने के लिए भारी दबाव डालने की नीति अपनाई। 5 जून, 1998 को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा यह प्रस्ताव पास करवाया गया कि परीक्षण बन्द किए जाएं, शस्त्र विकास प्रोग्राम बन्द किया जायें। मिसाइल विकास कार्यक्रम छोड़ दिया जाये तथा एन०पी०टी० और सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर किए जाएं।

"जुलाई, 1988 में चीन तथा अमरीका ने यह घोषणा की कि दोनों देश इस प्रस्ताव के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निकट रूप में तालमेल करेंगे।"[34] 14 जुलाई, 1998 को पहली बार कश्मीर मुद्दे के समाधान के लिए पाँच देशों-भारत, पाकिस्तान, अमरीका, चीन तथा रूस की एक बैठक बुलाने की मांग की। यह मांग कश्मीर मुद्दे के अन्तर्राष्ट्रीयकरण के लिए भारत पर दबाव बनाने के लिए की गई। वर्ष 1998 के अंत तक भारत-चीन सम्बन्ध सीमित ही रहे। चीन पाकिस्तान का पक्षपाती बना रहा तथा सी०टी०बी०टी० के मुद्दे पर भारत पर दबाव डालने के लिए अमरीका से हाथ मिलाने की नीति पर चलता रहा। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय एवं द्विपक्षीय बाध्यताओं के कारण दोनों देशों के मध्य ज्यादा समय तक दूरियां नहीं बनी रही, अपितु जल्द ही मधुर सम्बन्धों का दौर प्रारम्भ हो गया। "10

माह बाद भारत तथा चीन के अधिकारियों के मध्य बीजिंग में वार्ताएं प्रारम्भ हो गई तथा सम्बन्ध मधुर हो गए।"[35]

पाकिस्तान के साथ कारिगल युद्ध के समय में चीन ने एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया तथा नियन्त्रण रेखा के सम्मान की बात की। चीन ने पाकिस्तान का पक्ष नहीं लिया। जून, 1999 में भारतीय विदेश मंत्री श्री जसवंत सिंह ने चीन की यात्रा की तथा चीन के नेताओं से उच्च्य स्तरीय वार्तालाप किया। दोनों देशों ने आपसी आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सहयोग को उच्च्य स्तर पर विकसित करने का निर्णय लिया। इस वार्ता के दौरान दोनों देशों के विदेशमन्त्रियों ने एक सुरक्षा वार्तालाप आरम्भ करने पर सहमति बनाई। सीमा के सम्बन्ध में नियन्त्रण रेखा को स्पष्ट करने के लिए औपचारिक बातचीत आरम्भ करने का निर्णय लिया गया। साझे कार्य समूह की गतिविधियों को तेज करने के लिये तथा द्विपक्षीय सम्बन्धों को सुधारने के लिये यह निर्णय लिया गया कि राजनीतिक, कूटनीतिक तथा सैनिक स्तर पर प्रतिनिधि मण्डलों की यात्राओं को बढ़ावा दिया जायेगा तथा इनकी संख्या में वृद्धि की जायेगी। इस यात्रा ने पोखरन-द्वितीय के बाद के समय से चीन द्वारा चलाए जा रहे भारत विरोधी अभियान को कमजोर करने में सहायता प्रदान की।

सितम्बर, 1999 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन के समय चीन तथा भारत के विदेश मन्त्रियों के बीच उच्च्य स्तरीय एवं सकारात्मक वार्तालाप हुआ। नवम्बर, 1999 में भारत-चीन विशेषज्ञ समूह, जो 1996 में संयुक्त कार्य समूह की सहायता के लिये बनाया गया था की एक बैठक हुई। इसी के साथ ही दोनों देशों ने पूर्वी क्षेत्र के क्षेत्रीय सैनिक कमाण्डरों के मध्य हॉट-लाइन संचार व्यवस्था की स्थापना की ताकि प्रतिदिन की सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जा सके। चीन ने यह चाहा कि दक्षिण एशिया में अमरीकी प्रभाव का विकास अधिक न हो। भारत की अमरीका के साथ बढ़ती मित्रता तथा सहयोग चीन के हितों को प्रभावित कर सकते थे। भारत का अमरीका के बहुत अधिक समीप जाना चीन के हित में नही था। चीन ने अब यह भी समझा कि कश्मीर के मुद्दे के अन्तर्राष्ट्रीयकरण से उसकी भूमिका पर भी प्रभाव पड़ेगा क्योंकि इस स्थिति में उसे एक निश्चित निर्णय लेना पड़ेगा। चीन भारत की बढ़ती लोकप्रियता तथा उच्च्य विकास दर की ओर बढ़ते आर्थिक ढांचे के कारण समकक्ष की भूमिका के रूप में स्वीकार करने लगा।

भारत ने भी अपनी ओर से चीन के साथ सम्बन्धों के महत्व को अधिक महत्व प्रदान किया। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने यह आवश्यकता महसूस की कि पाकिस्तान के प्रति चीन के समर्थन तथा सैनिक सहायता को जहाँ तक हो सके, सीमित बनाया जाये तथा चीन के साथ सीमा विवाद का समाधान किया जाये। U.N.O. की सुरक्षा परिषद की स्थायी सीट के लिए भी भारत चीन का समर्थन प्राप्त करना चाहता है। "11 जनवरी, 2000 को चीन ने भारत को परोक्ष चेतावनी देते हुए कहा कि वह भारत पहुंचे तिब्बती धार्मिक नेता करमापा लामा को राजनीतिक शरण न दे क्योंकि यह पंचशील सिद्धांत के विपरीत कदम होगा।"[36]

फरवरी, 2000 में अटल बिहारी वाजपेयी ने चीन द्वारा डब्लू०टी०ओ० सदस्यता प्राप्त किये जाने का समर्थन किया। मार्च, 2000 में भारत तथा चीन में सुरक्षा वार्तालाप का पहला दौर बीजिंग में सम्पन्न हुआ। यह दो दिवसीय वार्ता सचिव स्तरीय थी। दोनों देशों के बीच पहली बार परमाणु शस्त्रों के मुद्दे पर बात करने का आधार बना। इस वार्तालाप में चीन ने यह मत बनाया कि भारत को अपना परमाणु शस्त्र कार्यक्रम बन्द करके सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर कर देना चाहिए। जुलाई, 2000 में दोनों देशों के सम्बन्धों को अधिक गति देने का एक अन्य प्रयास भी किया जब चीन के विदेशमंत्री वंग-जीम्सुन ने भारत की यात्रा की तथा विदेशमंत्री जसवंत सिंह से वार्तालाप की।

8 जनवरी, 2001 के दिन भारत तथा चीन के मध्य सुरक्षा वार्तालाप का दूसरा दौर दिल्ली में हुआ। दोनों देशों ने कुछ मुद्दों जैसे चीन द्वारा पाकिस्तान को हथियारों, मिसाइल तकनीकी तथा परमाणु तकनीकी हस्तान्तरण किए जाने का मुद्दा तथा भारत द्वारा करमापालापा को शरण दिए जाने के मुद्दे पर मतभेद भी उभरकर आए। "चीन ने यह कहा कि पाकिस्तान को शस्त्र तथा तकनीक का हस्तान्तरण पूर्ण रूप में अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी सीमा के अन्दर ही किया जा रहा था। भारत ने करमापा लामा को शरण दिए जाने को एक मानवीय आधारों पर लिया गया निर्णय कहा। दोनों ने आतंकवाद पर भी चर्चा की।"[37]

11 सितम्बर, 2001 के बाद के दिनों में भारत तथा चीन के बीच कुछ ऐसे भेद दिखाई दिए परन्तु इन्होनें दोनों देशों के द्विपक्षीय सम्बन्धों को बहुत प्रभावित नहीं किया। दोनों देश अपने सीमा-विवाद का समाधान ढूंढ़ने की प्रक्रिया में लगे रहे तथा इसके साथ आपसी व्यापारिक और आर्थिक हितों में तेज बढ़ोत्तरी के लिए भी कार्य करते रहे। बाद में 13 दिसम्बर, 2001 के दिन भारतीय संसद

पर हमले के विरूद्ध आतंकवादी कार्यवाहियों के बाद चीन ने आतंकवाद की आलोचना की तथा भारत के साथ मिलकर आतंकवाद के विरूद्ध सहयोग स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन चीन ने इस सम्बन्ध में पाकिस्तान की आलोचना करने से परहेज ही किया।

पाकिस्तान को सैनिक सहायता जारी रखी तथा चीन-पाकिस्तान सम्बन्धों को दृढ़ बनाए रखने की नीति को अपनाए रखा। जब भारत ने पाकिस्तान के विरूद्ध सैनिक दबाव बनाने की नीति को जनवरी, 2002 में अपनाया तो चीन ने भारत को संयम से काम लेने के लिए कहा। भारत ने चीन के ऐसे विचार को भारतीय राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के लिए आवश्यक नहीं माना तथा अपनी सुरक्षा आवश्यकताओं के अनुसार अपनी सुरक्षा नीति को बनाए रखा।

मार्च, 2002 में भारतीय विदेश मंत्री श्री जसवंत सिंह ने चीन की यात्रा की और इस विषय पर दोनों देशों में उच्च स्तरीय वार्तालाप एवं सूचनाओं का आदान-प्रदान हुआ। मार्च, 2002 में भारत और चीन के बीच हवाई यात्रा सम्पर्क का शुभारम्भ हुआ। अप्रैल, 2002 में भारत और चीन ने आतंकवाद की समाप्ति के लिए वार्तालाप आरम्भ किया और दोनों देशों ने अपने-अपने अनुभवों को बांटा। नवम्बर, 2002 में भारत चीन साझे कार्य समूह की 14वी बैठक नई दिल्ली में हुई तथा सीमा विवाद के समाधान के सम्बन्धों में एक अच्छी समझ बनाने का यत्न किया गया। जनवरी, 2003 में एक 12 सदस्यीय संसदीय शिष्टमंडल ने चीन की यात्रा की तथा विस्तार के प्रति चनबद्धता को ही दोहराया तथा पंचशील, आपसी सद्‌भाव तथा समानता के आधार पर द्विपक्षीय सम्बन्धों के संचालन की प्रक्रिया में पुनः विश्वास प्रकट किया।

अप्रैल, 2003 में पहली बार रक्षा मंत्री ने चीन की यात्रा की तथा इस यात्रा ने भारत तथा चीन के बढ़ते आपसी विश्वास को प्रकट किया। 1998 में पोखरन-द्वितीय परमाणु परीक्षण के समय रक्षामंत्री जार्ज फर्नाडीस ने चीन के परमाणु शस्त्रों द्वारा उत्पन्न चुनौती को भारतीय परमाणु परीक्षणों का एक प्रमुख कारण कहा था, जिसे चीन ने नापसन्द किया था। इस यात्रा पर फर्नाडीस ने कहा कि भारत तथा चीन न तो शत्रु थे तथा न ही प्रतियोगी अपितु वह तो मित्र थे। दोनों देशों ने अपने द्विपक्षीय व्यापारिक, कारोबारी, सांस्कृतिक सम्बन्धों के क्षेत्र तथा सैनिक अधिकारियों की आपसी अंतक्रियाओं को बढ़ाने के उद्‌देश्य को स्वीकार किया। दोनों ने क्षेत्रीय शांति और स्थिरता की सुरक्षा पर चर्चा की।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने स्वयं जून, 2003 में चीन की यात्रा की तथा आपसी सम्बन्धों के क्षेत्र में हो रही प्रगति को और तीव्र करने तथा अधिक उत्तम दिशा देने का प्रयास किया। भारतीय प्रधानमंत्री की यह यात्रा 10 वर्षो के अन्तराल के बाद हुई थी। वाजपेयी का उद्देश्य था-आपसी सम्बन्धों को सभी क्षेत्रों में और अधिक विकसित करना, विश्वास-निर्माण प्रक्रिया को और दृढ़ बनाना तथा सीमा विवाद के समाधान के लिए एक राजनीतिक प्रक्रिया को भी आरम्भ करना। इस यात्रा के समय भारत चीन व्यापार 5 बिलियन डॉलर वार्षिक स्तर तक पहुंच चुका था। वास्तविक नियंत्रण रेखा (एल0ओ0सी0) के सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण हो चुके थे। दोनों देशों में सुरक्षा वार्तालाप की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। इस यात्रा के दौरान वाजपेयी ने चीन के शीर्ष नेताओं हुं-जिंताओ, वेन जिआबाओ तथा अन्यों से आपसी हित तथा विश्व व्यवस्था के मुद्दों पर व्यापक वार्तालाप किया।

चीन और भारत के प्रधानमंत्रियों ने पहली बार एक साझे घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए जिसमें आपसी द्विपक्षीय सम्बन्धों के बारे में निदेशक सिद्धांतों और उद्देश्यों का उल्लेख किया गया। जहां भारत ने तिब्बत को चीन का स्वायत्त क्षेत्र स्वीकार किया वहाँ चीन ने सिक्किम के भारत में विलय को स्वीकार किया। दोनों देशों ने उत्तर-पूर्वी राज्यों के मार्ग से व्यापार करने तथा सिक्किम, तिब्बत सीमा के सरलीकरण, द्विपक्षीय व्यापार के सम्बन्ध में एक स्मरण-पत्र तथा पंचशील की वर्षगांठ मनाने के निर्णय भी लिए। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने पाक की ओर से प्रायोजित सीमा पार आतंकवाद का मुद्दा भी उठाया परन्तु इस बात पर चीन ने चुप्पी ही साध रखी, क्योंकि चीन पाकिस्तान के साथ अपने सम्बन्धों को क्षति नहीं पहुंचाना चाहता था।

आर्थिक सम्बन्धों के क्षेत्र में चीन ने यह घोषणा की कि वह 500 मिलियन का एक फंड बनाकर भारत में निवेश करेगा। दोनों देशों के द्वारा 9 समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए जिनका सम्बन्ध विभिन्न विषयों के साथ था। सीमा विवाद के समाधान के लिए भारत और चीन ने यह निर्णय लिया कि इसके लिए वह अपने विशेष प्रतिनिधियों को नियुक्त करेंगे तथा उनमें वार्तालाप की उच्च्व स्तरीय प्रक्रिया आरम्भ होगी। प्रधानमंत्री वाजपेयी की इस यात्रा ने निश्चय ही दोनों देशों के सम्बन्धों को अच्छी दिशा, व्यापकता तथा गति देने का प्रयास किया। सिक्किम के सम्बन्ध में चीन ने भारतीय पक्ष का परोक्ष रूप में ही समर्थन किया था तथा 2003 की समाप्ति पर यह स्पष्ट हो गया कि चीन अब सिक्किम को भारतीय प्रदेश स्वीकार करता था तथा वह अपनी परम्परागत नीति का त्याग कर चुका था।

अक्टूबर, 2003 में भारत तथा चीन में सीमा–विवाद के समाधान के सम्बन्ध में उच्च स्तरीय वार्तालाप का एक दौर सम्पन्न हुआ और भारतीय प्रतिनिधि ब्रजेश मिश्र तथा चीन के प्रतिनिधि डाए-बिंग-कू ने सीमा मुद्दे पर व्यापक वार्तालाप किया। इस वार्तालाप को एक नई राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में देखा गया। फरवरी, 2004 में भारत तथा चीन ने प्रसार साधनों तथा मनोरंजन उद्योग में आपसी सम्बन्धों को विकसित करने के लिए कई एक सिद्धांतों को स्वीकार किया। दोनों देशों ने साझे प्रोग्रामों को निर्मित करके आपसी फिल्म समारोह करने के निर्णय लिए। दोनों देशों के पत्रकारों की एक दूसरे देश की यात्राओं की सम्भावनाओं पर दोनों देशों ने आपसी सहमति बनाने का प्रयास किया।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने चीन के साथ सम्बन्धों की प्रगाढ़ता पर जोर देने के लिए राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रूप से निकटता लाने का भरसक प्रयास किया तथा दोनों देशों के मध्य वार्तालाप का सिलसिला शासनिक तथा प्रशासनिक स्तर पर चालू करवाया और विगत कई वर्षो से सिक्किम विवाद को सुलझाकर चीन से सिक्किम को भारत का अंग स्वीकार करवाया। प्रधानमंत्री वाजपेयी की पड़ोसियों से सम्बन्धों की समीपता बढ़ाने हेतु किये जा रहे प्रयासों की कड़ी में चीन से विभिन्न माध्यमों (वार्तालाप, सहयोग, सूचना आदान प्रदान, वीजा-नियमों का सरलीकरण, स्वयं की चीन यात्रा तथा हवाई यात्राओं और द्विपक्षीय व्यापार आदि) के द्वारा सम्बन्धों को मधुर बनाने का भरसक प्रयास किया तथा एक हद तक सफलता भी प्राप्त की। सिक्किम को भारत का अंग स्वीकार करवाना, व्यापार में ज्यादा से ज्यादा आपसी वार्तालाप का चलना आदि बाते चीन को भारत के समीप लायी जो प्रधानमंत्री वाजपेयी की चीन के प्रति विदेश नीति की सफलता का परिचायक है।

वर्तमान में भारत–चीन सम्बन्धों के व्यापक तीव्र विकास के लिए एक उपयोगी आधार विद्यमान है। दोनों देश इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि वर्तमान स्थिति आपसी सम्बन्धों के विकास के लिए एक उत्तम स्थिति है। परन्तु इस स्थिति का पूर्ण लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि-

1. भारत चीन सीमा विवाद के समाधान के लिए तीव्र तथा आवश्यक कार्यवाही एवं प्रगति की जानी चाहिए ताकि दोनों के अन्दर बैठे भ्रम को समाप्त किया जा सके।

2. चीन द्वारा पाकिस्तान को भारत विरोधी कार्यवाहियों में किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन देने तथा

सहायता करने से परहेज किया जाना चाहिए ताकि आपसी विश्वास कायम हो सके।

3. भारत के परमाणु प्रोग्राम की आवश्यकता और प्रकृति को चीन को वस्तुनिष्ठ रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए क्योंकि समय और स्थिति की मांग यही हैं।

4. भारत को चीन के विरूद्ध बयानबाजी से दूर रहना चाहिए जिससे सम्बन्धों सुधार हो सके।

5. चीन को भी पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध विकसित करते समय भारत विरोधी बातों से अलग रहना चाहिए ताकि भारत चीन को अन्तः मन से अपना हितैषी समझने लगे।

6. दोनों देशों को तीसरे देशों में संयुक्त उद्यमों की स्थापना पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

7. भारत-चीन आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों में अधिक से अधिक व्यापक तथा तीव्र प्रगति की जानी चाहिए जो कि विश्व की एक चौथाई जनसंख्या को किसी न किसी प्रकार से सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सके।

8. विश्व में बहुकेन्द्रीय शक्ति संरचना को विकसित करने के लिए सहयोग पूर्ण कार्य करना चाहिए। चीन को यू०एन०ओ० की सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता के दावे को स्वीकार कर लेना चाहिए।

इन सभी आवश्यकताओं के प्रति सजगता के साथ दोनों देश आपसी मित्रता तथा सहयोग को तेजी से विकसित कर सकते है जिससे दोनों देशों के सम्बन्ध मधुर हो सके।

<u>प्रधानमंत्री वाजपेयी एवं जापान</u> :

प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी के शासनकाल में विदेश नीति में एक ऐसा दौर आया जिससे पड़ोसियों के प्रति मित्रता का भाव जगा और वैश्विक सन्दर्भ में प्राथमिकता पड़ोसियों को दी गयी, यद्यपि इस काल में विश्व के अन्य देशों के प्रति भी हमारी विदेश नीति सफल रही तथा अन्य देशों के साथ सम्बन्धों में मजबूती आई और हमें सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। पड़ोसियों में विकसित राष्ट्र जापान के साथ वाजपेयी ने एक मैत्रीपूर्ण तथा सहयोगी नीति अपनाने का संकल्प लेकर एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा करने की नीति अपनायी।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में युद्ध की समाप्ति के लगभग 25 वर्ष बाद जो सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन आया, वह था जापान का एक बहुत बड़ी आर्थिक शक्ति वाले देश के रूप में उभरना। जापान न केवल दूसरे विश्वयुद्ध में हुई अपनी बरबादी एवं हानि से भी उभर सका बल्कि यह विश्व में एक मुख्य आर्थिक शक्ति एवं औद्योगिक तथा तकनीकी रूप से विकसित देश के रूप में भी उभरकर सामने आया। आज जापान एक विकसित देश तथा महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय कर्ता भी है। एक सार्वभौमिक महत्व के देश के रूप में जापान के महत्व को विश्व राजनीति में उत्तर-शीतयुद्ध तथा उत्तर-सोवियत संघ की स्थिति में और भी अधिक प्रोत्साहन मिला है।

अमरीका के यूरोपीय समुदाय तथा जर्मनी के साथ-साथ जापान भी उत्तर-शीतयुद्ध काल की विश्व अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में एक ऊँचा स्थान रखता है। केवल जापान तथा यूरोपीय समुदाय ही दो ऐसे दावेदार हैं जो वर्तमान समय में अमरीका द्वारा विश्व व्यवस्था में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के प्रयत्नों का सामना करने की शक्ति रखते हैं। जापान के साथ सम्बन्धों की स्थापना आज कल विश्व के सभी प्रमुख देशों की विदेश नीतियों का एक महत्वपूर्ण आयाम है। एशिया के देश, भारत और जापान के साथ मैत्रीपूर्ण सहयोग कायम करना आवश्यक समझते हैं।

भारत के 1947 से ही जापान के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे हैं। विशेषतया 1985 से, भारत जापान के साथ अपने सम्बन्धों को तेजी से बढ़ाने में लगा है। जापान को भी भारत के साथ आर्थिक सहयोग की शक्ति का आभास हो रहा है। इसलिए भारत तथा जापान के सम्बन्धों की ओर अब उच्च स्तरीय ध्यान दिया जा रहा है। 1952 में भारत तथा जापान के बीच जब से शांति संधि हुई थी, जिसके द्वारा एशिया के इन दो देशों के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध कायम हुए थे, तभी से भारत तथा जापान के बीच सम्बन्ध धीरे-धीरे और एक निश्चित आकार धारण करने लगे। भारत तथा जापान की मित्रता को अच्छा आधार देने के लिए दोनों देशों के बीच परम्परागत सांस्कृतिक तथा धार्मिक सम्बन्धों पर बल दिया गया। जापानी महात्मा गौतमबुद्ध की धरती (भारत) को सम्मान से देखते है तथा बौद्ध धर्म से सम्बन्धित सभी पवित्र स्थलों तथा मन्दिरों की देखभाल तथा मरम्मत आदि के लिए भारत की सहायता करने में गहरी रूचि रखते हैं।

जब भारत ने 11 मई एवं 13 मई, 1998 को पांच परमाणु विस्फोट करके परमाणु शस्त्रों की प्राप्ति को यकीनी बना लिया तो जापान में इसके विरूद्ध तीव्र तथा उग्र प्रतिक्रिया हुई। भारत द्वारा 11

मई, 1998 के किए परमाणु परीक्षणों के बाद ने भारत पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए। जापान ने कहा कि वह 3.5 बिलियन येन की वार्षिक सहायता ग्रांट अब नहीं देगा तथा 133 बिलियन येन के कर्जे का भुगतान भी भारत के भविष्य के रवैये को देखकर करेगा। 13 मई, 1998 को दो और परमाणु परीक्षण किए गए तो और आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए। 1 बिलियन डॉलर के वार्षिक कर्जे की अदायगी को रोक दिया गया। गुप-8 के सम्मेलन में (15 मई 1998) अमेरिका के साथ-साथ जापान भी सामूहिक प्रतिबन्ध लगाने के पक्ष में दिखाई दिया लेकिन अन्य देश प्रतिबन्धों के खिलाफ थे। जापान सी०टी०बी०टी० पर भारत के हस्ताक्षर का समर्थक है।

1998-99 के मध्य भारत-जापान सम्बन्धों में कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं दिया। नवम्बर, 1999 में विदेश मंत्री श्री जसवंत सिंह ने जापान की यात्रा की तथा दोनों देशों ने उच्च स्तरीय वार्तालाप आरम्भ किए जानेपर सहमति बनाई। इसके तत्काल बाद रक्षामन्त्री श्री जार्ज फर्नाडीज ने जापान की यात्रा की। सुरक्षा तथा प्रतिरक्षा के क्षेत्रों में नया वार्तालाप आरम्भ करने का निर्णय लिया गया। आर्थिक सम्बन्धों तथा सुरक्षा के क्षेत्र में एक विशाल आधार वाली भागीदारिता के निर्माण के लिए फरवरी, 2000 में भारत-जापान वार्तालापों का दौर आरम्भ किया गया। पोखरन-द्वितीय के बाद यह पहला जापान की तरफ से सकारात्मक कदम था।

भारत के साथ जापान सूचना तकनीक, आधारभूत ढांचे तथा कृषि व्यापार पर सहयोग बढ़ाने का इच्छुक हुआ। जापान ने पाकिस्तान को कारगिल युद्ध के लिए नियंत्रण रेखा तथा लाहौर प्रक्रिया को तोड़ने के लिए उत्तरदायी माना तथा जापान के प्रधानमंत्री ने कहा कि उन्होनें अपनी पाकिस्तान की यात्रा के समय सैनिक शासक मुर्शरफ को यह कहा कि लोकतन्त्र की बहाली के लिए, आतंकवाद पर नियन्त्रण के लिए भारत के साथ वार्तालाप आरम्भ करने के लिए शीघ्र कदम उठाने की आवश्यकता थी। जापान की ऐसी सोच भारतीय सोच के बहुत करीब थी।

अक्टूबर, 2001 में जापान ने अफगानिस्तान में आतंकवाद के विरूद्ध आरम्भ हुए युद्ध द्वारा उत्पन्न वातावरण में भारत तथा पाक पर मई, 1998 में लगाए गए आर्थिक प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया। जापान में उभर रही आर्थिक मन्दी के वातावरण में जापान के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह भारत जैसी अर्थव्यवस्था से उभरकर अपने आर्थिक और व्यापारिक सम्बन्धों की तीव्रता से विस्तार करे। इसी उद्देश्य को सम्मुख रखते हुए जापान ने नवम्बर, 2001 में भारत को 150 मिलियन

डॉलर की आर्थिक सहायता देने की घोषणा की। जनवरी, 2002 में जापान की विदेश मंत्री सुश्री योरिको कवागुशी ने भारत की यात्रा की तथा भारत को 900 मिलियन डॉलर की सहायता दी। अप्रैल, 2003 में भारत तथा जापान में वार्तालाप प्रक्रिया आरम्भ हुई तथा दोनों देशों ने आपसी साझे राजनीतिक हितों के आधार पर अपने सहयोग विशेषकर सुरक्षा क्षेत्र में सहयोग को बढ़ाने की आवश्यकता को स्वीकार किया।

3 फरवरी, 2004 को भारत तथा जापान के अधिकारियों ने व्यापार वार्तालाप की 15वीं बैठक में भाग लिया तथा आर्थिक सहयोग को विकसित करने, निवेश मुद्दे, भारत में आधारभूत ढांचे के अधिक विकास, कारोबार के मार्ग की रूकावटों, साझे उद्यमों की स्थापना, श्रम मुद्दों आदि पर व्यापक द्विपक्षीय वार्तालाप किया। भारत ने जापान में कृषि निर्यात को बढ़ाने का मुद्दा उठाया।

1998 के भारतीय परमाणु परीक्षणों की छाया से अब भारत-जापान सम्बन्ध बाहर आ गए है तथा दोनों देश आपसी सामाजिक-आर्थिक-व्यापारिक तथा राजनीतिक सम्बन्ध बढ़ाने की प्रक्रिया में संलग्न है। जापान अब चीन के साथ-साथ भारतीय अर्थव्यवस्था, स्थिति एवं व्यापारिक महत्व को उचित रूप में स्वीकार कर रहा है तथा भारत भी दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों के साथ-साथ जापान के साथ सभी क्षेत्रों में सम्बन्धों के विकास को प्राथमिकता दे रहा है। भारतीय विदेश नीति पूर्व की ओर सम्बन्धों के विकास को अधिक महत्व दे रही है। भारत और जापान के सम्बन्धों के तीव्र विकास की प्रक्रिया आज की आवश्यकता है, जापान के लिए भी तथा भारत के लिए भी। दोनों आज संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के शक्तिशाली दावेदार हैं और दोनों ऐसी स्थिति की प्राप्ति के लिए सहयोग कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में अब दोनों प्रतियोगी नहीं सहयोगी हैं।

प्रधानमंत्री वाजपेयी एवं अफगानिस्तान :

अफगानिस्तान का महत्व भारत के लिए हमेशा से रहा है। सन् 1947 से 1992 तक अफगानिस्तान इस क्षेत्र में भारत का स्वाभाविक सहयोगी रहा है, परन्तु अफगानिस्तान पर तालिबानी शासकों की हुकूमत का प्रभाव दोनों देशों के सम्बन्धों पर पड़ा। 13 नवम्बर, 2001 को नॉर्दन एलायंस की फौजों द्वारा पुनः अफगानिस्तान पर अधिकार के पश्चात भारत ने अफगानिस्तान को अपनी तरफ से सहायता प्रदान कर दोनों देशों के सम्बन्धों को पुनः कायम किया तथा साथ ही भारत ने

अफगानिस्तान में हुए युद्ध से हानि की क्षतिपूर्ति के लिए आर्थिक सहायता भी प्रदान करने की पहल की। विस्थापित हुए हजारों अफगानी लोगों की यातनाओं को समाप्त करने के लिए भारत ने विमानों से 1000 टेंट, 25500 कम्बल तथा 140 टन खाद्य सामग्री और दवाइयाँ, चिकित्सा सामग्री एवं चिकित्सा उपकरण भेजें।

एक सहयोगी पड़ोसी के रूप में अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में भारत द्वारा 100 मिलियन अमेरिकी डॉलर के वित्तीय सहायता पैकेज की घोषणा की गई। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने हामिद करजई सरकार के साथ गहन द्विपक्षीय राजनैतिक विचार-विमर्श शुरू किया। वाजपेयी ने जून, 2002 में अलमाटी (कजाकिस्तान) में आयोजित 'कांफ्रेंस ऑन इंटरैक्शन एण्ड कॉन्फिडेन्स बिल्डिंग मेसर्स' में भाग लिया। सिल्क-रूट को पुनः खोलने के माध्यम से हमने मध्य एशियाई गणतांत्रिक देशों के साथ अपने पुराने संपर्क सूत्र और हितों को पुनर्जीवित करने की प्रक्रिया आरम्भ की है। हामिद करजई भी भारत आए तथा सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने तथा आपसी सहयोग की वकालत की।

भारत अफगानिस्तान की हर तरह की सहायता करने के लिए तैयार है। उसकी शर्त केवल यह है कि पाकिस्तान को दूर रखा जाए। भारत अपने पड़ोसियों की जिम्मेदारी को समझता है और चाहता है कि अफगानिस्तान के साथ ऐसे घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जैसे प्राचीनकाल में काबुल तथा कंधार के साथ थे। अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण में जितना तकनीकी सहयोग भारत से प्राप्त हो सकता है, उतना शायद ही अन्य किसी देश से मिल सके। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण में हर प्रकार से सहायता की तथा सम्बन्धों को नए शिरे से प्रगाढ़ बनाने पर जोर दिया जिसके फलस्वरूप अफगानिस्तान की हामिद करजई सरकार ने भी भारत के साथ प्रगाढ़ मित्रता का सन्देश देकर आपसी सम्बन्धों को बल प्रदान किया।

प्रधानमंत्री वाजपेयी एवं रूस :

रूस के साथ सम्बन्धों की स्थापना भारत के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि रूस भूत पूर्व सोवियत संघ का सबसे बड़ा तथा शक्तिशाली गणतंत्र राज्य था। रूस के साथ हमारे सम्बन्ध सदैव से ही मैत्रीपूर्ण रहे हैं, रूस ने भारत की नीतियों तथा भारत ने रूस की नीतियों का विश्व राजनीति में सदैव से समर्थन किया है। सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के लिये रूस ने

भारत का समर्थन किया है। दिसम्बर, 2004 में आये रूसी राष्ट्रपति ब्लादिमीर पुतिन ने कहा कि- ''हमें यह पूर्ण विश्वास है कि आने वाले वर्षो में भारत सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य होगा हमने अपनी तरफ से इसका पूर्ण समर्थन तथा सहयोग किया हुआ है।''[38]

मई, 1998 में जब भारत ने पांच परमाणु परीक्षण किए तो रूस ने भारत के विरूद्ध न तो आर्थिक प्रतिबंध लगाए तथा न ही इस बात पर सहमति प्रकट की कि जी-8 देशों को मिलकर ऐसा करना चाहिए। परमाणु विस्फोटों द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों के बाद भी दोनों देशों ने आपसी हितों के कार्यो को जारी रखा। जून, 1998 में ब्रजेश मिश्र के रूस यात्रा के बाद यह आशा दृढ़ हुई कि शीघ्र ही भारत तथा रूस में सामरिक महत्व के सम्बन्धों का व्यवस्थित विकास होगा। ''रूस ने भारत को दो परमाणु ऊर्जा संयत्र बेंचने के अपने निर्णय को बनाए रखा तथा दोनों देशों के सम्बन्ध पहले की तरह विकसित होते रहे।''[39]

दिसम्बर, 1998 में रूस के प्रधानमंत्री प्रिमाकोव ने दो दिन के लिए भारत की यात्रा की तथा भारत-रूस सम्बन्धों के क्षेत्र में अधिक मित्रता एवं सहयोग के लिए कई समझौतों पर हस्ताक्षर भी किए। दोनों ने अमरीकी दबाव की परवाह न करते हुए एक दीर्घकालीन (2010 तक) सैनिक तकनीक अधिक विकसित करने के लिए भी समझौते किए। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने स्पष्ट किया कि ''रूस के साथ सम्बन्धों के प्रति एक राष्ट्रीय सहमति पायी जाती है तथा भारत के सभी राजनीतिक दल इसका समर्थन करते है।''[40] अप्रैल, 1999 में रूस ने भारत को SU-30 MKS लड़ाकू हवाई जहाजों की दूसरी खेप भेजी। भारत-पाक कारगिल युद्ध में रूस ने स्पष्ट रूप से पाकिस्तान को दोषी माना तथा भारतीय सैनिक कार्यवाही को आवश्यक माना। 1 जनवरी, 2000 के दिन रूस के राष्ट्रपति 'बोरिस येल्तसिन' ने अपने त्याग पत्र की घोषणा की तथा ब्लादिमीर पुतिन को उत्तराधिकारी बनाया। अप्रैल, 2000 में पुतिन विधिवत चुनावों के द्वारा राष्ट्रपति निर्वाचित हो गए तथा भारत के साथ परम्परागत मित्रता तथा सहयोग की पुनः स्थापना करने की नीति अपनाई।

अक्टूबर, 2000 के प्रथम सप्ताह में रूस के राष्ट्रपति ब्लादिमीर पुतिन ने भारत की यात्रा की तथा द्विपक्षीय समझौतों को विकसित एवं विस्तारित किया। इस यात्रा के कुछ दिन पहले एक ऐसा विचार सामने आया था कि भारत की अमरीका के साथ बढ़ रही मित्रता तथा सहयोग को देखते हुए रूस पाकिस्तान के साथ अपने सम्बन्धों को बनाने का प्रयास करेगा लेकिन ऐसा कुछ नही हुआ। भारत

के साथ रूस की मित्रता परस्पर विश्वास, इतिहास तथा साझे उद्देश्यों पर आधारित थी तथा दोनों देश एक बहुकेन्द्रीय विश्व संरचना की कामना करते हुए एक दूसरे को स्वाभाविक मित्र मानते हैं। 'राष्ट्रपति पुतिन की पांच दिवसीय भारत यात्रा (जो कि साढ़े सात वर्षो के अन्तराल के बाद हुई थी बोरिस येल्तसिन 1993 में भारत यात्रा पर आए थे) काफी सफलता से पूर्ण हुई तथा दोनों देशों ने कई समझौतों के साथ साझी सोंच को दृढ़ता प्रदान की।''[41] राष्ट्रपति पुतिन की यात्रा के दौरान भारत तथा रूस ने आपसी सम्बन्धों के विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने के लिए 10 समझौते किए। जिसमें विज्ञान तथा तकनीकी क्षेत्र में आपसी सहयोग, कृषि क्षेत्र में सहयोग, डाक संचार समझौता, कानूनी सहायता, सांस्कृतिक सुरक्षा, व्यापार आदि समझौते सम्मिलित थे।

भारत तथा रूस में संयुक्त सहयोग द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरूद्ध संघर्ष करने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया। कश्मीर के मामले में रूसी नेता ने भारत का पक्ष लिया तथा कहा कि इस मुद्दे का समाधान द्विपक्षीय प्रयासों (भारत-पाक) द्वारा बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के किया जाना चाहिए। रूस ने भारत को कुंडाकुलम परमाणु रिएक्टर प्रोजेक्ट में दिए जाने वाले सहयोग के महत्व को दोहराया। पुतिन की भारत यात्रा ने दोनों देशोंके सम्बन्धों को गुणात्मक दृढ़ता, शक्ति तथा गति प्रदान की।

फरवरी, 2001 में रूस के उप प्रधानमंत्री क्लेवनोव ने दो दिवसीय भारत यात्रा की तथा प्रधानमंत्री वाजपेयी के साथ मिलकर तीन समझौतों पर हस्ताक्षर किए जिसमें सुरक्षा सम्बन्ध, युद्धक जहाज आदि मामले सम्मिलित थे। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी 11 नवम्बर, 2003 को तीन देशों रूस, तजाकिस्तान एवं सीरिया की विदेश यात्रा पर गए। भारत तथा रूस के साथ 12 नवम्बर को 9 समझौतों पर हस्ताक्षर किए। ये समझौते आर्थिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्र में आपसी सहयोग बढ़ाने से सम्बन्धित थे। इसके अलावा दोनों नेताओं ने विश्व सुरक्षा और स्थिरता से सम्बन्धित संयुक्त घोषणा पत्र भी जारी किया जिसमें कहा गया कि दोनों देश आतंकवाद के बढ़ते खतरे के खिलाफ आपसी सहयोग बढ़ायेगें। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने रूस के साथ निम्न बिन्दुओं पर समझौते किए : आर्थिक, वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्र में, साइबर परियोजनाओं और रक्षा सहयोग, मास्कों में भारतीय संयुक्त बैंक स्थापना, विश्व सुरक्षा व स्थिरता के समक्ष घोषण पत्र, इसरो और रूसी उड्डयन व अतंरिक्ष एर्जेसी के बीच सहमति पत्र पर हस्ताक्षर चन्द्रमिशन में सहयोग, रक्षा, व्यापार, अतंरिक्ष आदि महत्वपूर्ण प्रश्नों पर समझौते किए।

"रूस ने भारत की इस मांग का खुलकर समर्थन किया कि पाकिस्तान जम्मू कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियां बन्द करने, सीमा पार के घुसपैठ रोकने तथा अपने अधिकार क्षेत्र में आतंकवादी संगठनों का ढांचा नष्ट करने के वादे पूरे करे और भारत के साथ सभी द्विपक्षीय विवाद शिमला समझौतें (1972) और लाहौर घोषणा (1999) के तहत सुलझाए।"[42] "आतंकवाद से निपटने में भारत के अभियान के प्रति रूस के पुरजोर समर्थन की सराहना की। दोनों देशों ने एक दूसरे की सुरक्षा के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाया जो दोनों के सम्बन्धों की स्थिरता का आधार है।"[43] अपने पुराने मित्र भारत के साथ मिलकर आज भी रूस दुनिया को बहुध्रुवीयता की ओर ले जाने में मददगार बन सकता है और अमेरिका वैश्विक चौधराहट के लिए एक चुनौती बन सकता है।

इस प्रकार न केवल भारत-रूस के आपसी हितों की दृष्टि से, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति संतुलन की दृष्टि से भी वाजपेयी की रूस यात्रा उल्लेखनीयं साबित हुई है। वाजपेयी ने रूस के साथ एक ऐसी ऊर्जा सुरक्षा नीति विकसित करने पर सहमति जताई है जो पश्चिम की बजाय पूरब के आपसी हितों से जुड़ी हो। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं रूस के राष्ट्रपति पुतिन ने कश्मीर और चेचन्या पर समान नीति अपनाते हुए किसी तीसरे पक्ष के दखल को खारिज किया। राष्ट्रपति पुतिन ने पिछली बार भारत यात्रा के दौरान भी कहा था- भारत एवं रूस को मिलकर आतंकवाद का सामना करना चाहिए जो लोग कश्मीर में आतंकवादी हिस्सा भड़का रहे हैं वे ही फिलिस्तीन से लेकर कोसोवो और अफगानिस्तान तथा रूस के उत्तरी भागों में हिंसा के जिम्मेदार हैं।

भारत-रूस के बीच शुरू हुए इस आपसी सहयोग को अगर सही रूप में बढ़ाया जा सका तो निश्चय ही यह एक 'बहुध्रुवीय-विश्व व्यवस्था' के निर्माण में मददगार होगा और आखिरकार 'भारत-रूस-चीन' के त्रिकोण की दिशा में भी ले जा सकेगा। भारत तथा रूस के सम्बन्ध विशेषकर 1998 से लेकर आपसी मित्रता तथा सहयोग को व्यापक विशाल और दृढ़ बनाने के लिए लगातार प्रयास कर रहे हैं तथा यह प्रयास सफल भी हो रहा है। आशा है कि आने वाले वर्षो में एक बार फिर भारत-रूस सम्बन्ध काफी तीव्र गति से उच्चतर स्थिति की ओर प्रगति करेंगे।

(द) प्रधानमंत्री वाजपेयी एवं दक्षिण एशिया :

प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अपने प्रधानमंत्रित्व काल में राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए जो विदेश नीति अपनायी उसके कारण विश्व में भारत को सम्मान तथा गौरव की दृष्टि से देखा जाने लगा। वैश्विक स्तर पर सभी देश भारत की भूमिका को स्वीकार करने लगे तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत का वर्चस्व स्थापित हुआ, विशेषकर पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्धों पर प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने गहरी रूचि दिखायी तथा इसमें आंशिक सफलता प्राप्त किया। पाकिस्तान के साथ प्रधानमंत्री वाजपेयी बस कूटनीति द्वारा, विभिन्न प्रकार की वार्ताओं द्वारा, लाहौर घोषणा पत्र द्वारा, आगरा शिखर सम्मेलन द्वारा वातावरण को शांतिमय बनाने का भरसक प्रयास किया तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में विभिन्न देशों का सहयोग भी प्राप्त किया।

सम्बन्ध चाहे बांग्लादेश के साथ हो या नेपाल तथा भूटान के साथ या श्रीलंका के साथ अथवा मालद्वीव के साथ प्रधानमंत्री वाजपेयी ने सभी पड़ोसी देशों विशेषकर दक्षिण एशिया के देशों के साथ सम्बन्धों को मधुर बनाने का भरसक तथा अनवरत प्रयास किया और एक सीमा तक सफल भी हुये। ''दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति (प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के विशेष सन्दर्भ में'') चूंकि शोधार्थी के शोध का मुख्य विषय है अतः इसका विस्तृत वर्णन आगे के अध्यायों में किया जायेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वी0एन0 खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा : भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली पृ0- 263
2. इण्डिया टुडे, 24 मार्च, 2000, पृ0-21.
3. इण्डिया टुडे, 12 जून, 2002, पृ0-24-25.
4. डा0 ना.मा. घटाटे (संपादक) : अटल बिहारी वाजपेयी, गठबन्धन की राजनीति, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली (20 नवम्बर 2001 को दोनों सदनों के पटल पर रखा गया रुस, अमरीका, इंग्लैण्ड की यात्रा सम्बन्धी वक्तव्य),
5. आर0एस0 यादवः भारत की विदेश नीति एक विश्लेषण, किताब महल, इलाहाबाद, पृ0-410.
6. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 11 जून, 2004.
7. हिन्दुस्तान, 3 जून 2003.
8. आउटलुक 'साप्ताहिक', 7 जून 2003, पृ0-21.
9. दँ हिन्दू, 3 फरवरी, 2003.
10. सहारा समय, 17 जून, 2003, पृ0-09.
11. डॉ0 बी0एल0 फडिया : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, पृ0-285.
12. वी0पी0 दत्तः बदलती दुनिया में भारतीय विदेश नीति, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, पृ0-46.
13. लिपाक्षी अरोड़ा : भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0-422.
14. हिन्दुस्तान, 22 नवम्बर, 2001 (जे0एन0 दीक्षित का लेख).
15. ज़े0एन0 दीक्षित : भारत-पाक सम्बन्ध (शांति एवं युद्धकाल में) प्रभात प्रकाशन,दिल्ली, पृ0-315
16. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 16 दिसम्बर, 2000.
17. आर0एस0 यादव : भारत की विदेश नीति एक विश्लेषण, किताब महल, इलाहाबाद, पृ0-410.
18. इण्डिया टुडे, 7 अगस्त, 2003, पृ0-25.
19. दैनिक जागरण, 30 जून, 2003.
20. वी0पी0 दत्त : इण्डियाज फॉरेन पॉलिसी, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0-465.
21. इण्डियन एक्सप्रेस, 9 जून, 2003
22. सिविल सर्विसेज टाइम्स, भारत जर्मनी संबंध, मैदानगढ़ी दिल्ली, अक्टूबर 2006, पृ0-56.
23. सिविल सर्विसेज टाइम्स, भारत-फ्रांस सम्बन्ध, पृ0-52-55.

24. सिविल सर्विसेज टाइम्स, भारत-यूरोपीय सम्बन्ध, जनवरी 2007, पृ0-92-93.

25. यू0आर0घई : भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी जालन्धर, 2004,पृ0-183.

26. पुष्पेष पंत : भारतीय विदेश नीति, पृ0-182-183.

27. क्रानिकल 'समसामयिक लेख' जनवरी, 2002, पृ0-72.

28. आउटलुक साप्ताहिक, जनवरी 2002, पृ0-72.

29. वी0पी0 दत्त- इण्डियॉज फारेन पॉलिसी, पृ0-189.

30. आर0एस0 यादव : भारत की विदेश नीति एक विश्लेषण, किताब घर इलाहाबाद, पृ0-137

31. यू0आर0घई : भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी जालन्धर, 2004, पृ0-192.

32. अमर उजाला 'समसामयिक लेख', 22 जनवरी, 2005, पृ0-4.

33. नई आजादी, 'उद्घोष', मार्च-अप्रैल 2003, पृ0-18.

34. यू0आर0घई : भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी जालन्धर, 2004, पृ0-243.

35. आर0एस0 यादव : भारत की विदेश नीति एक विश्लेषण, किताब महल, इलाहाबाद, पृ0-279.

36. डॉ0 बी0एल0 फडियाः अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त एवं समकालीन राजनीतिक मुद्दे, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2006 पृ0-326.

37. यू0आर0घई : भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी जालन्धर 2004, पृ0-247.

38. हिन्दुस्तान, 27 दिसम्बर, 2004

39. यू0आर0 घई : भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक कम्पनी जालन्धर, 2004, पृ0-199

40. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 28 दिसम्बर, 1998.

41. बी0एन0 खन्ना लिपाक्षी अरोड़ाः भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0-201.

42. इण्डिया टुडे, 14 नवम्बर 2003, पृ0-13.

43. क्रानिकल, जनवरी 2004, समसामयिक लेख- पृ0-13

अध्याय-तृतीय

दक्षिण एशिया का स्वरूप तथा राज्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध

(अ) भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका तथा मालद्वीव के सन्दर्भ में सातों देशों की भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति एवं

(ब) राज्यों के मध्य (दक्षिण-एशिया) पारस्परिक सम्बन्ध।

दक्षिण एशिया का स्वरूप

दक्षिण एशिया वर्तमान युग में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र-बिन्दु है। यह क्षेत्र प्राचीनकाल से ही अपना सांस्कृतिक समन्वयता के लिए प्रसिद्ध रहा है। यही वजह है कि इस क्षेत्र की ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी एक अलग पहचान एवं महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दक्षिण एशिया की भौगोलिक स्थिति के अनुसार इसमें केवल भारत तथा उसके साथ सम्बद्ध इकाइयाँ- नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका, पाकिस्तान एवं मालद्वीव को ही शामिल किया जाता है। बहुत से पाश्चात्य विद्वान दक्षिण एशिया में अफगानिस्तान को भी सम्मिलित करते हैं, तथा 2007 में भारत में होने वाले सार्क के चौदहवें सम्मेलन में अफगानिस्तान को विधिवत सार्क का आठवां सदस्य बना भी दिया जायेगा जिससे दक्षिण एशिया के अर्न्तगत देशों की संख्या 8 हो जायेगी। अभी तक अफगानिस्तान को भू राजनीतिक स्थिति के कारण पश्चिम एशिया में सम्मिलित किया जाता है। लेकिन 13वें शिखर सम्मेलन में अफगानिस्तान को सार्क का 8वां देश बनाने की स्वीकृति प्रदान की गई है, जो कि सार्क के चौदहवें शिखर सम्मेलन (दिल्ली) में बन गया।

नेपाल को छोड़कर सम्पूर्ण दक्षिण एशिया द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व अंग्रेजों के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में था। 200 वर्ष के अंग्रेजी शासन के विरासत के रूप में इस क्षेत्र के राष्ट्रों के लिए लगभग एक जैसी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याएं छोड़ी हैं। शिक्षा, कानून, व्यापार, चिकित्सा आदि की दृष्टि से दक्षिण एशिया के राष्ट्रों में अभूतपूर्व समानता पायी जाती है। हम यहाँ दक्षिण एशिया के देशों की भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों का विस्तृत वर्णन करेंगे तथा जानकारी करने का प्रयास करेंगे कि इन देशों की भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों में आपस में क्या समानताएं तथा विषमताएं है, तथा सातों देशों के मध्य सम्बन्धों का पता लगाएगें। "भौगोलिक तथा आर्थिक रूप से इस प्रदेश में परिपूरक तत्व विद्यमान है, लेकिन इनकी उपेक्षा इस क्षेत्र के राष्ट्र एक दूसरे के विरुद्ध प्रतियोगिता में लीन है।"[1]

दक्षिण एशिया में लगभग सवा अरब से भी अधिक जनसंख्या निवास करती है। इस दृष्टि से यह विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला क्षेत्र है। यद्यपि यह क्षेत्र प्राकृतिक साधनों, जनशक्ति तथा प्रतिभा से भरपूर है तथापि इन देशों की जनसंख्या गरीबी, अशिक्षा तथा कुपोषण से पीड़ित है। भारत

को छोड़कर इस क्षेत्र के सभी देशों को खाद्यान्न का आयात करना पड़ता है। मालद्वीव को छोड़कर शेष सभी सदस्य भारतीय उपमहाद्वीप के हिस्से है। "विभाजन के पहले भारत, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश एक ही प्रशासन और अर्थव्यवस्था के अभिन्न अंग थे, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद में एक दूसरे से दूर हो गए।"[2]

दक्षिण एशिया की भौगोलिक स्थिति के आधर पर ऐसा अहसास होता है कि हिमालय से प्रारम्भ यह क्षेत्र हिन्द महासागर में तिकोने की तरह धँसता चला गया है और पूर्वी एवं पश्चिमी पार्श्वो में बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर तक फैला हुआ है। हिमालय की पूर्वांचल श्रेणियों के पार वर्मा के अराकानयोमा की पर्वत श्रेणियां तथा समुद्र में स्थित अण्डमान निकोबार द्वीप समूह इस क्षेत्र को दक्षिण पूर्व एशिया से पृथक करते है। 45 लाख वर्ग कि0मी0 में फैला यह क्षेत्र जनसंख्या की दृष्टि से भी विश्व के 1/5 वें भाग का प्रतिनिधित्व करता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दक्षिण एशिया की वास्तविक स्थिति को समझने के लिए यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र में सम्मिलित राष्ट्रों की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति को सामान्य जानकारी ली जाये। अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में दक्षिण एशिया को समझने के लिए हम उसके प्रत्येक देश को भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थितियों पर सामान्य रूप से गौर करेंगे।

1. भारत :-

जनसंख्या, आकार, संसाधन एवं प्रौद्योगिकी आदि की दृष्टि से भारत दक्षिण एशिया का सबसे बढ़ा प्रमुख राष्ट्र है। भौगोलिक दृष्टि से यह देश दक्षिण एशिया में 8°4' उत्तरी अक्षांश से 37°6' उत्तरी अक्षांश एवं 68°7' पूर्वी देशान्तर से 97°25' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। यह स्वयं में एक उपमहाद्वीप है जो हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल 32,87.,263 वर्ग किलो मीटर है।

भारत की निकटवर्ती देशों के सन्दर्भ में अत्यधिक राजनीतिक महत्व है। भारत के पड़ोसी राज्य-पाकिस्तान, चीन, वर्मा, नेपाल, बांग्लादेश, भूटान है। इसके अलावा श्रीलंका तथा अफगानिस्तान भी पड़ोसी देशों की श्रेणी में है, यद्यपि इनमें प्रत्यक्ष सीमा नहीं मिलती। द्वितीय श्रेणी के पड़ोसी राष्ट्रों में हिन्द महासागर के चारों ओर स्थित देश तथा अन्त में विश्व के समस्त राष्ट्र, क्योंकि भारत की प्राचीन

मान्यता 'वसुधैव कुटुम्बकम' की रही है। "भारत की भौगोलिक स्थिति का प्रभाव यहाँ प्राचीन काल से रहा है और आज भी इसका प्रभाव आर्थिक एवं राजनीतिक स्वरूप पर परिलक्षित होता है।"[3]

क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व का सातवाँ तथा जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा बड़ा देश है। इसका विस्तार ग्रेट ब्रिटेन से चौदह गुना, जापान से नौगुना तथा श्रीलंका से पैंतालीस गुना अधिक है। भारत का विस्तार उत्तर से दक्षिण तक 3214 कि0मी0 तथा पूर्व से पश्चिम तक 2933 कि0मी0 है। भारत के वृहद विस्तार के कारण यहाँ की जलवायु, धरातल प्राकृतिक वनस्पति, आर्थिक विकास एवं मानव जीवन में विविधता दृष्टिगोचर होती है। भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है कि यहाँ विविधता में एकता के दर्शन होते है।

स्वतन्त्रता से पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत का कोई स्थान नहीं था, यह कहना पूर्णयता गलत होगा, जबकि वास्तविकता यह है कि स्वतन्त्रता से सैकड़ों वर्ष पूर्व ही भारत का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान था। विश्व में भारत ब्रिटिश उपनिवेश के रूप में नहीं, बल्कि भारत के रूप में जाना जाता था। अंग्रेजी शासनकाल से पूर्व मुगलकाल में तथा उससे भी पूर्व गुप्त और मौर्य काल में तथा अति प्राचीनकाल में भी भारत को अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त था। 15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्र होने के बाद भारत ने लोक सत्तात्मक शासन प्रणाली एवं गुट निरपेक्षता की विदेश नीति को अपनाया। गुलामी की दासता से छुटकारा पाने के बाद वर्षो से अपनी अदम्य आकांक्षाओं एवं आदर्शो की पूर्ति के साधन स्वरूप जब उसे विश्व का व्यापक रंगमंच प्राप्त हुआ तो उसने प्रकाश एवं तिमिर दोनों के परिपार्श्व में उपयोगी प्रयत्न प्रारम्भ किये। भारत जिस समय आजाद हुआ था उस समय साम्राज्यवाद, पूंजीवाद एवं रंगवाद उसके विरोध में खड़े थे और बेकारी, अशिक्षा जैसी कठिनाइयाँ अपने ही खेमे के भीतर से प्रहार कर रही थी। समस्त दुर्बलताओं एवं अभावों की चिन्ता किए बिना भारत ने अपने आत्मिक बल के सहारे ऊँचे आदर्शो, समानता, सह अस्तित्व लोकतन्त्र एवं धर्म निरपेक्षता के नारे बुलन्द किए।

स्वतन्त्रता के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कदम रखते ही भारत को निराशा का सामना करना पड़ा, क्योंकि उस समय विश्व साम्यवादी एवं पूंजीवादी गुटों में बंट चुका था और दोनों गुटों के मध्य

शीतयुद्ध चल रहा था। सम्पूर्ण विश्व की राजनैतिक घटनाओं पर इस शीतयुद्ध का प्रभाव परिलक्षित होता था। गुटों से बंधे हुए राष्ट्र जो किसी भी नवोदित राष्ट्र को शक्तिशाली रूप में देखना सहन नहीं करते थे, ऐसी परिस्थितियों में भारत को कभी न्याय नहीं मिला। क़श्मीर की समस्या पर विश्व के राष्ट्रों ने जो रूख अपनाया वह सर्वथा अन्यायपूर्ण था। इतना ही नहीं बल्कि अमरीका जैसे शक्तिशाली राष्ट्र ने उल्टे पाकिस्तान को अधिकाधिक समर्थ बनाने का प्रयास किया, जिससे भारतीय उपमहाद्वीप में सदा तनाव बना रहे तथा भारत कभी चैन से न बैठ सके।

भारत प्रारम्भ से ही संयुक्त राष्ट्र संघ की नीतियों का प्रबल समर्थक रहा है तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में बार-बार अन्याय से पीड़ित होकर भी वह समय-समय पर उसमें महत्वपूर्ण योगदान देता रहा है और कोरिया, हिन्द-चीन, वियतनाम, मिस्र, हंगरी एवं कांगों जैसी समस्याओं के समाधान में उसने सक्रिय रूप से भाग लिया है। एफ्रो एशियाई संगठन, बाण्डुंग सम्मेलन, बेलग्रेड एवं लुसाका सम्मेलनों के माध्यम से उसने तटस्थता और सह अस्तित्व में अपनी आस्था व्यक्त की और दक्षिण अफ्रीका, पुर्तगाल आदि उपनिवेशवादियों का डटकर विरोध किया है।

स्वाधीनता के बाद भारत अनेक समस्याओं से पीड़ित रहा। आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय और ग्रामीण विकास स्वतन्त्र भारत की चुनौतीपूर्ण समस्याएँ रही हैं। जातिवाद और सम्प्रदायवाद के कारण देश में क्षेत्रवाद खूब पनपा। इन सबके बावजूद भी भारत में अभूतपूर्व राजनीतिक एकता दिखाई पड़ती है। तीन बार पाकिस्तान का तथा एक बार चीन का आक्रमण सहकर भी उसने तटस्थता की नीति पर अपनी अनास्था व्यक्त नहीं की। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत ने सदा न्याय का साथ दिया और अपने दिए हुए वचनों को निभाया भले ही उन वचनों का साझीदार दूसरा पक्ष अपनी बात से मुकर गया हो। भाई-भाई का नारा लगाकर पास आने वाले विश्वासघाती मित्र के आघात को उसने छाती पर पत्थर रखकर सहा और गाढ़े समय में सब मित्रों का साथ दिया जो नाजुक मौकों पर भारत का साथ देने से कतराते रहे। इस नैतिक दृढ़ता और स्वीकृत आदर्शो की रक्षा के लिए भारतीय नेतृत्व को भीतर और बाहर से कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा और जब आज विश्व के रंगपटल पर प्रभाववाद की राजनीति जारी है, भारत के सम्मुख एक बड़ा प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। जब हर राष्ट्र अपने स्वार्थो में आसक्त होकर विश्व-मानवीयता को अपनी दृष्टि से ओझल कर दे तो भारत जैसा राष्ट्र जिसे न्याय और सत्य सांस्कृतिक विरासत में मिले है, क्या करें ?

पड़ोसी देशों के साथ भारत के सम्बन्ध बिगाड़ने की चेष्टा कुछ बड़ी शक्तियां प्रारम्भ से ही करती आई है। वर्मा, नेपाल, श्रीलंका जैसे पड़ोसियों के साथ उनके सम्बन्ध बिगाड़ने के लिए क्या कुछ नहीं किया गया, फिर भी नेपाल, भूटान, श्रीलंका, वर्मा आदि पड़ोसी देशों के साथ उसके मधुर सम्बन्ध है। संसार का मानचित्र बताता है कि चाहे मध्य एशिया की समस्या हो या दक्षिण-पूर्व एशिया की भारत को शामिल किए बिना काम नहीं चल सकता। अपने इस स्थिति के कारण ही भारत पूर्व एवं पश्चिम का मिलन स्थल बना है। साथ ही विभिन्न समस्याओं के समाधान का केन्द्र भी। दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्र के रूप में अपने विशाल क्षेत्र, जनसंख्या एवं साधनों के कारण भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत का प्रमुख स्थान बन गया है। इसीलिए अब अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियां भी भारत की अवहेलना का साहस नहीं कर सकती। गत 50 वर्षो में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत ने जितना कार्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किया है, उतना रूस और अमरीका को छोड़कर अन्य कोई देश शायद ही कर सका हो।

निःसन्देह गुटनिरपेक्षता युद्ध विरोधी नीति, प्रजाति भेद का विनाश निशस्त्रीकरण और उपनिवेशवाद की समाप्ति ही विश्व की राजनैतिक समस्याओं के एक मात्र समाधान है और यही समस्त सिद्धान्त भारत की अन्तर्राष्ट्रीय नीति के मुख्य आधार स्तम्भ है। अतः आज हिन्द महासागरीय देशों में भारत अपना एक विशेष स्थान रखता है, इसलिए वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

अंग्रेजों के जाने के बाद भारत एक स्वतन्त्र, सम्प्रभु एवं धर्म निरपेक्ष राज्य के रूप में उभरा जिसने संसदीय प्रजातंत्र को अपनाया तथा 1950 में अपने स्वयं के संविधान को लागू कर सही अर्थो में एक गणतंत्रीय व्यवस्था की स्थापना की। भारत की सामाजिक व्यवस्था में प्राचीनकाल से ही चार वर्ग रहे हैं- ब्राह्मण-पुजारी, क्षत्रिय-योद्धा या रक्षक, वैश्य-व्यापारी, शूद्र-समाजसेवक। यह सामाजिक विभाजन गुण एवं कर्म पर आधारित था जिसका तात्पर्य था कि योग्यता एवं विशेषज्ञता के सिद्धान्त को स्वीकार करना। कालान्तर में यही विभाजन जाति व्यवस्था में कट्टरपन का रूप ले लिया तथा समाज के पदक्रम में क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों की स्थिति सुद्रढ़ एवं सुनिश्चित कर दी गयी। जिसमें शूद्रों को अछूत घोषित कर दिया गया। "विकास के प्रारम्भिक दौर में इस व्यवस्था में भाई-चारा था लेकिन बाद में कट्टरपन के उदय के साथ ही अभिशाप बन गया जिसमें मध्यम एवं निम्न वर्ग को सत्ता के दरवाजें बन्द कर दिये गये तथा ब्राह्मण एवं क्षत्रिय शासक सत्ता से जुड़ गए।"[4]

पश्चिम एशिया के मुसलमानों के आगमन के साथ एक और संस्कृति का आगमन हुआ तथा दोनों जाति-समूह हिन्दू-मुस्लिम भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग बन गए। अंग्रेजों के प्रभुत्व के साथ ईसाई संस्कृति भी भारतीय संस्कृति से प्रभावित हुई। इस प्रकार हिन्दू, मुस्लिम एवं ईसाइयों ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध एवं विकसित किया। प्रोफेसर एम्बरी के शब्दों में ''इस यथार्थ को बल मिला कि हिन्दू धर्म की 'ब्रह्म विचारधारा' ने सभी धर्मो एवं संस्कृतियों को अपने में आत्मसात कर मुख्य धारा से जोड़ लिया तथा अप्रत्यक्षतः राष्ट्रीय एकता का सूत्रपात अशोक एवं अकबर महान ने सहिष्णुता की नीति एवं सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त का अनुसरण कर एक आदर्श प्रस्तुत किया।''[5] ''भाषा की दृष्टि से भारत विविधता वाला देश है। यहां लगभग 720 भाषाएं विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती है तथापि इस विभिन्नता के बावजूद स्थिति नियंत्रित कर ली गयी।''[6] स्वतन्त्र भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा अन्य उर्दू, मराठी, तमिल, तेलगू आदि 26 भाषाओं को संवैधानिक दर्ज़ा प्रदान किया गया है।

औद्योगीकरण के लिए पर्याप्त खनिज तथा ऊर्जा संसाधन उपलब्ध है। लोहा, कोयला, मैंगनीज, अभ्रक, बॉक्साइट, थोरियम, चूना पत्थर आदि खनिज पर्याप्त मात्रा में है जबकि तांबा, टिन, सीसा, जस्ता, निखिल, पेट्रोलियम गेरू तथा सोना-चांदी पर्याप्त मात्रा में नहीं है। भारत में ऊर्जा संसाधन का प्रमुख श्रोत कोयला, जल, पेट्रोलियम है। भारत में कोयला के भण्डार रूस, अमेरिका तथा चीन की तरह तो नहीं लेकिन अपने औद्योगिक विकास के लिए पर्याप्त अक्षय भण्डार है। कोयले की संचित निधि का 68% बिहार, बंगाल, दामोदर घाटी तथा संलग्न राजमहल पहाड़ी क्षेत्र में संचित है शेष अन्यत्र बिखरी है। विद्युत के क्षेत्र में वृद्धि हुयी है। 21वीं सदी में भी भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार अभी भी कृषि एवं उससे जुड़े अनेक छोटे-बड़े उद्योग धन्धे है। भारत में दो तिहाई लोग अभी भी कृषि पर पूर्णतः निर्भर है।

2. <u>पाकिस्तान</u> :-

भारत के विभाजन के फलस्वरूप 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान का उदय हुआ। प्रारम्भ में पूर्वी बंगाल भी इसका एक भाग था। भौगोलिक स्थिति के अनुसार पाकिस्तान 23°30' उत्तरी अक्षांश से 36°45' उत्तरी अक्षांश तथा 61° पूर्वी देशान्तर से 76° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है, जिसका

क्षेत्रफल 8,03,943 वर्ग कि0मी0 है। पाकिस्तान की 2912 कि0मी0 सीमा भारत से 2340 कि0मी0 सीमा अफगानिस्तान से तथा 909 कि0मी0 सीमा ईरान से लगी है।

पाकिस्तान का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्व का वर्णन अत्यधिक विशद् है, इसका प्रमुख कारण भारतीय उपमहाद्वीप की राजनीति में विदेशी शक्तियों की रूचि है। पाकिस्तान के सम्बन्ध भारत के साथ मैत्रीपूर्ण नहीं है, अतः इस तथ्य का विदेशी शक्तियां प्रारम्भ से ही लाभ उठाना चाहती है, जिससे दक्षिण एशिया में उनका स्वार्थ सिद्ध हो सके। दूसरी ओर पाकिस्तान एशिया एवं दक्षिण एशिया का पुल भी कहा जाता है, अतः भारत को नियंत्रित करने के लिए पाकिस्तान का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

एक समय चीन, अमेरिका एवं सोवियत संघ से इसके अच्छे सम्बन्ध होने के कारण, इसकी विदेशनीति ने बहुत सफलता प्राप्त की थी, किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका की ओर उसका अधिक झुकाव होने के कारण उसके सोवियत संघ से सम्बन्ध बहुत दिनों तक अच्छे नहीं रहे। दूसरी ओर अमरीका इसको सैनिक, आर्थिक सहायता प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराता रहा है और भारत के विरूद्ध शक्तिशाली बनाना इसका उद्देश्य रहा है। अमेरिका ने भारत के विरूद्ध कश्मीर के प्रश्न पर सदैव ही पाक का पक्ष लिया है। अमेरिका ने पाकिस्तान में अपने सैनिक अड्डे भी कायम किए है, जिनको सोवियत संघ के विरूद्ध काम में लिया जा सके। विगत बांग्लादेश संघर्ष के समय भी अमेरिका और चीन ने पाकिस्तान का साथ दिया था। पाकिस्तान 'सीटों' एवं 'बगदाद समझौते' का भी सदस्य है। वर्तमान में वह 'सार्क', 'नाम' 'यू0एन0ओ0' का सदस्य है।

पाकिस्तान के पश्चिम एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका के मुस्लिम देशों से सहज मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध है। इसका प्रमुख आधार धार्मिक है। अतः यह कहा जा सकता है कि पाकिस्तान का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विभिन्न देश जो उसकी सहायता एवं समर्थन करते है, उनसे ही वह मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखता है। बलूच समस्या के कारण अपने एक और पड़ोसी राष्ट्र अफगानिस्तान से भी उसके सम्बन्ध खराब रहे है, लेकिन अब वह अफगानिस्तान से अच्छे सम्बन्ध बनाकर अपनी समर्थक सरकार बनाने में दिलचस्पी लेता है।

वर्तमान समय में अरब देशों के अतिरिक्त चीन के साथ इसके घनिष्ठ सम्बन्ध है और बांग्लादेश के साथ भी सम्बन्ध बनाने में प्रयत्नशील है, साथ ही साथ देश की आन्तरिक अस्थिरता ने यहां के

राजनीतिक स्वरूप एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में देश की स्थिति को भी प्रभावित किया है। इसके बावजूद भी पाकिस्तान की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण स्थिति को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि देश की सामरिक स्थिति, इस्लामी देश होने का दावा तथा अन्य मुस्लिम देशों से सम्बन्ध , भारत के साथ सम्बन्ध तथा महाशक्तियों से आर्थिक सहायता के कारण पाकिस्तान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करता है।

पाकिस्तान प्रारम्भ से ही मुस्लिम राज्य है। हिन्दू, सिक्ख, ईसाई तथा पारसी यहाँ अल्पसंख्यक समूह में आते है। मुस्लिम कट्टरपन पाकिस्तान में चरम सीमा पर है। मुस्लिम समाज में कई वर्ग एवं उपवर्ग हैं तथा हिन्दुओं में अछूतों के समान उन्हें भी हेय दृष्टि से देखा जाता हे। जैसा कि अहमदयाज ग्रुप को कोई मुसलमान मानने को तैयार नहीं है। पाकिस्तान में मूलतः पांच जाति समूह हैं पंजाबी, सिंधी, बलूची, पस्तों (पठान) एवं मुहाजिर जो पाकिस्तान की स्थापना के बाद भारत से यहाँ आकर बसे।

जातिगत मतभेद अधिक हैं जिससे कि एक वर्ग समूह दूसरे वर्ग के संदर्भ में सोचता एवं बात करता है। यही कारण था कि 1971 में बांग्लादेश का उदय हुआ। श्री बक्स्टर ने पाकिस्तानी समाज का चित्रण बड़े ही सजीव ढंग से किया है। उन्हीं के शब्दों में - "पंजाबी अपने आपको सभ्य सुसंस्कृत, योग्य, प्रशासक तथा आदर्श सैनिक मानते है, जबकि दूसरों की राय में वे उजड्ड एवं धोखेबाज है। मुहाजिर अपने आपको संभ्रांत वर्ग एवं श्रेष्ठ व्यापारी मानते है जबकि अन्य उन्हें अवैध धन्धेबाज कहते है। पठान अपने आपको विशुद्ध प्रजाति योद्धा मानते है जो आवभगत, मान-सम्मान एवं बदला लेने में अपनी शान नहीं रखते है। दूसरे लोग उन्हें कानून विरोधी तथा अबुद्धिवादी मानते है। सिंधी अपनी प्राचीनता एवं भाषाई खूबसूरती पर गर्व करते हैं जबकि अन्य उन्हें गंवार एवं शेखीखोर मानते है। बलूची अपने को योद्धा मानते है जबकि दूसरे उन्हें पिछड़ी जाति के मानते है।"[8]

पाकिस्तान में खनिज संसाधनों में पेट्रोलियम, नमक, चूना, बॉक्साइट, लोहा, कोयला गंधक एवं प्राकृतिक गैस के क्षेत्र हैं लेकिन उनका उपयोग नहीं हो पा रहा है जितना भी संसाधनों का दोहन होता है उनसे स्थानीय आवयकताओं की पूर्ति नहीं होती। कोयला का आयात भारत एवं चीन से होता है। क्रोमाइट का हिन्दूबाग के क्षेत्र संचित भण्डार अधिक है, लेकिन इसका लाभ न के बराबर है। तेल बाहर से आयात होता है। अतः औद्योगिक ईधन के अभाव में औद्योगिक विकास नहीं हो पा रहा है। पाकिस्तान

की लगभग 80 प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर है। सकल राष्ट्रीय आय का दो तिहाई भाग कृषि से प्राप्त होता है। सिंध एवं उसकी सहायक नदियों का उपजाऊ मैदान संसार के उपजाऊ मैदानों में से एक है। पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था निजी एवं सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के पारस्परिक सहयोग पर ज्यादा निर्भर करती है।

यद्यपि आर्थिक रूप से पाकिस्तन ने काफी प्रगति की है, लेकिन जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों की कमी प्रतिरक्षा पर बढ़ता खर्च तथा 1979 के बाद अफगान शारणार्थियों के प्रवेश तथा भारत के साथ अघोषित युद्ध आदि समस्याओं ने पाकिस्तान को दक्षिण एशियाई देशों एवं तृतीय विश्व के देशों की तुलना में मुसीबत में ही डाला है। इन समस्याओं का कारगर एवं स्थायी समाधान संभवतः क्षेत्रीय सहयोग एवं सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था पर ज्यादा निर्भर करता है।

3. बांग्लादेश :-

"सन् 1971 में बांग्लादेश का जन्म विश्व को चौकाने वाली घटना थी। इसके उदय से विश्व राजनीति में अनेक सत्य सामने आये है। बांग्लादेश के जन्म से यह स्पष्ट हो गया कि धर्म का स्थान राजनीति में गौण है। विदेशी सैनिक सामग्री के आधार पर कोई देश शक्तिशाली नहीं हो सकता, दो राष्ट्रों का सिद्धान्त भ्रामक रहा, प्रजातन्त्र को कमजोर समझने का भ्रम समाप्त हो गया।"[9]

बांग्लादेश के मानचित्र में 20° उत्तरी अक्षांश से 26° उत्तरी अक्षांश तथा 88° पूर्वी देशान्तर से 92° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इसका क्षेत्रफल 1,44,000 वर्ग कि0मी0 है। बांग्लादेश का जन्म जिस तीव्रता से हुआ, उतनी ही अधिकता से इसने अन्र्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित किया, साथ ही विश्व में अपना स्थान बनाया। बांग्लादेश के उद्‌भव का सर्वाधिक श्रेय भारत को है। यदि भारत इसमें रुचि न दिखाकर केवल इसे आन्तरिक मामला ही मानता रहता तो सम्भवतः बांग्लादेश अस्तित्व में नहीं आता।

आज अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बांग्लादेश ने दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया में शक्ति सन्तुलन को सर्वथा नया रूप दे दिया है। आज बांग्लादेश संयुक्त राष्ट्र संघ, सार्क तथा नाम का सदस्य है तथा विश्व के सभी प्रधान देशों के साथ इसके सम्बन्ध हैं। शेख मुजीब की हत्या के बाद बांग्लादेश के शासकों ने भारत विरोधी और पाकिस्तान समर्थक नीति अपनाई। इरशाद के काल में भारत विरोधी और पाकिस्तान समर्थक स्वर कुछ हल्का पड़ा। फरक्का विवाद, नया मूर विवाद, अवैध पारगमन की समस्या

और बाड़ लगाने के प्रश्न आदि को लेकर दोनों देशों में मतभेद पैदा हुए। एक गुटनिरपेक्ष राष्ट्र होते हुए भी बांग्लादेश पश्चिम की ओर अधिक झुका है। अमेरिका एवं चीन से मधुर सम्बन्ध है। एक मुस्लिम देश होने के नाते यह देश अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को बहुत अधिक प्रभावित करने की क्षमता रखता है। और वर्तमान में भी यह विश्व राजनीति को प्रभावित कर रहा है।

"बांग्लादेश में अधिकांशतः लोग अपनी जातीय पहचान रखते है लेकिन बहुमत मुसलमान वर्ग का है। इसके अलावा हिन्दू, ईसाई तथा बौद्ध लोग भी है।"[10] "मुसलमान लगभग 88%, हिन्दू 11%, तथा शेष 1% ईसाई एवं बौद्ध है।"[11] "इस्लाम धर्म की प्रधानता है, लेकिन शेष अपनी आस्था एवं विश्वास के अनुसार अपने धर्म को मानते है। इस्लाम संस्कृति से दूसरे धर्मो को कभी खतरा नहीं रहा।"[12] कभी-कभी हिन्दू मुस्लिम तनाव भी होता रहता है। कुछ क्षेत्रों में जनजातियों को छोड़कर बांग्लादेश के लोग भाषा, धर्म, रीति-रिवाज, तथा काल की दृष्टि से एक श्रेष्ठ संस्कृति के धनी है। बांग्लादेश में 95% लोग बंगला भाषा ही बोलते हैं जो केवल सरकारी भाषा है वरन आम जन जन की भाषा भी है। अंग्रेजी भाषा का भी प्रयोग लोग करते हे।

खनिजों की दृष्टि से बांग्लादेश में प्राकृतिक गैस कोयला ही मिलता है। चूने के पत्थरों के भण्डार का भी पता चला है। आर्थिक दृष्टि से बांग्लादेश की स्थिति बहुत पिछड़ी है। आधुनिक तकनीक के अभाव में नये खनिज भण्डारों का पता नहीं लगाया जा सका है। कृषि उत्पादन लगभग 75% जमीन पर होता है। जनसंख्या का धनत्त्व ज्यादा होने से भूमि का कोई न कोई उपयोग होता रहता है। पहाड़ी इलाकों में चाय, मैदानी क्षेत्र में धान जूट तथा शाक-सब्जी एवं समुद्रतटीय क्षेत्र में मत्स्य उत्पादन होता है। समस्त उत्पादन का चावल 50% उगाया जाता है तथा जूट विश्व का 45% पैदा किया जाता है जो विदेशों को निर्यात होता है। खेती का ढंग पारम्परिक है।

"उद्योगों का अभाव है क्योंकि प्राकृतिक संसाधनोंका नितान्त अभाव है। केवल पटसन उद्योग ही विकसित है, जो संसार का 80% सामान निर्यात किया जाता है तथा विदेशी मुद्रा का प्रमुख श्रोत है। सूती की कुछ ही मिले है। धातु इंजीनियरी, रसायन, विद्युत तथा यातायात एवं उद्योग पूर्णयता विदेशों से आयातित कच्चे माल पर निर्भर करते हैं। विदेशी मुद्रा काफी मात्रा में खर्च होती है। घरेलू उत्पादन में 54% कृषि उद्योग, 13% अन्य, 33% विभिन्न सेवाओं का है। विदेशी व्यापार में 49% जूट निर्यात होता

है तथा कुल आयात में 25% खाद्य, 12% ईंधन तथा 55% औद्योगिक वस्तुएं आयात होती हैं।"[13] आर्थिक रूप से बांग्लादेश के विकास के नये आयाम एवं क्षेत्र खोजने होगें। प्राकृतिक गैस एवं खनिज भण्डारों की खोज तथा जूट एवं मत्स्य उद्योग तथा कृषि का एक उद्योग के रूप में विकास करने की आवश्यकता है तथा जनसंख्या की जन्मदर में कमी करनी होगी।

4. श्रीलंका :

"श्रीलंका भारत के दक्षिण में हिन्द महासागर के सीने में तैरता हुआ एक द्वीप है। यह 5°55' उत्तरी अक्षांश से 9°50' उत्तरी अक्षांश तथा 79°41' पूर्वी देशान्तर से 81°35' देशान्तर के मध्य स्थित है। इसका क्षेत्रफल 65, 610 वर्ग कि0मी0 है। यहाँ 64%, बौद्ध, हिन्दू 9%, ईसाई 6%, मुसलमान 7% अन्य धर्मो के लोग हैं। यहाँ 20% तमिल तथा 80% सिंहल नृवंशीय लोग रहते हैं।"[14] श्रीलंका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दृष्टिकोण से भी एक महत्वपूर्ण देश है। हिन्द महासागर पर नियंत्रण बनाये रखने के लिए किसी भी देश के लिए श्रीलंका पर प्रभाव होना आवश्यक है। श्रीलंका के हवाई अड्डे एवं बन्दरगाह अन्तर्राष्ट्रीय सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि श्रीलंका ने 4 फरवरी, 1948 को स्वतन्त्र होकर गुटनिरपेक्ष विदेशनीति को अपनाया था, परन्तु उसका झुकाव प्रारम्भ से ही पाश्चात्य देशों की ओर अधिक था, इस झुकाव के लिए पाश्चात्य कूटनीति अधिक उत्तरदायी है, जिसने श्रीलंका को सदैव अपने प्रभाव क्षेत्र में बनाये रखने का प्रयास किया। और इसके लिए जब भी सम्भव हुआ पाश्चात्य देशों ने गुट निरपेक्ष मंचों पर श्रीलंका के प्रधानमंत्रियों को भारत-विरोधी बनाने का प्रयास किया क्योंकि भारत का झुकाव पहले से ही सोवियत संघ की ओर था।

श्रीलंका में भण्डारनायके के नेतृत्व में कुछ स्वतन्त्र विदेश नीति अपनाने का प्रयास किया गया और जब ब्रिटेन का प्रभाव हिन्द महासागर से क्षीण होने लगा तो अमेरिका ने हिन्द महासागर में नियंत्रण बनाये रखने के लिए और शक्ति रिक्तता की समस्या के हल के लिए डियागोगर्सिया में सैनिक अड्डा बनाया जिसका सिरिमाओं भण्डारनायके ने इन्दिरा गांधी के साथ मिलकर खुलकर विरोध किया। अतः हिन्द महासागर का जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्व है, वहीं महत्व श्रीलंका का भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हिन्द महासागर की नजदीकी या उपस्थिति के कारण है।

बीसवीं शताब्दी के नवें दशक से श्रीलंका जातीय, धार्मिक, अलगाववाद व आतंकवाद की समस्या

से ग्रस्त है। इस समस्या के हल के लिए भारत, पाकिस्तान, तथा महाशक्तियों की ओर श्रीलंका निहार रहा है, और यह शक्तियां अपने-अपने स्वार्थों के कारण श्रीलंका को इस अपनी आन्तरिक समस्या के उलझाव से मुक्त नहीं कर पा रही है, परन्तु इससे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में श्रीलंका का महत्व कम नहीं हो जाता। श्रीलंका का सामाजिक ढांचा अत्यधिक जटिल है। श्रीलंकाई समाज की दो प्रमुख विशेषताएं है- प्रथम, भिन्न जाति, वर्ग, भाषा एवं धर्म के आधार पर गठित विभिन्न समूह श्रीलंका के समाज का निर्माण करते है, जिन्हें बहुलसमाज कहा जा सकता है। द्वितीय, समाज का 70% ग्रामीण वर्गसमूह का प्रतिनिधित्व करता है। अतः दोनों समूहों का विश्लेषणात्मक अध्ययन श्रीलंका की सामाजिक व्यवस्था को समझने में उपयोगी होगा।

श्रीलंकाई समाज वस्तुतः विभिन्न मानवजाति, धर्म एवं भाषा के आधार पर विभिन्न समूहों में विभाजित है जो राजनीतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। प्रथम परम्परागत मानव जाति वर्ग सिंहली एवं तमिल हैं। सिंहली पूरे श्रीलंका में 70% है जबकि अल्पसंख्यक के रूप में तमिल है जो कुल आबादी का 11% है। सिंहली जाति जो सम्भवतः बंगाली मूल के हैं वो अधिकांश बौद्ध हैं जो मुख्यतः दक्षिण पश्चिम में बसे है, जबकि तमिल श्रीलंका के उत्तर पूर्व में केन्द्रित हैं। दक्षिण भारतीय तमिल मूल के नागरिक ही श्रीलंका में श्रमिकों के रूप में गए थे जो वहाँ जाकर बस गए। तीसरा वर्ग ईसाइयों का है जो पूर्णतः शिक्षित, जागरूक एवं विश्वसनीय श्रमिक हैं, यद्यपि वे केवल 1% ही हैं, ये वर्ग समूह मूलतः पुर्तगाल डच एवं ब्रिटिश ईसाई हैं।

''परम्परागत आधार पर 60% डच वर्गीय जातियां तथा 40% निम्न वर्गीय जातियां श्रीलंका में है। उच्चवर्ग शासक वर्ग से सम्बन्धित है तो निम्नजातियां जैसे लोहार, बढ़ई, धोबी आदि श्रमिक वर्ग से सम्बन्धित हैं।''[15] श्रीलंका में छुआछूत अवैध घोषित होने के बावजूद आज की जड़े जमाए हुए हैं।

सिंहली (बौद्ध), तमिल (हिन्दू) तथा ईसाई हैं जो कई जातियों एवं उपजातियों में विभाजित है। जहां तक धर्म और भाषा का प्रश्न है श्रीलंका में सिंहली जो सम्पूर्ण आबादी का 70% हैं बौद्ध धर्म को मानते हैं तथा उनकी भाषा सिंहली हैं, जिसका बंगाली भाषा को छोड़कर अन्य किसी भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है। तमिल जिनकी धार्मिक भाषा अरेबिक हैं जो संभवतः इस्लामी अवधारणा को प्रदर्शित करती है। ईसाई नागरिक ईसाई धर्म को मानते हैं तथा उनकी मातृभाषा अंग्रेजी है। श्रीलंका में धार्मिक

कट्टरपन नहीं है और न ही श्रीलंका का कोई राष्ट्रीय धर्म है। अपनी आस्था एवं विश्वास के अनुसार कोई भी धर्म अपनाया जा सकता है।

श्रीलंका में खनिज सम्पदा में मुख्यतः ग्रेफाइट है। विश्व के उत्पादन का 10% यहाँ पैदा होता है, अधिकांश ग्रेफाइट निर्यात कर दिया जाता है, जिससे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जापान मुख्य आयातक देश हैं। इसके अलावा नाना प्रकार के पत्थर (रत्न) जैसे- नीलमणि, पुखराज, चन्द्रमणि तथा बिल्लीचक्षु आदि पाये जाते हैं।

"यहाँ की लगभग 80% जनसंख्या खेती में लगी है। धान, चाय, नारियल रबड़ आदि मुख्यतः फसले हैं जिन पर अर्थव्यवस्था काफी आश्रित है, लेकिन खेती का तरीका वही पुराना है, अब जरूर थोड़ी बहुत 'प्रत्यारोपित अर्थव्यवस्था' का विकास प्रारम्भ हो गया है लेकिन इससे भूमिहीनता तथा प्रवासियों की समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं जो राजनीतिक रूप से संवेदनशील समस्या में परिवर्तित हो गई है।"[16] 19वीं एवं 20वीं सदी के मध्य तक सारी अर्थव्यवस्था चाय, रबड़, नारियल के निर्यात पर आधारित रही है। "जनसंख्या की तेजी से वृद्धि ने श्रीलंका की अर्थव्यवस्था को निर्णायक ढंग से प्रभावित किया जिसने आगे चलकर बेरोजगारी को जन्म दिया।" 1969-70 में यह बेरोजगारी कुल श्रमशक्ति का 15% थी तथा 1990 में बढ़कर 20% तक का आंकड़ा पहुंच गया।"[17] श्रीलंका के आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनों की कमी कृषि आधारित व्यवस्था में आधुनिकता का अभाव जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि एवं बेरोजगारी की समस्याएं आदि मुख्यतः बाधक हैं, परिणाम स्वरूप अन्य दक्षिण एशियाई देशों की तरह श्रीलंका भी भविष्य के प्रति असुरक्षा की भावना का शिकार है।

5. नेपाल :-

"नेपाल हिमालय की घाटियों में स्थित भारत एवं चीन के बीच एक 'बफर स्टेट' माना जाता है। भौगोलिक रूप से यह 26°20' उत्तरी अक्षांश से 30°10' उत्तरी अक्षांश तथा 80°15' पूर्वी देशान्तर से 85°15' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इसका क्षेत्रफल लगभग 1,47,181 वर्ग कि0मी0 है।"[18] नेपाल की अपनी राजनीति व इसका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्व हिमालय नीति से सम्बद्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हिमालय का प्राचीन काल से ही महत्व रहा है, परन्तु तिब्बत की समस्या के उत्पन्न हो जाने के बाद हिमालय का महत्व और भी बढ़ गया है। चीन द्वारा तिब्बत हड़प लिए जाने

के बाद अब विश्व राजनीति के खिलाड़ियों का ध्यान जिसमे भारत, चीन, पाकिस्तान, ब्रिटेन व अमेरिका इत्यादि शामिल है। हिमालय के इन दूसरे देशों का नेपाल की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है, क्योंकि ब्रिटेन ने नेपाल की स्वतन्त्रता को हड़पर कर उस पर 'सुबोली सन्धि' थोपी थी।

भौगोलिक दृष्टि से नेपाल एक आन्तरिक देश है, बिना भारत के गुजरे हुए नेपाल नहीं पहुँचा जा सकता, इसलिए भारत को नेपाल के लिए पारगमन सुविधा देनी पड़ती है। नेपाल की शासन प्रणाली भी भारत से भिन्न है। यहाँ की शासन प्रणाली पर सामन्तवादी प्रभाव पहले राजाओं का रहा और फिर राजाओं का प्रभाव कभी समाप्त नहीं रहा। लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली वाले देश भारत को अपने उपद्वीपीय स्थिति इस सुजातीय देश में विभिन्न प्रकार की शासन प्रणाली कतई रास नहीं आती। इसके अतिरिक्त नेपाल का भी यह आरोप है कि भारत का व्यवहार इसके प्रति सदैव बड़े भाई जैसा रहता है, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सभी राष्ट्र बराबर हैं। नेपाल की विदेश नीति चीन और भारत के बीच समदूरी सिद्धान्त पर आधारित है, यह नीति भी भारत को पसन्द नहीं आती है। उधर नेपाल अपने उत्तरी पड़ोसी चीन को भी नाराज नहीं करना चाहता। पाकिस्तान और पाश्चात्य देश भी भारत विरोध के कारण नेपाल और भारत की निकटता को पसन्द नहीं करते।

अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नेपाल भारत से मैत्री चाहता है, लेकिन इसके साथ वह अपनी स्वतन्त्र विदेश नीति भी चाहता है। इसलिए जब तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हिमालय का महत्त्व रहेगा, तब तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नेपाल का महत्व समाप्त नहीं हो सकता। नेपाल में सामाजिक ढांचा भारत की तरह क्रमिक रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार वर्णो में विभाजित है। बौद्ध 7%, मुस्लिम 3% है। हिन्दुओं बौद्धों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों वर्ग अपने को एक ही धर्म एवं संस्कृति के भागीदार मानते है। नेपाल एक हिन्दू राज्य था, लेकिन 2006 में जनता के आन्दोलन के कारण इसे धर्म निरपेक्ष राज्य की मान्यता मिली।

खनिजों की दृष्टि से नेपाल काफी दुर्भाग्यशाली है। यहाँ अभ्रक एक मात्र खनिज है जो काठमाण्डू के पूर्व में होता है। लोहा, तांबा, कोबाल्ट लिग्नाइट बहुत ही अल्पमात्रा में मिलता है। नेपाल कीं अर्थव्यवस्था अत्यधिक पिछड़ी एवं अविकसित है। नेपाल की आर्थिक योजना 1956 से प्रारम्भ हुई थी। नेपाल ने शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवागमन तथा संचार के क्षेत्र में आशातीत सफलता तो प्राप्त की, लेकिन

कृषि क्षेत्र में जहाँ 90% श्रमशक्ति लगी है, आशातीत प्रगति नहीं की। मुख्य फसले चावल, ज्वार, बाजरा गेहूँ, गन्ना, तम्बाकू, आलू, फल तथा तिलहन आदि है। लेकिन उर्वरकों, उच्च कोटि के बीज तथा सिंचाई साधनों के अभाव में उत्पादन पर प्रतिकूल असर स्पष्ट दिखाई देता है।

औद्योगिक क्षेत्र भी निराशाजनक है। अधिकांश उद्योग धन्धे पारम्परिक हैं। प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कृषि एवं उद्योग धन्धे ज्यादा विकसित नहीं हो सके। खाद्यान्न, जूट, लकड़ी ही निर्यात की जाती है, बाकी सब चीजें आयात करनी पड़ती है, अर्थात कुल बजट का लगभग 70% आयात होता है, जिसकी पूर्ति विदेशी ऋण से ही की जाती है। ''सहायता देने वालों में मुख्यतः कनाड़ा, भारत, जापान एवं चीन है। इस विदेशी सहायता से नेपाली शासक केवल खाद्य, कपड़ा, झोपड़ी, स्वास्थ्य सेवा एवं आंशिक शिक्षा के साधन ही मुहैया करा पाते है।''[19]

6. भूटान :-

''भूटान हिमालय की घाटियों में बसा एक छोटा सा सुन्दर देश है। यह 26°45' उत्तरी अक्षांश से 28°20' उत्तरी अक्षांश तक, 80°45' पूर्वी देशान्तर से 92°85' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है तथा इसका क्षेत्रफल लगभग 46,500 वर्ग कि0मी0 है। भूटान में अभी भी राजतन्त्र है।''[20] अब लोकतन्त्र का शनैः-शनैः विकास हो रहा है।

भूटान, भारत का एक संरक्षित राज्य है तथा भूटान की भी भौगोलिक स्थिति वही है जो नेपाल की है। यह भी हिमालय की घाटियों में बसा हुआ भारत एवं चीन के बीच स्थित एक आन्तरिक भूमि राज्य है। इसलिए भूटान का भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्व हिमालय से सम्बद्ध है। जातीय दृष्टि से भूटानी चीन से सम्बन्धित लगते हैं, इसलिए चीन का लगाव भूटान के प्रति स्वाभाविक है। दूसरी तरफ इतिहास के पन्नों को पलटनें से मालूम पड़ता है कि भारत-भूटान के सम्बन्ध अति प्राचीन हैं और यह सम्बन्ध भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक है। इसलिए 8 अगस्त, 1949 को भूटान तथा भारत के बीच एक सन्धि हुई जिसके अनुसार भारत भूटान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा, साथ ही भूटान सरकार विदेशी मामलों में भारत सरकार की सलाह को मार्गदर्शक के नाते मानने के लिए सहमत है।

भारत-चीन युद्ध के बाद भूटान ने प्रतिरक्षा का भार भी भारत को सौंप दिया। इन सब बातों के आधार पर हमें यह नहीं सोंचना चाहिए कि भूटान का अपना कोई अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व नहीं हैं, बल्कि UNO की स्थापना के बाद छोटा राष्ट्र अपने व्यक्तित्व को बनाए रख सकता है क्योंकि UNO में प्रत्येक छोटा बड़ा राष्ट्र समान प्रतिनिधित्व रखता है। वर्तमान में भूटान UNO तथा SAARC का सदस्य है तथा धीरे-धीरे अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व का विकास कर रहा है। भारत और बांग्लादेश में इसके दूतावास भी खुल गए है। इधर चीन भूटान के राजनीतिज्ञों को धन और पद का लालच देकर अपने पक्ष में करने की चेष्टा कर रहा है।

अतः आज भूटान भले ही भारत संरक्षित राज्य हो लेकिन इससे उसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व कम नहीं हो जाता, बल्कि भूटान की भौगोलिक स्थिति उसको सदा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व प्रदान करती रहेगी। भूटानी लोग जिन्हे 'ड्यूक पास' कहते है; अपनी राष्ट्रीय पहचान को बनाए रखने के प्रति सजग रहे है। तिब्बती मंगोल एवं नेपाली लोग यहाँ बस कर भूटानी संस्कृति के अंग बन गए लेकिन बहुमत नेपाली जाति का है। अधिकांश नेपाली भूमिहीन किसान एवं मजदूर जिन्हें भूटानी नागरिकता के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। भारत के समान भूटान छुआ-छूत का शिकार नहीं है। सामाजिक दृष्टि से पुरोहित, शासक एवं किसान तीन वर्ग हैं, लेकिन उनमें किसी भी प्रकार का अलगाव या द्वेष नहीं है।

भूटान प्रारम्भ से ही बौद्ध संत पद्मसंभव से प्रभावित था जिन्होनें वहाँ बौद्ध धर्म की स्थापना की। आज भूटान एक धर्म प्रधान राष्ट्र है अर्थात महायान बौर्द्ध धर्म वास्तविकता भूटान का राष्ट्रीय धर्म है। भूटान में लामाओं को श्रेष्ठतर स्थान प्राप्त है। भूटानी नागरिक तिब्बती मूल की भाषा का प्रयोग करते हैं जो आस-पड़ोस की भाषाओं का मिश्रित रूप है। आसामी, बंगाली एवं विशुद्ध तिब्बती शब्दावली का भूटानी भाषा में प्रयोग बहुतायत से प्रचलित है।

आज भूटान को भाषाई दृष्टि से विभाजन निम्न प्रकार किया जा सकता है।

जांग्खा	-	पश्चिमोत्तर भूटान
बमयाख	-	मध्य भूटान
सरचाटखा	-	पूर्वी भूटान

नेपाली एवं हिन्दुस्तानी - दक्षिण भूटान

सरकारी कार्यालयों में अंग्रेजी भाषा का भी खूब प्रयोग किया जाता है।

भूटान में प्राकृतिक संसाधनों में वन प्रमुख है। बांस, ओक, रेडोण्ट्रोन तथा चीड़ एवं फर बहुतायात के साथ पाये जाते है। ये अत्यधिक मूल्यवान किन्तु यातायात के अभाव में इनका उपयोग सीमित है। खनिज संसाधनों में चूना पत्थर एवं जिप्सम मुख्य रूप से पाया जाता है। ''भारत के सहयोग से वन एवं खनिज सम्पदा का अब आधुनिकीकरण किया जा रहा है। चोखा विद्युत परियोजना भारत की सहायता से बन रही है जिनकी उत्पादन क्षमता 336 मेगावाट है।''[22] भूटान मुख्यतः कृषि प्रधान एवं पशुपालन प्रधान वाला देश है, लेकिन आधुनिक साधनों के अभाव में खेती में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी है। अर्थव्यवस्था को मुख्यधारा में लाने हेतु 1961 से ही पंचवर्षीय योजनाओं को क्रियान्वयन किया जा रहा हे। सीमेन्ट फैक्टरी, वनाधारित छोटे-छोटे धन्धे तथा उनके सामान का निर्यात तथा टेक्स-टाइल्स, माचिस, बर्तन, एल्युमीनियम फर्नीचर आदि में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात तथा संचार के साधनों में प्रगति से अर्थव्यवस्था में सुधार हुआ। भारत भूटान के आर्थिक विकास में शत-प्रतिशत आर्थिक मदद करता है।

7. मालदीव :-

मालदीव हिन्द महासागर में स्थित एक द्वीपीय देश है। यह 2° उत्तरी अक्षांश से 8° उत्तरी अक्षांश तथा 72° पूर्वी देशान्तर से 75° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इसका क्षेत्रफल लगभग 208 वर्ग कि0मी0 तथा जनसंख्या लगभग 210000 के आस-पास है। इस दृष्टि से यह संसार का सबसे घनी आबादी वाला द्वीप हे। इस पूरे क्षेत्र में 12 प्रवाल तथा 2000 छोटे-छोट द्वीप है। हिन्द महासागर की वर्तमान राजनीति में इसे सामरिक महत्व प्राप्त है।

मालदीव 26 जुलाई, 1965 को आजाद हुआ तथा नवम्बर, 1968 को गणराज्य बना। इसका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्व हिन्द महासागर में इसकी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण है। आधुनिक युग में यू0एन0ओ0 की स्थापना के बाद यह सम्भव हुआ है कि मालदीव जैसे छोटे-छोटे देश भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी पहचान बनाए रख सके। अन्यथा मालदीव जैसा छोटा सा देश जिसे 400 भाडे के सैनिकों ने हड़पने या गुलाम बनाने का प्रयास भारत के सहयोग से ही विफल हो सका, जबकि इसका

अस्तित्व सम्भव नहीं था। हिन्द महासागर में महाशक्तियों की प्रतिस्पर्द्धा ने डियागोगार्सिया, मारीशस, श्रीलंका, मालदीव तथा चांगोस जैसे द्वीपों का सैनिक अड्डों की दृष्टि से महत्व बढ़ाया है।

'सार्क' नामक सन्धि संगठन के बाद मालदीव का महत्त्व और भी बढ़ गया है, क्योंकि दक्षेस में सम्मिलित सात राज्यों की स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से इस क्षेत्रीय संगठन में बराबर की हैसियत से है। इस संगठन की स्थापना से मालदीव जैसे छोटे से देश को भी इस क्षेत्रीय सहयोग संगठन के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण दर्जा हासिल हुआ है तथा भारत, श्रीलंका तथा पाकिस्तान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से मालदीव का महत्व समान रूप से उपयोगी है। अतः सभी की रूचि मालदीव को सम्प्रभुता सम्पन्न गणराज्य बनाये रखने एवं इसके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने में है।

''मालद्वीवियन समाज अत्यधिक अनुशासित एवं परम्परावादी है। मालद्वीव के सामाजिक व्यवस्था में मुख्यतः चार वर्ग है।''[23] शाही परिवार समाज में सबसे उच्च स्थन पर है। सुल्तान के सीधे उत्तराधिकारी को 'मन्नीपुल' तथा रिश्तेदारों को 'दिदी' का ओहदा (Title) दिया गया। द्वितीय स्थान पर सरकारी अधिकारी लोग हैं जिन्हें किल्गे-फेन् एवं टाकुरू-फेनू कहते है। वस्तुतः फेनू शब्द सम्मान सूचक है जो सामाजिक सेवा धन या न्यायालयीन आदेशानुसार प्रदान किया जाता हे। तीसरा वर्ग, कुलीन वर्ग है जिन्हें मानिकू कहते हैं। जब कोई सम्मान इन्हें दिया जाता है तो इनको मानिकू फेनू नाम से पुकारा जाने लगता है। चौथा वर्ग, श्रमिकों, किसानों या दासों का है जो जन्म के आधार पर निश्चित होता है। इस वर्ग को 'कालों' कहते है।

उपर्युक्त सामाजिक ढांचा जितना देखने में कठोर प्रतीत होता है वैसे व्यवहार में लचीला है। कोई पर्दा या घूंघट नहीं। यद्यपि जाति या उपजातियां माल्दीवियन समाज में है, लेकिन अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन खूब दियां जाता है।। प्रेम विवाह प्रचलित हो रहे है। समाज का जाति, वर्ग पदक्रम सम्भवतः सामाजिक आवश्यकता को देखते हुए निर्मित किया गया प्रतीत होता है। इसलिए रे-बेरी जाति जो भंगी का कार्य करते हैं, लेकिन भारत जैसे छुआ-छूत नहीं है। 'बंधुआ मजदूरी' जैसी सामाजिक बुराई भी अभी वहां प्रचलित है, लेकिन अब इस प्रथा का चलन धीरे-धीरे बन्द हो रहा है।

मालदीव में लोग चूंकि भारत-श्रीलंका, पर्सिया, अरेबिया आदि से यहां आकर बस गये है। इसलिए यहां संस्कृति का मिश्रित प्रभाव है। जहां तब 'भाषा' का प्रश्न है मालदीव की अपनी भाषा 'दिवेही' है जो अरेबिक लिपि में लिखी जाती है, लेकिन इस भाषा में पाली, सिंघली, अरेबिक एवं पर्सियन शब्दों का प्रयोग एवं चलन खूब है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन भाषाई शब्दों से दिवेही भाषा काफी समृद्ध हो गई है। "इस्लाम धर्म एवं कुरान के सिद्धान्तों का चलन मालदीव में है। निषेधात्मक दुर्गुणों से वे सर्वथा दूर रहते हैं। इस्लामिक बंधनों के बावजूद महिलाएं सामाजिक एवं धार्मिक कार्यो में बराबरी की भागीदार होती हैं। वास्तविक आधार पर किसी को भी अभी तक मृत्युदण्ड नहीं दिया गया है।"[24]

मालद्वीव की अर्थव्यवस्था पूर्णतः अविकसित आदिम एवं पिछड़ी हुई है। मत्स्य उद्योग एंव पर्यटक उद्योग ही मुख्य रूप से व्यक्तियों की आय के साधन हैं। सीमित क्षेत्र में खेती होती है। मत्स्य शिकार का कुल अर्थव्यवस्था में 23% का योगदान है। इसके अलावा नारियल का खोपरा, नारियल जटा (रस्सी) तथा हस्तशिल्पों का निर्यात किया जाता है। "मालद्वीव की अर्थव्यवस्था की आय का 'पर्यटन' दूसरा बडा श्रोत है। जिससे 17% आय प्राप्त होती है।"[25] खेती केवल कुछ लोग ही करते हैं क्योंकि खेती लायक भौगोलिक परिस्थितियां एवं अनुकूल जलवायु का न होना है। अतः सरकार इसकी आपूर्ति नारियल तथा उष्णकटिबंधीय फलों की पैदावार को प्रोत्साहन देकर कर रही है। इसके अतिरिक्त आय के अन्य श्रोतों में पारम्परिक उद्योग जैसे-नाव निर्माण, रस्सी एवं जूट उत्पादन तथा जाल बुनाई एवं हस्तकला आदि प्रचलित है। मछली पकड़ने तथा सिले हुए कपड़ों का एक उद्योग के रूप में धन्धा धीरे-धीरे विकसित हो रहा है, लेकिन कच्चे माल की कमी तथा प्रतिभा सम्पन्न श्रमिकों के अभाव में इन उद्योगों के विकास की सम्भावनाएं क्षीण ही हैं।

इस प्रकार दक्षिण एशिया के सात देशों- (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका तथा मालद्वीव) की राजनीतिक, भौगोलिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्वरूप को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन देशों के क्षेत्रफल तथा जनसंख्या के अधिक होने के बावजूद तथा कुछ क्षेत्रों में कच्चे माल के पर्याप्त भण्डार के बाद भी यह क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से काफी पीछे है। कच्चे माल को निकालने के लिए आधुनिक तकनीक का अभाव, अशिक्षा, जनसंख्या वृद्धि तथा बुद्धिजीवी वर्ग का दूसरे

विकसित देशों की ओर पलायन, धार्मिक कट्टरपनता, सामाजिक रूप से (भेद-भाव) की स्थिति, आधुनिक प्रौद्योगिकी की कमी तथा बेरोजगारी आदि कई ऐसे कारण हैं जिससे हमारा क्षेत्र वैश्विक सन्दर्भ में अन्य क्षेत्रों से काफी पीछे है।

समस्त क्षेत्र जनसंख्या वृद्धि से पीड़ित है इसलिए उससे सम्बन्धित समस्याएं जैसे मानव शक्ति का समुचित सदुपयोग, बेरोजगारी की समस्या, जनसंख्या नियंत्रण, आतंकवाद भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका तस्करी, शरणार्थी समस्या और गरीबी की समस्या जिसके कारण समस्त क्षेत्र के अधिकांश लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं तथा जिन्हें प्राथमिक आवश्यकताएं (भोजन कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य) की पूर्ति भी नहीं हो पा रही है।

(ब) राज्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध

भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, तथा मालद्वीव के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक आधारों को ध्यान में रखते हुए करेगें जो एक हद तक सामान्यतः निराशाजनक ही कहा जा सकता हे। एक आम धारणा है कि उन्होनें स्वातंत्रयोत्तर काल में जो प्रगति की है न तो उन्हें किसी सुनिश्चित एवं उचित लक्ष्य की ओर ले जा रही है और न ही उन्नति की गति इतनी तीव्र है कि जिससे उन्हें आत्म संतोष का आभास हो सके। सामान्य रूप से यह भी असंतोष है कि जो वर्तमान व्यवस्था है, चाहे राजनीतिक हो, आर्थिक हो या फिर सामाजिक उन्हें आपस में एक दूसरे से अलग करती है। शासक वर्ग के व्यवहार ने एक खास प्रकार की शक्ल अर्जित कर ली, जिससे ऐसा लगता है कि मानों वह अपने ही समाज में खास प्रकार का विभाजन कर अपनी स्थिति विशेषाधिकृत रूप से निर्मित कर रहा है।

आर्थिक क्षेत्र में धीमी गति के कारण जो उत्साह, उमंग एवं तीव्र आंकाक्षाएं एवं अपेक्षाएं थी ने विस्फोटक स्थिति में पहुंच गई है। जिनके कारण धनी एवं गरीब, पूँजीपति वर्ग एवं मजदूर वर्ग की खाई अत्यधिक चौड़ी हो गई है जो निरन्तर चौड़ी होती जा रही है। एक खास प्रकार की असमानता इन देशों के नागरिकों में घर करती जा रही है जो न केवल आर्थिक ही है वरन् सामाजिक भी है। संभवतः इसका मूल कारण इन देशों की राजनीतिक व्यवस्था में दिनों दिन केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का तीव्रतर होते जाना है। बढ़ते हुए राजनीतिक संकट तथा घटती हुई आर्थिक स्थिति ने समाज की बहुलवादी प्रकृति को ही संकट में डाल दिया है जिससे बहुआयामी जातियोन्मुखी राजनीतिक समस्याओं को जन्म दिया है, जिसके कारण न केवल राष्ट्र निर्माण संकट में है वरन् क्षेत्रीय सम्बन्धों के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर भी प्रतिकूल असर पड़ रहा है।

"दक्षिण एशिया के समस्त देशों में चूंकि वे एक ही विरासत के अंग है में विशिष्ट प्रकार के सम्बन्ध होने चाहिए थे लेकिन यह एक आज दिवा-स्वप्न प्रतीत होता है।"[26] "संभवतः यह सामान्य विरासत एवं वंश परम्परा का ही परिणाम है कि इस प्रायद्वीप के लगभग सभी देश अपनी राष्ट्रीय पहचान के लिए संघर्षरत है। यही कारण है कि भारत के छोटे-छोटे पड़ोसी राज्यों ने भारत से एक मनोवैज्ञानिक दूरी कायम कर ली है।"[27] भारत अपने आकार, जनसंख्या एवं प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से सम्पन्न

होने के बावजूद क्षेत्रीय एकता के आधार पर समस्त देशों को बांधने में न तो सक्षम है और न ही सफल रहा है।"[28] यहां एक बात यह विचारणीय है कि यद्यपि भारत के समस्त पड़ोसी देशों में कुछ सामान्य विशेषताएं पायी जाती हैं तथापि उनके मध्य सम्बन्ध नगण्य है। इसलिए भारत के लिए विशेष रूप से जबकि वह क्षेत्र की केन्द्रीय शक्ति है, यह समस्या है कि वह अपने पड़ोसी देशों से सम्बन्ध कैसे स्थापित करे ? विशेष रूप से उन परिस्थितियों में जबकि भारत का कोई न कोई पड़ोसी देश अपना प्रतिरोध उसके साथ प्रदर्शित करता रहता है। जिसमें वह भारत को सन्देह एवं खतरे के रूप में देखता है।

पाकिस्तान की भारत से समानता की आकांक्षा, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका का अधिक से अधिक स्वायत्तता की वकालत करना तथा क्षेत्रीय शक्तियों की जान-बूझकर बाहरी शक्तियों के साथ ताल-मेल तथा भारत के साथ असहयोगी रूख को हवा देना आदि प्रश्न इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है जिनकी अनदेखी नहीं की जा सकती और वे किसी न किसी रूप में इस क्षेत्र में भारतीय प्रभुत्व को नकारते है तथा बाहरी शक्तियों के निहित हित इस दृष्टि से भारत विरोधी वातावरण बनाने में प्रयत्नशील है।यही कारण है कि यदि पाकिस्तान दक्षिण एशिया को अणुशक्ति विहीन का प्रस्ताव रखता तो नेपाल स्वयं के लिए शांति क्षेत्र की वकालत करता, बांग्लादेश गंगा के पानी की समस्या हेतु सैन्यीकरण की बात करता तो श्रीलंका हिन्द महासागर को अणुशक्तिविहीन क्षेत्र बनाने का प्रस्ताव रखता। इसी से 'सार्क' की भूमिका बजाय सहयोग के भारत के संभावित विकास को द्विपक्षीय आधार पर रोकने के रूप में प्रतिबिम्बत होती प्रतीत हो रही है।

अतः उक्त विश्लेषण को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि दक्षिण एशिया के समस्त देशों की उन समस्याओं पर प्रकाश डाला जाए जिनका वे सामना कर रहे हैं तथा संघर्ष कर रहे हैं और वे अनेको तरह से आपसी सम्बन्धों में खटास एवं तनाव पैदा कर रही है।

समस्यायें एवं तनाव तथा मैत्री की सम्भावनाएं

1. विजातीय समाज एवं राजनीतिक समस्या और तनाव :-

दक्षिण एशिया के लगभग सभी देशों को विजातीय या मनव जाति सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इसका सीधा कारण है कि इस क्षेत्र में विभिन्न जातियां, धर्म, अनेक भाषायें तथा भौगोलिक पहचान की विविधता अनेकों रूपों एवं स्वरुपों में व्याप्त है। इस प्रकार जातिगत, धार्मिक एवं

भौगोलिक एवं भाषाई मतभेद इस प्रकार की राजनीतिक समस्याओं को जन्म देते हैं। जातिगत स्वरूप में एक समूह द्वारा अपने वंश, भाषा एवं क्षेत्र को दूसरों से श्रेष्ठतर मानना एक खास प्रकार के मतभेद एवं घृणा को जन्म देता है जो तनाव में परिवर्तित होते-होते कभी-भी खूनी संघर्ष में तब्दील होकर नरसंहार पर उद्यत हो जाता है।

आज जातीय संघर्ष दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं चाहे भारत में काश्मीर एवं पंजाब में पाकिस्तानियों का प्रश्न हो या बाबरी मस्जिद विवाद, श्रीलंका में तमिलों, पाकिस्तान में सिंधी पंजाबी या मुहाजिरों की बात हो, नेपाल में भूटिया या भूटान में नेपालियों एवं हिन्दुस्तानियों का प्रश्न हो सभी इससे ग्रसित हैं। अतः संक्षिप्त में यहाँ इस प्रकार के वर्गीय, जातीय या धार्मिक समूह रहते हैं, विशेष रूप से सीमावर्ती क्षेत्रों मे वहां निम्न प्रकार की समस्यायें एवं तनाव उत्पन्न होते हैं जो राजनीतिक समस्या में परिणित होकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं।

<u>प्रथम</u>- जब कोई राष्ट्र जातिगत संघर्ष में उलझ जाता है और क्रमशः राजनीतिक संकट पैदा कर देता तो आमतौर पर इसका आरोप दूसरे देश पर लगा देता है। यह एक प्रकार की चाल-बाजी है, जैसे श्रीलंका तमिल समस्या के लिए भारत को उत्तरदायी मानता है।

<u>द्वितीय</u>- एक राज्य के शासक कभी-कभी अपने देशवासियों की राजनीतिक या सांस्कृतिक दृष्टि या अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए दूसरे राज्य में जातीय समस्या को उकसाते है, जैसे नेपालियों को समर्थन देकर सिक्किम का विलय भारत में होना आदि।

<u>तृतीय</u>- एक राज्य द्वारा अपने विरोधी पड़ोसी राज्य के प्रथकतावादी आन्दोलन को नैतिक या सामग्री संबंधी सहयोग एवं सहायता देना, जिससे पड़ोसी देश कमजोर होकर प्रतिद्वन्दी की स्थिति में न रहे। जैसे- भारत द्वारा पाकिस्तान के विभाजन में बांग्लादेश की सहायता करना या पाकिस्तान द्वारा काश्मीर एवं पंजाब में प्रथकतावादियों (उग्रवादियों) को नैतिक एवं सैन्य सामग्री उपलब्ध कराकर उकसाना।

उपरोक्त कारण दक्षिण एशिया में पूर्णतः पाये जाते है। "यही कारण है कि जाति आधारित राजनीतिक समस्याओं का स्वरूप इस क्षेत्र में बड़ा ही जटिल है जिनकी वजह से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।"[29] इस क्षेत्र के समस्त देशों की सीमाएं भारत के साथ जुड़ती है जिसके कारण जातीय आधारित राजनीतिक समस्याएं द्विपक्षीय बहुपक्षीय के साथ-साथ बहु आयामी हो गयी है।

यद्यपि बांग्लादेश पाकिस्तान से 35 साल पहले अलग हो गया, लेकिन बिहारी अभी भी बांग्लादेश में तथा मुहाजिर पाकिस्तान में रह रहे है, जिनसे असंतोष बढ़ रहा है। यही स्थिति नेपाल, भूटान के संदर्भ में भी है। वस्तुतः जातीय संघर्ष में कई तत्व प्रभावी भूमिका निभाते हैं जिनके कारण समस्याएं जटिलतम हो जाती है। कुछ प्रमुख तत्व निम्न प्रकार है-

(अ) भाषाई तत्व :-

पाकिस्तान के सिंध प्रान्त के सिंधी भारत के बम्बई में रह रहे सिंधियों के साथ उनका जातीय आधार पर काफी तनाव है। पंजाब में रह रहे सभी मुसलमान पाकिस्तान का प्रमुखतम आधार स्तम्भ है। भारतीय पंजाब में कुल जनसंख्या का 52% सिक्ख तथा 48% हिन्दू है, लेकिन उनकी पंजाबी साझा भाषा है। इसलिए उनमें अपनत्व की भावना आपस में पाई जाती है तथा इस आधार पर उनमें आपसी सम्बन्ध विकसित होते है। भाषाई आधार पर स्थानीय भाषा पंजाबी बोलने की क्षमता के कारण पंजाब के सिक्ख पाक अधिकृत कश्मीर में घुसपैठ कर खालिस्तान आन्दोलन चला रहे हैं। अधिकांश उग्रवादियों ने पाक अधिकृत कश्मीर में शरण भी ले रखी है। सन् 1971 में भारतीय सेना भारतीय-बंगाली भाषाविदों के कारण पाकिस्तान के विरूद्ध भारत ने पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) का साथ दिया था। भाषा के आधार पर बृहत्तर तमिल ईलम की बात की जा रही है। अतः भाषाई भूमिका जातीय राजनीतिक समस्या के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(ब) बहुसंख्यात्मक तत्व :-

दक्षिण एशिया के सभी देशों के साथ भारत भौगोलिक एवं सांस्कृतिक रूपों से जुड़ा हुआ है। भारत एवं पाकिस्तान के हिन्दू-मुसलमान आन्दोलन को खत्म हुए काफी समय हो गया लेकिन इनके जख्म अभी भी भरे नहीं है। किसी भी प्रकार का जातीय आधार पर राजनीतिक असंतोष आदि पाकिस्तान में होता है तो भारत के कान खड़े होते हैं तथा वह अपनी चिंता जताता है, जबकि अयोध्या जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद पाकिस्तान का ध्यान आकर्षित करता है तथा सहानुभूति अर्जित करता है। भारत की नेपाल के साथ दो समस्याएं है- तराई प्रदेश दक्षिण (नेपाल) में हिन्दी बोलने वाले लोगों का आन्दोलन बिहार तथा उत्तर प्रदेश में अपना प्रभाव दिखाते हैं। भूटान के (भूटिया तथा लेपचाज) जातीय विभाजन नेपालियों के साथ भिन्नता रखते तथा अनावश्यक तनाव पैदा कर रहे हैं। ऐसा भूटान का मानना है कि

नेपाली भूटान की अपेक्षा भारत से ज्यादा करीब है, उसी प्रकार भूटान स्थिति बंगाली, आसामी तथा मारवाड़ी अल्पसंख्यकों को शंका की दृष्टि से देखा जाता है।

''भारत में जातीय आधार के राजनीतिक मतभेद बांग्लादेश के साथ 1950-1960 के दशक में अपने चरमोत्कर्ष पर थे।''[30] जो बांग्लादेश के अस्तित्व में आने के बाद भी जारी रहे। बांग्लादेश से लाखों लोग भारत आ गये जबकि भारत से बंगालियों को वापस भेजने की मांग भी की जा रही है। यद्यपि तनाव को कम करने सम्बन्धी एक करार पर हस्ताक्षर भी किये जा चुके हैं तब भी स्थिति ठीक नहीं है।

भारत श्रीलंका के साथ 1983 से इसी प्रकार के संघर्षो का शिकार है। सिंघली तथा तमिलों का आपसी तनाव श्रीलंका में गृहयुद्ध जैसी स्थिति अख्तियार कर चुका है। भारतीय मूल के तमिल मछुवारे जाफना (श्रीलंका) प्रान्त तक आसानी से पहुंच जाते हैं। श्रीलंका के तमिल भारत स्थित तमिलनाडु के तमिलों के साथ गहरे सांस्कृतिक एवं परम्परागत लगाव रखते है तथा इन्हें तमिल राज्य के (ईलम) अस्तित्व हेतु भारत से सहायता भी मिली है तथा श्रीलंका भारत को इसके लिए उत्तरदायी मानता है। श्रीलंका के तमिल उग्रवादियों ने तमिलनाडु (भारत) में प्रशिक्षण तथा अन्य सैनिक सहायता प्राप्त की। तमिल उग्रवादियों की यद्यपि भारत से बांग्लादेश जैसी मदद की अपेक्षा करता है। लेकिन भारत-श्रीलंका विभाजन का विरोधी है तथा स्व० राजीव गांधी ने श्रीलंका सरकार को उसकी प्रभुसत्ता एवं अखण्डता की अक्षण्णुता बनाये रखने की प्रतिबद्धता के प्रति वचनबद्धता की बात भी बार-बार दोहराई, जिसके कारण तमिल उग्रवादी नाराज हो गए तथा उन्होनें राजीव गांधी की पिछले साल जून, 1991 में हत्या कर दी। संक्षेप में सभी देश पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, श्रीलंका तथा बांग्लादेश इस प्रकार की विजातीय समस्या से ग्रसित हैं जिनसे राजनीतिक उलझने बढ़ती है तथा वे नये संदर्भो में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में कटुता पैदा करती है।

(स) घरेलू तत्व :-

विश्व के अन्य देशों की तरह दक्षिण एशिया के देशों में भी घरेलू जातीय राजनीतिक संकट एवं मुसीबतें अक्सर पैदा होती है। जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तनाव पैदा करती है। भारत-विभाजन की शल्यक्रिया जो 1947 में जातीय आधार पर की थी जिसके परिणाम स्वरूप पाकिस्तान का जन्म हुआ था,

का परिणाम हम पाकिस्तान के लिए 1948, 1965, 1971 तथा 1999 (कारगिल) के युद्धों में भुगत चुके हैं तथा आतंकवादी गतिविधियों को पाक-प्रोत्साहन के रूप में आज पंजाब तथा कश्मीर में भुगत रहे है। उसी प्रकार पाकिस्तान को पंजाबी, बंगाली, मुसलमानों की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक असमानता ने अपने पूर्वी भाग (पूर्वी पाकिस्तान) से हाथ धोना पड़ा। "श्रीलंका में तमिल तथा सिंघली संघर्ष में श्री राजीव गांधी के जीवन को खोना पड़ा। वस्तुतः इस प्रकार के घरेलू झगड़ों में भाषा, संस्कृति तथा धर्म एवं क्षेत्रीय तत्वों का ताना-बाना इस प्रकार बुन जाये कि अपृथकनीय हो जाते जिनका आगे चलकर समूह ध्रुवीकरण हो जाता है।"[31] उदाहरणार्थ पाकिस्तान में पंजाबी, बांग्लादेश में बंगाली मुस्लिम, श्रीलंका में सिंघली, नेपाल में नेपाली तथा मालद्वीव में मुस्लिम समूह अपना वर्चस्व कायम करने की स्थिति में हैं जबकि अल्पसंख्यक भयाक्रान्त रहते है।

भारत में विभिन्न वर्ग क्षेत्रीय आधार पर पृथक-पृथक प्रभुसत्ता स्थापित किये हुए हैं। इनमें भी जाति, उपजाति, वर्ग-उपवर्ग तथा क्षेत्रीय एवं उपक्षेत्रीय समूह हैं। इस प्रकार की पृथकता खूनी संघर्ष को जन्म देती है जिसके लिए प्रत्येक देश अपनी स्थिति अनियंत्रित होने पर अपने पड़ोसी पर आरोप प्रत्यारोप लगाता है, जिनसे तनाव पैदा होते है। यही स्थिति मालद्वीव में हैं जहाँ जातीय, धर्म तथा भाषा समूह उभरकर तनावों को जन्म दे रहे हैं वहाँ 'अदुआन्स' नागरिकों को आर्थिक सुविधाओं से वंचित किया जा रहा है जिसका परिणाम उत्तर एवं दक्षिण मालद्वीव दो भागों में विभाजित दिखाई प्रतीत होता है।

क्षेत्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव

1. सामाजिक समस्याएं एवं तनाव :-

उपर्युक्त आधार पर स्पष्ट है कि जाति, वर्ग, धर्म, भाषा तथा क्षेत्रीय आधार पर बहुआयामी वर्ग-समूह दक्षिण एशिया के प्रायः समस्त देशों में विद्यमान है तथा अपनी प्रकृति एवं प्रवृत्ति के अनुसार क्षेत्रीय सम्बन्धों पर प्रतिकूल एवं निर्णायक असर डालते हैं। "दक्षिण एशिया के समस्त देशों की घरेलू राजनीति की यह एक विशिष्टता है। यह विशिष्टता कभी-कभी सम्बद्ध देश की राज्य संरचना के लिए एक ओर घातक बनती तो दूसरी ओर निश्चय ही राष्ट्रीय एकीकरण में ऑक्सीजन का काम करती होती प्रतीत होती है।"[32] बांग्लादेश तथा मालद्वीव को तुलनात्मक दृष्टि से यदि विश्लेषण करें तो पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, भारत एवं भूटान सभी इस समस्या से पीड़ित हैं। पाकिस्तान पूर्वी भाग के अलग होने

के बावजूद आज तक वह अपने यहाँ ऐसी राजनीतिक व्यवस्था विकसित नहीं कर सका जिससे यह कहा जा सके कि यहां अब अल्पसंख्यक वर्ग को समान अधिकार, अवसर या अन्य समान साधन नैतिक एवं कानूनी रूप से उपलब्ध है। इस विघटन के लिए भारत को पाकिस्तान आज तक दोषी मानता है।

तमिल/सिंघली संघर्ष जिसमें स्व0 राजीव गांधी की हत्या तमिल चीतों ने की, के लिए श्रीलंका का इशारा भारत की ओर है। यद्यपि भारत बार-बार कह चुका है कि वह श्रीलंका की राष्ट्रीय अखण्डता एवं प्रभुसत्ता का सम्मान करता है तथा वह श्रीलंका के विघटन के पक्ष में नहीं है तथापि श्रीलंका की घृणास्पद एवं शंकास्पद रवैये में कोई खास परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता। "नेपाल अपनी राष्ट्रीय एकता में भारत की सीमा से लगा हिन्दी भाषी तराई क्षेत्र को बाधक मानता जिसके लिए उस पर सन्देह है।"[33] यद्यपि इस सन्देह का मूल कारण राजनीतिक है। वस्तुतः नेपाल में राजनीतिक विभाजन सम्राट समर्थक राष्ट्रीय पंचायत व्यवस्था (दल विहीन) तथा नेपाली कांग्रेस के बीच है जिसका समर्थन तराई क्षेत्र करता है। जो भारतीय दलीय व्यवस्था के आधार पर संसदीय प्रजातंत्र चाहते है। नेपाल इस शंका के लिए भारत में सिक्किम के विलय (1975) का उदाहरण देता है, जबकि भारत के दिमाग में ऐसा कुछ भी नहीं है।

भारत की एकता के लिए साम्प्रदायिक कट्टरता तथा विभाजक ताकतों से खतरा है, जिसमें वह पाक सहित चीन का हाथ होने का सन्देह व्यक्त करता है। "पंजाब, कश्मीर, आसाम एवं तमिल समस्याओं में विदेशी हस्तक्षेप एवं सहयोग से पोषित हैं। हालांकि इन्हें जनहित एवं राष्ट्रीय हित में सार्वजनिक नहीं किया जा सकता है।"[34] फलस्वरूप भारत के पड़ोसियों के साथ जो सम्बन्धों की प्रगाढ़ता होनी चाहिए, उसका अभाव दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि सीमावर्ती इलाकों में हमेशा तोड़-फोड़ तथा बन्दूकें आग उगलती रहती हैं।

2. आर्थिक समस्याएं तथा तनाव :-

अन्य विकासशील देशों की तरह दक्षिण एशियाई देशों में घरेलू झगड़ों एवं समस्याओं का कारण उपयुक्त आर्थिक विकास का अभाव है जिसके कारण आगे चलकर सामाजिक न्याय से नागरिक वंचित हो जाते हैं, परिणाम पारस्परिक मतभेद एवं मतभेदों का जन्म जो न केवल घरेलू विकास प्रक्रिया को अवरूद्ध करते वरन् आस-पड़ोस के देशों के सबंधों पर गहरा असर डालते है। अतः यदि आर्थिक विकास

की दर की प्रगति का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि दक्षिण एशिया के लगभग समस्त देशों की पचास के दशक में सामान्यतः विकास दर काफी कम थी विशेषरूप से पाकिस्तान तथा श्रीलंका की यह विकास दर की स्थिति 1970 में काफी कम हो गई। वैसे तो सारे विकासशील राष्ट्रो में असमानता की खाई चौड़ी होती जा रही है, विशेषकर दक्षिण एशिया के सभी सातों देशों में असमानता और ज्यादा व्याप्त है। आय की वृद्धि उत्पादन के विभिन्न साधनों पर निर्भर करती है जिनका असमान वितरण आय वृद्धि तथा आर्थिक समानता में बाधक है। उदाहरणार्थ भूमि, उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण साधन है जिसका वितरण नितांत असंतुलित है। जहां तक गरीबी की रेखा का प्रश्न है भारत में अभी भी 26% लोग गरीबी की रेखा से नीचे का जीवन यापन कर रहे है। पाक में यह दर भारत तथा बांग्लादेश से भी अधिक है।

गरीबी के कारण एक ओर जहां कुपोषण गंदगी तथा औसत उम्र कम हो जाती है वहीं दूसरी ओर बेरोजगारी को जन्म देती है जिससे आर्थिक विकास में अन्तर आता है। ''भारत में सन् 1977-78 के दौरान शिक्षा प्रसार के बाजवूद 46.33 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे थे जिनकी 1981 में औसत उम्र 53 थी। इसका सीधा आशय है कि जो वर्तमान सदी में पैदा हुए तथा आज जिंदा है वे सभी और गरीब हो गए है।''[35] भारत विभाजन से पूर्व मुसलमान भाई भारत में हिन्दुओं की अपेक्षा काफी गरीब थे।

1947 के बाद चूंकि बहुत ज्यादा मुस्लिम समुदाय का स्थानान्तरण न होने से वे गरीब ही बने रहे। पाकिस्तान बनने से उनकी माली हालत में कोई सुधार नहीं हुआ हॉ प्रबुद्ध वर्ग को जरूर विभाजन का फायदा हुआ। इसलिए पाकिस्तान में भी मुसलमान और गरीब होते गए। ऐसे लगता है कि पाकिस्तान में उद्योगपतियों, नौकरशाहों तथा जमीदारों की कोई 'त्रिधुरी' के अधीन उनका उत्तरोत्तर शोषण हो रहा है। समूचे उद्योग जगत का मानो निजी व्यापारीकरण कर दिया गया हो, जिसमें लाभ एकमात्र उनका लक्ष्य रहता है। यह इसलिए प्रमाणित होता है कि पाकिस्तान में स्वातन्त्र्योत्तर काल में लगभग 43 बड़े उद्योगों प्रतिष्ठानों को निजी कम्पनियों में परिवर्तित कर दिये गये तथा शेष 19 को निजी प्रबन्ध के अधीन कर दिया गया।

पाकिस्तान अपनी पूंजीगत संसाधनों की कमी को वह विदेशी सहायता अनुदान से आपूर्ति करता तथा सहायता के साथ उसकी आर्थिक नीति भी पूंजीपतियों एवं उद्योगपतियों के अनुकूल हो जाती

परिणाम आय वितरण असमान ही बना रहता वरन इसमें इजाफा ही होता रहता तथा पूंजी कुछ ही हाथों में सिमट कर रह जाती जिसका सीधा असर विदेशी नीति पर पड़ता है। पाकिस्तान आज विदेशी सहायता (अमेरिका) पर निर्भर है तथा पाक की आर्थिक स्थिति पूर्णतः विनाश के कगार पर पहुंच गयी है। यही कारण है कि पाकिस्तान अभी तक राष्ट्रीय पहचान बनाने में असमर्थ रहा है। पाकिस्तान में इसी आर्थिक असमानता के कारण बलूची, पठान, सिंधी एवं पंजाबी निरन्तर एक दूसरे से कटते चले जा रहे हैं और कोई ताज्जुब नहीं यदि यही नीति कायम रही तो एक और पाकिस्तान को विभाजन सहना पड़े।

श्रीलंका की अर्थव्यवस्था का भी निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। स्वतन्त्रता के पहले श्रीलंका व्यापारोन्मुखी था तथा मध्यमवर्गीय व्यापारियों को प्रोत्साहन देता था। सिंघलियों की अपेक्षा तमिलों को अंग्रेजों द्वारा काफी प्रोत्साहन दिया जाता था जिससे उनकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी हो गई, लेकिन 1948 के बाद इस नीति में एकदम बदलाव आ गया। अब बहुसंख्यक वर्ग जिसका राजनीतिक वर्चस्व था को लाभ देने की गरज से संसाधनों का दुरुपयोग होने लगा तथा अल्पसंख्यक (तमिल) वर्ग की अनदेखी की जाने लगी जिससे आर्थिक जटिलताओं ने जन्म लिया। 1977 के बाद अर्थव्यवस्था चरमरा सी गई अतः अब 'स्वतन्त्र बाजार विकास निर्यात' पर जोर दिया जाने लगा। व्यापार वृद्धि, विदेशी पूंजी निवेश, प्रोत्साहन एवं विदेशी सहायता की निर्भरता पर जोर दिया गया। मुद्रा अवमूल्यन, उदार आयात, मूल्य नियत्रंण आदि कदम भी उठाये गये। इन सबके बावजूद अर्थव्यवस्था पर कोई खास सुधार नहीं नजर आता है।

आर्थिक पतन के कारण कई प्रकार की समस्याओं ने सिर उठाना प्रारम्भ कर दिया जिसके कारण दक्षिण में तनाव ने जन्म लिया, क्योंकि उनका सामाजिक एवं आर्थिक सम्बन्धों पर असर पड़ता है। श्रीलंका, चाय, रबर तथा नारियल निर्यात करता हैं लेकिन आश्चर्य तब होता है जब अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कीमत बढ़ने के साथ चाय का निर्यात बहुत ही कम था। रबड़ का उत्पादन कम होता जा रहा है, दूसरी ओर खाद्य जिन्स, कपड़ा आदि के आयात में दिनों दिन वृद्धि होती जा रही है जो आयात निर्यात संतुलन में गड़बड़ कर रही है। कम ज्यादा यही स्थिति नेपाल, भूटान बांग्लादेश तथा मालद्वीव की भी है।

"सम्पूर्ण क्षेत्र गरीबी, सतत सामग्री का अभाव, प्रतिकूल व्यापारिक परिस्थितियां, नैसर्गिक संसाधनों का उचित दोहन न हो पाना तथा कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों में उत्पादन की कमी आदि के कारण

प्रति व्यक्ति औसत आय दर एवं विकास दर में कमी आदि आर्थिक समस्याओं से ग्रसित है।''[36] इसके अलावा बहुराष्ट्रीय निगमों की संदिग्ध हरकतें एवं अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में निरन्तर कमी आदि आर्थिक जटिलताओं में वृद्धि ही करती प्रतीत होती है। इसके अलावा चाय, जूट, कपास, चावल आदि प्रमुख फसलों हेतु साझा बाजार का न होना तथा क्षेत्रीय आधार पर व्यापारिक क्रय-विक्रय में परस्पर सहभागिता न होना भी आर्थिक समस्याएं खड़ी करना है। उस पर भी पाकिस्तान का इस्लामिक देशों से आर्थिक प्रगाढ़ता नेपाल तथा चीन से प्रति आकर्षित होना तथा श्रीलंका का अमेरिका सहित पश्चिम तथा 'आसियान' देशों के साथ आर्थिक सम्बन्ध जोड़ना परस्पर क्षेत्रीय मतभेद एवं तनाव को पैदा करने वाली गतिविधियां है।

''इस संदर्भ में एक और समस्या खास उत्पादन क्षेत्रों में दक्षिण एशियाई देशों के मध्य प्रतिद्वन्दिता का होना, जैसे-चाय (श्रीलंका-भारत) जूट (भारत-बांग्लादेश) सूती कपड़े (भारत-पाकिस्तान) कीमती पत्थर (भारत-श्रीलंका) और चावल (भारत-पाकिस्तान) नारियल, (श्रीलंका-मालद्वीव) इससे आर्थिक हितों की सुरक्षा सम्बन्धी द्वेष बढ़ता है तथा एक देश दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह से ओत-प्रोत हो जाता है तथा संबधित देश की जिन्सो में आयाती सीमाएं लागू कर देता है।''[37] भूटान, नेपाल एवं मालद्वीव कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों में उत्पादकता के अभाव के कारण आर्थिक स्थिति अत्यन्त कमजोर है।

तैयार माल तथा कच्ची सामग्री दक्षिण एशियाई देशों में उतनी उच्च कोटि की नहीं कि वह उपभोक्ताओं को विश्व बाजार में अपनी ओर आकर्षितत कर सके क्योंकि तकनीकी आधारों की इन देशों में कमी है। ''बहुराष्ट्रीय निगमों ने इन समस्याओं को और बढ़ा दिया क्योंकि उनकी एक नियोजित निश्चित नीति है कि वे विकासशील देशों के उत्पादन को हमेशा हतोत्साहित करते हैं जिससे उन्हें आर्थिक क्षेत्र में एकाधिकार की समस्या न हो।''[38] इस प्रकार वे उस क्षेत्र के देशों की कीमत पर एक बाजार विकसित करते है।

''उक्त आर्थिक विवशता एवं पिछड़ेपन का प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर पड़ता है। इस क्षेत्र के समस्त देश, विदेशी ऋणभार, तकनीकी विशेषज्ञता, साझा-बाजार, आयात-निर्यात में असंतुलन के कारण पश्चिमोन्मुखी आर्थिक नीति अपनाने को विवश है तथा इस दृष्टि से इस क्षेत्र में हम क्षेत्र से बाहर की शक्तियों को हस्तक्षेप का अवसर प्रदान करते है तथा अपने हितों को दृष्टिगत रखते हुए प्रायद्वीप

के झगड़ों एवं तनाव में निर्णायक भूमिक निभाते है। इस प्रकार से इस क्षेत्र की समस्याओं में कर्ता-धर्ता तथा प्रबन्धक दोनों बन जाते है तथा आगे चलकर राजनीतिक हस्तक्षेप करने की स्थिति में हो जाते हैं।''[39]

द्विपक्षीय विवादास्पद समस्याएं एवं तनाव :-

दक्षिण एशिया के समस्त देश एक दूसरे के साथ द्विपक्षीय आधार पर किसी न किसी रूप में उलझे हुए हैं, जिससे शांति स्थापना में बाधा के साथ-साथ तनाव बढ़ता है। इन समस्याओं में सबसे प्रमुख है-भारत पाकिस्तान के बीच द्विपक्षीय सम्बन्धों की समस्या। ''ये दोनों देशों की ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विरासत एक जैसी है, लेकिन दोनों देशों के मध्य 'कश्मीर विवाद' को लेकर परस्पर सन्देह का वातावरण बना हुआ है इसी विवाद के कारण 1948 एवं 1965 से परस्पर युद्ध तथा 1971 के बांग्लादेश के कारण दोनों युद्धरत रह चुके है। यही कारण कि पाकिस्तान सैनिक संदर्भो में अमेरिका एवं चीन की ओर देखता है जबकि भारत इसका विरोध करता है।''[40] ''इसके अलावा पाकिस्तान सिन्ध में उथल-पुथल तथा एम०आर०डी० को समर्थन के लिए दोषी मानता तो भारत पाकिस्तान को अयोध्या बाबरी मस्जिद विवाद, कश्मीर एवं पंजाब में आतंकवादियों को सैनिक सामग्री एवं सैनिक प्रशिक्षण के लिए दोषी मानता है।''[41]

''भारत एवं श्रीलंका के बीच भी राजनीतिक तनाव तमिल एवं सिंघली प्रतिद्वन्द्विता को लेकर उत्पन्न हो गया है।''[42] यह तनाव इतना बढ़ा कि 20 दिसम्बर, 1988 को पाकिस्तान में आयोजित विदेश मन्त्रियों की सार्क की मीटिंग में श्रीलंका ने भाग नहीं लिया, हांलाकि भारत ने बार-बार स्पष्ट किया कि भारत किसी भी कीमत पर श्रीलंका का विभाजन नहीं चाहता न ही तमिल आतंकवादियों को मान्यता प्रदान करता है। भारत द्वारा बांग्लादेश की सीमा पर अपने क्षेत्र में तार फेसिंग लगा देने पर वह अपना विरोध प्रकट कर चुका है। भारत ने भी बांग्लादेश द्वारा बंगाल की खाड़ी में अमरीकी कम्पनियों को खोजी सुविधा देने का विरोध किया है क्योंकि भारत इस क्षेत्र को अपने क्षेत्राधिकार में मानता है।

''अभी हाल में ही बांग्लादेश की चीन के साथ सैनिक गठबंधन से भी भारत चिंतित है।''[43] द्विपक्षीय आधार पर यद्यपि भारत-नेपाल सम्बन्धों में कोई सीधा विवाद नहीं है लेकिन नेपाल द्वारा स्वयं को शांति क्षेत्र घोषित करने के प्रस्ताव को भारत द्वारा नकार दिये जाने के कारण दोनों देशों के मध्य

सन्देह का वातावरण पैदा हो गया है। भारत का तर्क इस संदर्भ में है कि नेपाल भारत संधि 1950 के होते हुए इस प्रकार के प्रस्ताव की कोई आवश्यकता नहीं। दूसरा, नेपाल के शांति क्षेत्र के प्रस्ताव को मानने का अर्थ भारत-नेपाल सीमा को बंद करना होगा जो दोनों देशों के हितों के विपरीत होगा।

मैत्री संभावनाएं एवं समाधान :-

दक्षिण एशिया के देशों पर इन समस्याओं ने बहुआयामी प्रभाव डाला है जिसके कारण क्षेत्रीय देशों में परस्पर तनाव, द्वेषपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा द्विपक्षीय मतभेदों तथा संकुचित स्वार्थो के प्रति प्रतिबद्धता आदि को जन्म दिया है तथा इन सभी निर्णायक तत्वों का अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों पर राजनीतिक, आर्थिक तथा विजातीय प्रभाव डाला है। अतः इस दृष्टि से हमें समस्याओं की जड़ में जाकर किसी समाधान की तरफ अग्रसर होना चाहिए तथा ऐसे तमाम उपाय या समाधान हो सकते हैं जिनके कारण अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में पुनः तेजी लाकर उन्हें बहाल किया जा सकता है। इसके लिए संभवतः सामूहिक प्रयास सहमति के आधार पर किये जा सकते है।

दक्षिण एशिया की समस्याओं के समाधान हेतु सबसे पहले परस्पर विश्वास का वातावरण बनाया जाना चाहिए। जब तक प्रत्येक का प्रत्येक को आपसी सौहार्द एवं विश्वास अर्जित नहीं हो जाता तथा उसका किसी भी तरह लोगों के दिल जीतने के लिए व्यावहारिक प्रदर्शन नहीं किया जाता, किसी चमत्कार की आशा नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से दक्षिण एशिया में सार्क का जन्म 1980 के दशक में सबसे अधिक सकारात्मक कदम है। दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) को संस्थागत रूप 1985 में दिया गया। इस प्रकार इस क्षेत्र में स्थायी रूप से विकासशील संस्था का जन्म सात देशों के प्रतिनिधियों द्वारा ढाका में हुआ तथा यह निश्चय किया गया कि सार्क सम्मेलन प्रतिवर्ष सम्बन्धित देशों की राजधानियों में बारी-बारी से होगा तथा विदेश मंत्री कम से कम दो बार सार्क मंच पर एकत्रित होंगे, जिसका परिणाम भी सकारात्मक निकला। अब द्विपक्षीय वार्ताओं का दौर विकसित होता प्रतीत होता है तथा सभी देश इस दिशा में सहयोग करने लगे है।

भारत की अपने पड़ोसी देशों के साथ कितनी ही राजनीतिक, विजातीय, आर्थिक समस्याएं हो तथा वे कितनी भी गंभीर क्यों न हों, यह बात बड़ी स्पष्ट है कि भारत के साथ इन समस्याओं के समाधान को लेकर कोई भी इस क्षेत्र का देश युद्ध नहीं करेगा। भारत सैनिक दृष्टि से विश्व का चौथा

शक्तिशाली राष्ट्र है तथा इस तथ्य की अनदेखी कोई भी देश नहीं कर सकता। ''भारत नहीं चाहता कि उसके छोटे-छोटे पड़ोसी देश शस्त्र दौड़ में शामिल हो या सैनिक सहयोग की अपेक्षा किसी बाहरी शक्ति से करें विशेष रूप से अमरीका तथा ब्रिटेन से भारत की अनदेखी करके यदि शस्त्र आपूर्ति में इस क्षेत्र के देश सैनिक मदद लेते तो यह अमैत्री कार्य माना जायेगा। ऐसा भारत एकाधिकार स्पष्ट भी कर चुका है।''[44] भारत के इस दृष्टिकोण का समर्थन आंशिक रूप से अमेरिका ने श्रीलंका, बांग्लादेश तथा नेपाल द्वारा शस्त्र आपूर्ति की प्रार्थना को नकारते हुए किया जो इस तथ्य की पुष्टि करता है कि अमेरिका भारत को दक्षिण एशिया में 'केन्द्रीय शक्ति' मानता है।

दक्षिण एशिया में भारत को अपनी स्थिति मजबूत करनी है तथा अन्य देशों का विश्वास अर्जित करना है तो उसे अपनी नेतागिरी के व्यवहार में परिवर्तन करना चाहिए। स्व० श्रीमती इन्दिरा गांधी की तरह सत्ता राजनीति के खेल से उसे बचाना होगा। उसे नेतागिरी के बजाय सहयोगात्मक तथा सकारात्मक व्यवहार करना होगा। यदि भारत छोटे राज्यों की घरेलू समस्याओं की पेचीदगियों को सहानुभूति पूर्वक समझने की कोशिया करे तो निश्चय ही काफी हद तक द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय समस्याओं के हल के साथ वह इस क्षेत्र में तनावों को भी कम कर सकेगा तथा भारत सहित अन्य पड़ोसी देशों में परस्पर विश्वास, आस्था एवं समझ विकसित होगी।

यदि भारत के चीन सहित अमेरिका के साथ सम्बन्धों के विकास का सिलसिला स्थायी रूप से विकसित होता है जो भारत के संबंध दक्षिण एशिया के सभी देशों के साथ भी उत्तरोत्तर विकसित होंगे, यहां तक कि पाकिस्तान से भी सम्बन्ध सामान्य होने में मदद मिलेगी। इस परिप्रेक्ष्य में भारत के सकारात्मक रूख को उसके पड़ोसी देशों द्वारा समर्थन किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बी०एल० फडिया : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 1994, पृ०-443।
2. बी०एल० फडिया : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2001, पृ०-495।
3. हरिमोहन सक्सेना : राजनीतिक भूगोल, मेरठ प्रकाशन, 1991, पृ०- 325।
4. Vasant Sathe : Toward Social Revolution, Page-39-40 Quoted from the Discovery of India by J.L. Nehru, Page-52
5. A.T. Embree : Indian Civilization and two Regional Cultures in Paulwallace (ed) region and nations in India, Page-43
6. India : A reference annual 1959, A Govt. Publication, New Delhi, 1960, Page- 45
7. J.C. Jauhri : Elements of Political Geography, New Delhi, 1991, Page-212
8. Craig baxter : The heritage of Pakistan, in Baxter Malik, Kennedy and Oberai : The Govt and Politics in South Asia, Page-164
9. हरिमोहन सक्सेना : राजनीतिक भूगोल, मेरठ प्रकाशन, 1991, पृ० - 372।
10. The Constitutional of the Peoples republic of Bangladesh, Ministry of Law and parliamentary affairs govt. of bangladesh, Dhacca, Page-152
11. The Statistical year book of Bangladesh, Dhacca, 1982, P-91
12 Damodar. P. Singhal : Pakistan new Jersey Printice hall, 1972, Page-9
13. कृष्णनाथ सिंह, जगदीश सिंह एण्ड प्रसाद रावः एशिया का प्रादेशिक स्वरूप, वेस्टर्न प्रिन्टर्स, इलाहाबाद, 1984-85, पृ०-210।
14. बी०एल० फडिया : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 1994, पृ०-444।
15. W. Howard Wriggins : Cylon- Dillmmas of a New Nation, Young Asia, Pub, New Delhi, 1980, Page-13
16. Snodgrass. Donald R. Ceylone : An expert economy in transition, Quoted J.C. Joharies

govt. and politics of South Aisa, 1991, Page-341.

17. The International labour office matching employment oppurtunities. Expectations, Dudly Seers Report, 1971, Page-3 U.N. Documents, I.C. Newyork.

18. Nepal World Penorma : Monorma year book, 1991, Page-236

19. Lok Raj baral : The Politics of balance of Inter dependence: Nepal and SAARC, Sterling publication, New Delhi, 1988, Page-59

20. J.C. Jauhri: Government and politics of South Asia. Sterling Publication New Delhi. 1991, Page-570

21. J.L. Mewafarosh : Bhutan- A Political Constitutional and administrative analysis from 1947 to Present A Ph.D. Thesis 1980, Page-37

22. Free press journal bombay. 14 June, 1947

23. Urmila Phadnis and ILa dutta : Luithui- Maldives winds of change in an- State, South Asian Publication, New Delhi, 1985, Page-10.

24. H.A. Maniku : The Maldiv island- A profile. 1977, Page-2, See also. Urmilaphadnis, op. cit, 1985, P-4

25. J.P. anand : Focus on maldives century. Vol. 12, No.40 February, 8, 1975, Page-45

26. Nancy Jetley : "India and domestic turmoil in South Asia", In "Domestic conflicts in South Asia" (ed.) South Asian Publishers, New Delhi, 1986, Page-66

27. P.V. Narsimha rao : The Then foreign Minister, New Prime minister of India in. "Domestic conflicts in South Asia." New Delhi, 1986- Page- 81.

28. Sisir gupta : "The power structure in south Asia"- Problems of Stability Round table. London, Apr, 1977

29. Bhawani sen gupta : "South Asian Perspectives" D.K. Fine arts press. New Delhi. 1988, Page-2

30. B.J. Dev and D.K. Lahiri : " Assam muslims : Political cohesion", Mittal Publishers.

Delhi, 1983- Page-8

31. Thomas Sowell : "The Economic and Politics of race-in international Perspective" New york Ouill. 1983, Chapter-9

32. A Tayyeb " Pakistan- Political geography. oxford university press, Landon, 1966, P-179

33. Federick H. gaige: "Regionalism and National Unity in Nepal," Burkely University, California. 1975, Page-58

34. White paper : " White paper on Punjab" Govt of India, New Delhi, July 10, 1984 P-54-58

35. S.P. Verma : "The Crisis in South Asia- An over view- "Domestic- Conflicts in south Asia" (Etd) By B.S. Gupta, vol. I. 1986, P-10

36. Indiranath Mukharjee: Attitudes and Receptions in South Asia- Stability and Regional Cooperation Ed. M.S. Anuragi, CRRID. Chandigarh, 1983. P-34

37. Brij mohan: " Trade prospects", World focus, Vol, 3, No 3, March, 1983

38. Bhawani Sen Gupta : " State of political institutions" World focus. Vol-4, No-12, Nov.-Dec. 1983. P-52 See also June 9, 1985

39. Stephen P-Cohen : "Prospects in south Asia, How Promote Cooperation" The times of India, New Delhi. Dec 18, 1984.

40. Op. Cit. No-24, P-56

41. S.S. Bindra : " Indo pak relations." Deep and deep publishers. New Delhi. 1981, P.17

42. Pran Chopra : "Regional Cooperation" World Focus. Vol 4, No. 11-12, Nov-Dec 83, Page 37

43. Opp. Cit, Nov 24, 1991- P-57

44. India Today (Hindi), New delhi : 15 Sep, 1984

अध्याय- चतुर्थ

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का दक्षिण एशिया पर प्रभाव

(अ) U.N.O. तथा दक्षिण एशिया

(ब) अमेरिका एवं दक्षिण एशिया

(स) रूस, चीन एवं दक्षिण एशिया

(द) ASEAN एवं दक्षिण एशिया

(य) SAARC एवं दक्षिण एशिया

(अ) U.N.O. तथा दक्षिण एशिया

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विश्व के विभिन्न देशों के साथ सम्बन्धों को एक नया आयाम दिया तथा द्विपक्षीय सम्बन्धों को मजबूत बनाने की भरसक कोशिश की। चाहे उत्तरी अमेरिका के देश हो या दक्षिण अमेरिका के या यूरोप के देश हो या अफ्रीकी महाद्वीप के। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने विभिन्न देशों की यात्राओं के माध्यम से या आपसी सहायता सहयोग के माध्यम से विश्व के सभी देशों के साथ सम्बन्धों को उत्कृष्टता के स्तर पर लाने का प्रयास किया, खासकर पड़ोसियों के साथ विशेषकर। विभिन्न मंचों के माध्यम से प्रधानमंत्री वाजपेयी जी ने दुनिया को शांति की राह पर चलने का सन्देश दिया। उन्ही मंचों में से संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) के जरिए भी प्रधानमंत्री वाजपेयी ने विश्व के साथ अपने सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने पर जोर दिया जिनमें से प्रमुख मुद्दों को हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सन् 2000 में हुए अधिवेशन में (जो कि न्यूयार्क में सम्पादित हुआ) प्रधानमंत्री वाजपेयी ने भारत का पक्ष विश्व जनमत के सामने विभिन्न मुद्दों पर काफी प्रभावी तरीके से रखने का प्रयास किया। इन मुद्दो पर विश्व के कई महत्वपूर्ण राष्ट्रों का भारत को समर्थन व उनके विचारों में आए परिवर्तन के आधार पर कहा जा सकता है कि वाजपेयी भारत के पक्ष को सही ढंग से विश्व के सामने लाने में सफल हुए। प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा सन् 2000 में न्यूयार्क में हुए अधिवेशन में निम्न तथ्यों को उठाया-

1. आतंकवाद और बातचीत दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते (भारत-पाक सम्बन्धों पर भारत का रूख स्पष्ट किया)।

2. अतंर्राष्ट्रीय जगत को आतंकवाद के विरूद्ध संयुक्त कार्यवाही करना चाहिए।

3. भारत को मजबूर होकर परमाणु परीक्षण करने पड़े।

4. वाजपेयी ने सी०टी०बी०टी० पर भारतीय रूख एक बार फिर स्पष्ट किया।

5. भारत ने सुरक्षा परिषद में समग्र सुधारों के लिए प्रयास तेज करने के लिए अन्य देशों को भी राजी करने में सफलता हासिल की।

6. बच्चों के अधिकारों से संबंधित संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किए।

हिन्दी में दिए अपने संक्षिप्त भाषण में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने पाकिस्तान का नाम लिए बगैर उसकी कड़ी आलोचना की तथा उसको पाखंडी होने का आरोप लगाया तथा आतंकवाद के खतरे के खिलाफ साझा वैश्विक कार्यवाही की आवश्यकता भी बताई। परमाणु हथियारों के बारे में भारत के मत को दोहराते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि भारत को 1998 में अपनी सुरक्षा कारणों को ध्यान में रखते हुए मजबूरी में पोखरण परीक्षण करना पड़ा।

संयुक्तराष्ट्र सहस्त्राब्दी शिखर सम्मेलन में वाजपेयी ने अपने भाषण में पाकिस्तान के सैनिक शासक परवेज मुशर्रफ द्वारा इसी मंच से दिए गए भाषण व दोनों देशों के बीच बातचीत की प्रक्रिया दोबारा शुरू नहीं होने की जिम्मेदारी भारत पर मढ़ने पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त किया। उन्होनें दुनिया से भी पाकिस्तान के दुष्प्रचार की सच्चाई समझने का आग्रह करते हुए कहा कि "दुनिया को अब सच्चाई जाननी ही चाहिए। भारत एक दशक से भी ज्यादा समय से सीमा पार के आतंकवाद का शिकार होता रहा है जिसमें हजारों निर्दोश लोगों की जाने जा चुकी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय जगत को आतंकवाद के विरूद्ध संयुक्त कार्यवाही में देर नहीं करनी चाहिए"।[1] वाजपेयी ने एक महत्वपूर्ण अपील करते हुए दुनिंया भर के देशों में गरीबी से जूझने के लिए एक नई पहल करने तथा नई रणनीति बनाए जाने का आह्वान किया, साथ ही उन्होनें संयुक्त राष्ट्र की स्थायी सदस्यता के लिए विकासशील देशों को अधिक प्रतिनिधित्व दिए जाने तथा भारत को इसमें दायित्व दिए जाने की पुरजोर पैरवी की।

प्रधानमंत्री ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत से आग्रह किया कि वह आतंकवाद से निबटने के लिए भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र में पेश किए गए व्यापक समझौते को जल्द से जल्द अपनी मंजूरी दें। मुशर्रफ का नाम लिए बिना वाजपेयी ने कहा कि इस मंच से उनके दुष्प्रचार पर रोष तथा आश्चर्य व्यक्त किया तथा कहा कि इस ऊँचे मंच से राष्ट्र नायकों ने कई नीतिगत बातें कहीं हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश कुछ वक्तव्य सच्चाई का माखौल है। वाजपेयी ने कहा कि जिन्होनें अपने देश में लोकतंत्र का गला घोट दिया, वह इस मंच से सच्चाई की बात करते हैं। जो अपने में गुप्त तरीके से परमाणु हथियारों का जखीरा हासिल करने में लगे हों वे दक्षिण एशिया में इनका ढ़ेर बनाए जाने पर चिंतित हो जिन्होनें आतंकवादी गतिविधियों में पिछले कुछ वर्षो में तीस हजार लोगों को मौत के घाट उतार दिया हो, ऐतिहासिक शांति प्रक्रिया में भाग लेते है।

संयुक्त राष्ट्र संघ में सी0टी0बी0टी0 के मुद्दे पर प्रधानमंत्री वाजपेयी :

संयुक्त राष्ट्र संघ में सी0टी0बी0टी0 के मुद्‌दें पर बोलते हुए प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कहा कि ''भारत सी0टी0बी0टी0 पर प्रमुख वार्ताकारों के साथ अपनी सुरक्षा वार्ता को सफलता पूर्वक सम्पन्न करने के लिए वचनबद्ध हैं। मैं अपनी स्थिति दोहराता हूँ। हम सी0टी0बी0टी0 को लागू करने में आड़े नहीं आएंगे। साथ ही सी0टी0बी0टी0 की धारा 14 के तहत जिन देशों को संधि पर हस्ताक्षर करने हैं उन्हें इसके लिए कोई शर्त नहीं लगानी चाहिए। भारत ऐसी संधि की बातचीत में भाग लेने के लिए प्रतिबद्ध है जो परमाणु हथियारों या अन्य परमाणु विस्फोटक यत्रांदि के लिए विस्फोटक सामग्री के उत्पादन पर रोक लगाती है। भारत के सुरक्षा परिषद में आने से सुरक्षा परिषद की गतिशील विश्व में विशेष भूमिका बनी रहेगी। इसलिए यह और भी जरूरी है कि इसका स्वरूप बड़ी सदस्य संख्या का हो व अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण हो हम उम्मीद करते हैं कि यह सहस्त्राब्दि शिखर सम्मेलन सुरक्षा परिषद के शीघ्र विस्तार और सुधार के प्रति विशेषकर विकसित और विकासशील देशों के नए स्थायी सदस्यों को लाने के लिए वचवबद्ध होगा, ताकि यह मंच 21वीं सदी की नई वास्तविकताओं का प्रतिनिधित्व कर सके।

विश्व मंच को संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र के अनुसार सभी देशों की सेवा में अधिक सोद्‌देश्यपूर्ण ढंग से काम करने में सहूलियत होगी। सदस्य देशों को स्मरण होगा कि कुछ वर्षो से भारत ने यह जता दिया है कि हम स्वयं को स्थायी सदस्यता के दायित्वों के लिए यथार्थपरक शर्तो को पूरा करने के योग्य मानते हैं। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र, विशाल संभावनाओं, तेजी से बढ़ती आर्थिक शक्ति और शांति-रक्षक प्रयासों में एक प्रमुख भागीदार के रूप में भारत का सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता के लिए सहज दावा बनता है।''[2]

प्रधामंत्री वाजपेयी ने अपनी इस यात्रा से सिद्ध कर दिया कि वे एक सुलझे कूटनीतिज्ञ हैं। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने वह नहीं किया जिसकी अमेरिका हमसे अपेक्षा करता था। तीन बातों पर वह भारत से अपने लिए कुछ सकारात्मक आश्वासन चाहता था। पहला विषय था-व्यापक परीक्षण प्रतिबंध संधि (सी0टी0बी0टी0), पर भारत हस्ताक्षर करे या आश्वासन दे। दूसरा विषय था दक्षिण एशिया में उसकी भूमिका बनानेमें भारत उसकी सहायता करे तथा तीसरा विषय था लोकतंत्र एवं खुली अर्थव्यवस्था के नाम पर भारत अमरीका का अन्तर्राष्ट्रीय पार्टनर बन जाए।

प्रधानमंत्री वाजपेयी की अमरीकी यात्रा से पूर्व चर्चा थी कि भारत सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर करेगा। हस्ताक्षर समर्थकों ने प्रयत्न भी किए थे लेकिन वाजपेयी ने कुशलतापूर्वक भारत का पक्ष रखा तथा कहा – "हमने तो स्वैच्छिक रूप से और आणविक परीक्षण करने के लिए अपने आपको प्रतिबंधित कर लिया है। हम सी०टी०बी०टी० के प्रभाव में आने की दृष्टि से कहीं बाधा नहीं है, पहले आप अपनी संसद से सी०टी०बी०टी० का अनुमोदन करवा लीजिए। हमारा देश इस सबंध में आम राय बनानेकी प्रक्रिया में है।"[3]

दूसरे मुद्दे पर भारत ने तीव्र प्रतिक्रिया की तथा अमरीका को बतलाया कि "भारत पाकिस्तान के मामले द्विपक्षीय हैं। भारत इसमें किसी तीसरी शक्ति के हस्तक्षेप या मध्यस्थता को स्वीकार नहीं करेगा। भारत ने यह भी स्पष्ट किया कि सीमापार से आतंकवाद को बढ़ावा एवं सरंक्षण देने की प्रक्रिया जारी रहने तक भारत पाकिस्तान से कोई बातचीत नहीं करेगा।" वाजपेयी ने यू०एन०ओ० महासभा तथा अमरीकी संसद दोनों मंचों का उपयोग राज्यों द्वारा प्रायोजित अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के खिलाफ बखूबी किया। वे न्यूयार्क में पाकिस्तान के फौजी तानाशाह परवेज मुशर्रफ से नहीं मिले। दुनिया को लोकतांत्रिक सन्देश देने के लिए यह जरूरी था। सीमापार से प्रायोजित आतंकवाद के खिलाफ मुर्शरफ से न मिलकर अपनी शिकायत को गम्भीरता पूर्वक दर्ज करवाया। पाकिस्तान के अलावा प्रधानमंत्री वाजपेयी ने अन्य सभी पड़ोसी देशों के राष्ट्राध्यक्षों से मुलाकात की। बिना कोई कटुता उत्पन्न किए प्रधानमंत्री वाजपेयी ने मध्यस्थता की अमरीकी आकांक्षा को पूरा नहीं होने दिया।

संयुक्त राष्ट्र महासभा का 57वॉ अधिवेशन एवं प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी :

यू०एन०ओ० के 57वें अधिवेशन में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने परोक्ष रूप से पाकिस्तान पर प्रहार करते हुए कहा कि दक्षिण एशिया में परमाणु ब्लैकमेल सरकार प्रायोजित आतंकवाद का एक नया हथियार बनकर सामने आया है, लेकिन हम यदि इस प्रकार के परमाणु आतंकवाद के सामने झुकते हैं तो इसका यही अर्थ होगा कि हमने "सितम्बर की त्रासदी का कड़वा सबक भुला दिया है।" वाजपेयी ने कहा कि भारत न तो युद्ध चाहता है और न ही हम किसी का कोई क्षेत्र हड़पना चाहते हैं लेकिन भारत का हर नागरिक यह जरूर चाहता है कि सीमापार से आतंकवाद पूरी तरह से बंद हो। वाजपेयी ने गुजरात एवं कश्मीर के संबंध में पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ द्वारा की गई टिप्पणियों पर तीखी प्रतिक्रिया

व्यक्त करते हुए कहा-

कश्मीर मुद्दे पर : कल हमने इस अनोखे दावे को सुना कि जम्मू व कश्मीर में मासूम नागरिकों की नृशंसा हत्या करना वास्तव में आजादी की लड़ाई लड़ना है। यह एक चालाकी पूर्ण तर्क है कि मासूमों का नरसंहार आजादी हासिल करने का उपाय है और चुनाव एक छलावा है तथा दमन का प्रतीक है।

गुजरात मुद्दे पर : हमने एक और सरासर झूठ और स्वार्थपूर्ण दावे को सुना कि भारत में मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यक समुदायों 'हिन्दू चरमपंथियों' द्वारा निशाना बनाया जा रहा है। भारत में 15 करोड़ यानी पाकिस्तान से भी अधिक मुसलमान रहते है। भारत विश्व में दूसरा मुसलमान आबादी वाला देश है। हमें अपने देश के बहुधर्मी स्वरूप पर गर्व है। धर्म के आधार पर कोई भेद-भाव न करना हमारी संवैधानिक बाध्यता ही नहीं है बल्कि यह भारत की सभ्यता और संस्कृति का प्राण-मंत्र भी है।

इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री वाजपेयी ने यू0एन0ओ0 में महासभा के समक्ष विश्व से गरीबी उन्मूलन के लिए चार सूत्री कार्य योजना प्रस्तुत की जिसके जरिए गरीब तथा अमीर के बीच की खाई को पाटा जा सकता है। अपनी इस कार्ययोजना में वाजपेयी ने कहा कि विकासशील एवं विकसित देशों के व्यापार में मौजूद असंतुलन तथा विकासशील देशों में बनाई गई वस्तुओं की कम कीमत दिए जाने की समस्या एवं उनके निर्यात में खड़ी होने वाली अड़चनों को दूर करना होगा। दूसरे प्रयास के तहत विश्व ऊर्जा बाजार में अत्यधिक अस्थिरता व्याप्त है जिसके कारण विकासशील देशों के व्यापार तथा वित्तीय संतुलन में भारी उतार-चढ़ाव आता है, इसलिए इसे समाप्त किया जाना बेहद जरूरी है। तीसरा कदम यह होना चाहिए कि विश्व पूंजी बाजारों में अप्रत्याशित हलचल को नियंत्रित किया जाए क्योंकि इससे विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने इस संदर्भ में चौथा मशविरा यह दिया कि भ्रष्टाचार से भरी कॉरपोरेट गतिविधियों पर अंकुश लगाया जाना चाहिए क्योंकि इससे विकासशील देशों के प्राकृतिक संसाधन तथा परम्परागत ज्ञान संपदा बिना मुआवजें के नष्ट हो जाते है। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने अपनी कार्ययोजना के साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के माध्यम से विश्व जनमत के समक्ष आतंकवाद के विरूद्ध एकजुट होने का आहवाहन करते हुए आतंकवाद विरोधी समिति को जानकारी एकत्र करने तथा कानूनी सहायता देने के अलावा अब इन निर्णयो पर अमल करने के लिए उन देशों पर भी जोर डालना जो आतंकवाद

को प्रायोजित कर रहे हैं, उसे पनाह, धन, हथियार और प्रशिक्षण दे रहे हैं।

अपनी पांच दिन की न्यूयार्क यात्रा के बाद संवाददाताओं से बातचीत में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने बताया कि यह पहला अवसर है कि अमरीकी राष्ट्रपति ने पाकिस्तान के साथ बातचीत शुरू करने के लिए कोई जोर नहीं डाला, जिससे संदेश मिलता है कि आतंकवाद के मामले में अमेरिकी रूख में कुछ परिवर्तन आया है। नवम्बर, 2002 में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में आयोजित सम्मेलन में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने विकसित देशों को जो खरी-खरी सुनाई उसके लिए उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए। उपयुक्त सम्मेलन में बोलते हुए उन्होनें विकसित देशों की इस सलाह को ठुकरा दिया कि विकासशील देश जलवायु को प्रभावित करने वाली ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम करने के उपायों को और तेज करें। उन्होनें उल्टे सवाल उठाया कि हम विकासशील देश इस ग्रीन हाउस गैस को कम करने के लिए और अधिक कुछ क्यों करे ? ग्रीन हाउस गैसों के सबसे बड़े उत्सर्जक विकसित देश है। वे जितनी गैस हवा में छोड़ते हैं उसका बहुत छोटा हिस्सा विकासशील देश छोड़ते है। पूरा एशिया तथा प्रशान्त-सागरीय देश मिलकर जितना Co_2 हवा में छोड़ते हैं उतना अकेले अमरीका छोड़ता है।

आज पर्यावरण तथा जलवायु में बदलाव की जो समस्या है वह वस्तुतः विकसित देशों द्वारा ही पैदा की गयी है। उन्होनें प्राकृतिक संसाधनों का अंधा-धुंध दोहन किया है। धरती के सारे वन काट डाले है। विकासशील देश तो औद्योगीकरण के रास्ते पर है। वे तो अभी गरीबी, भूख और पिछड़ेपन से जूझ रहे है। उन्हें तो अपने कल कारखानों को और अधिक तेजी से चलाना है जिससे गरीबी मिट सके और समृद्धि आ सके। ''ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम करने की जिम्मेदारी सीधे अमेरिका सहित अन्य विकसित देशों की हे। लोकतांत्रिक नैतिकता का केवल यही तकाजा है कि धरती के संसाधनों पर धरती के प्रत्येक निवासी को बराबर का हक है।''[4]

(ब) अमेरिका एवं दक्षिण एशिया

दक्षिण एशिया अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को बहुत ज्यादा प्रभावित करता है क्योंकि दक्षिण एशिया में एक तरफ दुनिया का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश भारत है जो जनसंख्या के क्रम में विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है (चीन के बाद) तथा पाकिस्तान जिसमें सैनिक तानाशाही कायम है जिसने अफगानिस्तान के विध्वंस में अमरीका का साथ दिया। भूटान राजतन्त्रात्मक देश है (लोकतन्त्र के प्रयास जारी है) तथा नेपाल भी राजतन्त्र से अभी-अभी उबरा है तथा लोकतन्त्र का दामन पकड़ा है। बांग्लादेश, मालद्वीव जैसे गरीब देश है तथा तमिल आतंकवाद से पीड़ित श्रीलंका है। इन देशों पर अमेरिका की शुरू से ही रूचि रही है। जिनमें भारत एक महत्वपूर्ण भाग है।

स्वतंत्र भारत का उदय लगभग उस समय हुआ जब अमेरिका तथा सोवियत संघ महाशक्तियों के रूप में उभर रहे थे। इन महाशक्तियों के मध्य विचारधारा का टकराव तथा वर्चस्व की लड़ाई ने पृथक शक्ति गुट एवं सैन्य संधियों के रूप में अभिव्यक्ति पायी। दोनों गुट भारत से अपेक्षा कर रहे थे कि वह उनके गुट में सम्मिलित हो जाए। परंतु भारत ने किसी भी गुट में सम्मिलित न होकर स्वतंत्र विदेश नीति अपनाने का निर्णय लिया। यह नीति गुट निरपेक्षता की नीति कहलाई और भारत-अमेरिका संबंध दोनों परस्पर पृथक विदेश नीति और राजनीतिक दर्शन के आलोक में प्रभावित हुए।

प्रधानमंत्री नेहरू के काल में कुछ समय तक भारत ने अमेरिका के साथ घनिष्ठ संबंधों का विकास किया। भारत के नेताओं ने अमेरिका द्वारा भारत की स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों पर डाले गए दबाव और उसके प्रभाव की कृतज्ञतापूर्वक सराहना की। अमेरिका की लोकतंत्रात्मक प्रणाली और विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से भारतवासी प्रभावित हुए। 1950 के दशक में अमेरिका ने भारत में खाद्य पदार्थों की कमी को दूर करने के लिए बड़ी मात्रा में खाद्य पदार्थों की पूर्ति की। 1951 ई० में तकनीकी सहयोग समझौता दोनों देशों के बीच हुआ। 1956 ई० में अमेरिका द्वारा अपनायी गयी नीति का 'स्वेज सन्दर्भ में' भारत ने स्वागत किया। 1949 में जब प्रधानमंत्री नेहरू अमरीका गए तो भव्य स्वागत हुआ तथा 1956 की आइजनहॉवर की भारत यात्रा सद्भावनापूर्ण सिद्ध हुई लेकिन अमरीका को यह पसंद नहीं आया कि-

(क) भारत ने उसके नेतृत्व में सैन्य संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए।

(ख) भारत ने साम्यवादी चीन को इतनी जल्दी मान्यता प्रदान कर दी।

(ग) नेहरू के नेतृत्व में भारत के रूस के साथ संबंध सुधर रहे थे।

इस दौर में भारत ने अमरीका द्वारा अपनायी गयी साम्यवाद को सीमित करने की नीति और इस उद्देश्य से स्थापित किए गए सैन्य गठबन्धन का कभी समर्थन नहीं किया। इस काल में भारत की विदेश नीति शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व तथा सभी राष्ट्रों के मध्य सहयोग के उच्च आदर्शो पर अवलंबित थी। दूसरी ओर द्वि–ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में श्रेष्ठता प्राप्त करना और अपनी विचार धारा का सम्पूर्ण विश्व में प्रसार करना अमेरिकी विदेश–नीति का मुख्य अवयव था। अतः अमेरिका के लिए भारत की विदेश नीति समझ से परे थी। पुनः चीन द्वारा तिब्बत पर जब अधिकार कर लिया गया तो नेहरू ने इसका खुलकर विरोध नहीं किया। उसी प्रकार अमेरिका द्वारा प्रस्तावित 'शांति के लिए एकता प्रस्ताव' 1950 ई० का भी भारत ने समर्थन नहीं किया। सितम्बर, 1951 में जापान के साथ शांति सन्धि करने के लिए सैन फ्रांसिस्कों में जो सम्मेलन बुलाया गया था भारत ने उसमें भाग नहीं लिया। 1956 ई० में नेहरू सरकार द्वारा हंगरी के मुद्दे पर सोवियत पक्ष में संयुक्त राष्ट्र द्वारा मतदान किया गया। दूसरी ओर अमेरिका की पाकिस्तान से बढ़ती नजदीकियां तथा बढ़ते सैन्य संबंध भारत को पसन्द नहीं था। इन सब कारणों से अमेरिका के साथ भारत के सबंधों पर विपरीत प्रभाव पड़ा तथा दूरी बढ़ने लगी।

चीन द्वारा 1962 में भारत पर किए गए आक्रमण और उससे उत्पन्न सीमायुद्ध ने दोनों (भारत, अमेरिका) के संबंधों को एक नया मोड़ प्रदान किया। युद्ध के समय अमेरिका ने भारत का केवल नैतिक समर्थन ही नहीं किया बल्कि सैन्य सहायता भी उपलब्ध करायी। जिससे दोनों देशों के मध्य एक बार फिर मधुरता आयी। 1961 ई० में कैनेडी के राष्ट्रपति बनने के बाद 'गोवा' के प्रश्न को छोड़कर भारत–अमेरिकी संबंध मधुर बने रहे। इस अवधि (1961-64) में भारत में तारापुर परमाणु सयंन्त्र के स्थापना हेतु अमेरिका द्वारा आर्थिक सहायता दी गई एवं दोनों देशों ने संयुक्त युद्धाभ्यास किया। राष्ट्रपति कैनेडी ने सर्वप्रथम सहअस्तित्व को स्वीकारते हुए माना कि ''कोई राष्ट्र लोकतंत्र एवं साम्यवाद के संघर्ष में तटस्थ भी रह सकता है,'' अर्थात् गुटनिरपेक्षता को अमेरिका ने एक हद तक मान्यता दिया।

श्री लालबहादुर शास्त्री के 18 माह के संक्षिप्त शासनकाल में भारत के साथ अमेरिका के संबंध कुछ खराब ही रहे। इस अवधि में भारत द्वारा उत्तरी वियतनाम में अमेरिकी बमवर्षा की कटु आलोचना की गई जिसके कारण अमेरिका में भारत के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई। 1965 में भारत के प्रधानमंत्री को अमेरिकी यात्रा हेतु दिया गया निमंत्रण वापस ले लिया गया जो भारत के लिए बहुत बड़ा अपमान था। फलतः भारत-अमेरिका संबंध का विषाक्त होना स्वाभाविक था। उसी बीच भारत और पाकिस्तान युद्ध (1965) में पाकिस्तान द्वारा अमेरिकी शस्त्रास्त्रों के प्रयोग ने भारत-अमेरिकी संबंधों में तनाव को और बढ़ाया, परन्तु यह महत्वपूर्ण है कि अमेरिका ने 1965 के भारत-पाक युद्ध में तटस्थता बनाये रखा और पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खाँ की पाकिस्तान के पक्ष में हस्तक्षेप की मांग तत्कालीन राष्ट्रपति जॉनसन ने ठुकरा दी।

1966 ई० में इन्दिरा गॉधी को अमेरिका से सबंध मैत्रीपूर्ण बनाने का अवसर तो मिला, किन्तु 5 वर्षो के अन्दर ही भारत-अमेरिकी संबंध जितने कटु हो गए उतने कभी नहीं थे। श्रीमती गांधी ने 1966 में अमेरिकी यात्रा के दौरान भारत में अमेरिकी पूंजीनिवेश का स्वागत किया, साथ ही उस दौरान भारत ने अपने वियतनाम नीति में भी कुछ नरमी के संकेत दिए। इन सबके बावजूद अमेरिकी दबाव में 1966 में भारत को अपने रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा। ऐसे में भारत विरोधी नांगा नेता 'फिजो' को अमेरिका में शरण एवं पाकिस्तान को विभिन्न मुद्दों पर निरन्तर अमेरिकी समर्थन के कारण दोनों देशो के संबंधों में गतिरोध कायम रहा। एक तरफ भारत ने पश्चिम एशिया युद्ध में इजरायल के विरूद्ध अरब देशों का समर्थन किया। इससे न केवल राष्ट्रपति जॉनसन असंतुष्ट हुए बल्कि अमेरिकी कांग्रेस के यहूदी सदस्यों ने भी रोष प्रकट किया।

''1969 में0 रिचर्ड निक्सन के राष्ट्रपति बनने के बाद भी दोनों देशों के मध्य विद्यमान मतभेद बने रहे। 1970 में वियतनाम से भारत ने राजनयिक संबंध स्थापित कर लिए थे। पुनः कंबोडिया के प्रश्न पर अमेरिका का विरोध भारत ने किया और भारत में स्थापित कुछ अमेरिकन सांस्कृतिक केन्द्रों को बन्द करने के भारतीय निर्णय ने अमेरिका को क्रुद्ध कर दिया।''[5] 1971 ई0 में बांग्लादेश युद्ध एवं भारत-पाक युद्ध में अमेरिका की भूमिका पक्षपातपूर्ण रही। भारत ने अमेरिका से आग्रह किया कि पाकिस्तान अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र में है। अतः निक्सन सरकार पाकिस्तान पर दबाव डाले कि वह बांग्लादेश में अत्याचार

बन्द करे ताकि बांग्लादेश के शरणार्थियों का भारत आना बन्द हो, लेकिन अमेरिका ने इसे पाकिस्तान का आतंरिक मामला बताकर टाल दिया।

स्वाभाविक रूप से भारत का झुकाव रूस की ओर हुआ और अगस्त, 1971 में भारत–रूस मैत्री संधि सम्पादित होना अमेरिकी विदेश नीति के लिए एक गहरा आघात था। युद्ध प्रारम्भ होने पर अमेरिका ने इसका सम्पूर्ण दोष भारत पर डालते हुए उस पर आर्थिक प्रतिबंध की धमकी दी। इस समय अमेरिका ने सुरक्षा परिषद में भारत-विरोधी प्रस्ताव प्रस्तुत किए किन्तु यह प्रस्ताव सोवियत संघ के 'वीटो' के कारण निरस्त हो गया।

अमेरिका ने इस युद्ध में पाकिस्तान को न केवल राजनयिक समर्थन दिया बल्कि भारत के विरूद्ध 'युद्धपोत राजनय' का प्रयोग करते हुए सातवां जहाजी बेड़ा बंगाल की खाड़ी में भेजकर प्रत्यक्षतः भारत को धमकी भी दी। यद्यपि हिंद महासागर में सोवियत संघ के नौसेनिक बेड़े की उपस्थित ने अमेरिका के 'युद्धपोत राजनय' को असफल बना दिया। 1972 ई० में प्रकाशित 'एण्डरसन-पेपर्स' से भारत–अमेरिका सम्बन्ध को एक धक्का लगा क्योंकि इस प्रकरण में निक्सन के भारत-विरोधी दृष्टिकोण और पूर्वाग्रहों का पर्दाफाश हुआ। 1972 ई० के अन्तिम महीनों में भारत तथा अमरीका के सम्बन्धों में एक सुधार आ गया। इसका प्रारम्भ तब हुआ जब अमरीका ने सहायता संघ की इस इच्छा को स्वीकार कर लिया कि भारत-ऋण को पुनः निर्धारित किया जाए। भारत ने प्रशंसा की। इसके साथ हैनरी किसिंगर का यह कहना कि अमरीका भारत को दक्षिण एशिया की बड़ी शक्ति मानता है। "दिसम्बर, 1973 में पी०एल० 480 कोष की जमा हुई राशि का 2/3 भाग माफ कर देने के अमरीकी निर्णय ने भारत–अमरीकी सम्बन्धों में सुधार के अवसरों को बढ़ावा दिया।"[6]

1974 ई० भारत-अमरीका संबंधों को लेकर दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा। प्रथम, अमेरिका ने 1974 में हिन्द महासागर के डियागो गार्सिया में अति-आधुनिक नौसैनिक अड्डा बनाने का निश्चय किया, भारत ने इसे अपनी सुरक्षा के लिए खतरा माना। द्वितीय 1974 में राजस्थान के पोखरण में एकमात्र परमाणु परीक्षण किया। अमेरिका ने कड़ी आलोचना की। 1977 में दोनों देशों में सत्ता बदली, एवं अमेरिका में जिमी कार्टर ने सत्ता संभाली। इस काल में दोनों देशों की सरकारों ने आर्थिक सहयोग और मित्रता पर बल दिया, परन्तु भारत ने परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करने के 'कार्टर' के आग्रह

को नहीं माना, अर्थात् मतभेद कायम रहे। इसी बीच 'नवशीत युद्ध' के दौर में अमेरिका ने पाकिस्तान को 'अग्रिम रेखा के राज्य' का दर्जा दिया तथा पाक को बड़े पैमाने पर अमेरिका सैन्य एवं आर्थिक सहायता ने भारत को असंतुष्ट बनाए रखा। दूसरी ओर भारत ने अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप की स्पष्ट शब्दों में निंदा की।

1981 में कैंकन में उत्तर-दक्षिण संवाद शिखर सम्मेलन में श्रीमती गांधी ने राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन से भेंटवार्ता की। दोनों के संबंध सुधरे परन्तु तीन ऐसे विषय थे जिन पर अब भी भारत को आपत्ति थी- प्रथम, पाकिस्तान को मिलने वाली अमेरिकी सैन्य सहायता जो राष्ट्रपति रीगन के काल में और बढ़ा दी गई थी। द्वितीय, पंजाब में बढ़ रहा आतंक और इस पर अमेरिका का दृष्टिकोण इनके संगठनात्मक एवं वित्तीय सम्बन्ध ब्रिटेन तथा कनाडा के अलावा अमेरिका से भी थे। तृतीय, पाकिस्तान के गुप्त परमाणु कार्यक्रम के प्रति भारत द्वारा आगाह किये जाने के बावजूद पाकिस्तान को अमेरिकी प्रोत्साहन की नीति प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने अपने प्रधानमन्त्रित्व काल में अमेरिका के साथ संबंध मधुर बनाने का प्रयास किया किन्तु प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की क्यूबा यात्रा और सोवियत संघ के प्रति सहानुभूति ने अमरीका को निराश किया एवं रीगन प्रशासन पाकिस्तान को अपना समर्थन देता रहा।

खाड़ी युद्ध (1991) के समय अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भारत की भूमिका सीमित रही और युद्ध के मसले पर अमेरिकी विमानों को भारत में ईधन भरने सम्बन्धी मुद्दों को छोड़ दोनों देशों के सबंध सामान्य बने रहे। इसी बीच 'प्रेसलर संशोधन' के प्रावधानों के अन्तर्गत पाकिस्तान को प्रस्तावित आर्थिक एवं सैनिक सहायता पर अमेरिका ने रोक लगाकर भारत के साथ अपने संबंधों को लेकर सकारात्मक संदेश दिए, अर्थात अब अमेरिका पाकिस्तान में अपने हितों को छोड़े बगैर भारत से भी संबंध सुधारने का इच्छुक दिखा।

शीतयुद्ध के पश्चात (1989) अमेरिका एकमात्र महाशक्ति के रूप में बचा। शीत युद्ध के बाद का युग जिन मुद्दों को आगे ला रहा है उनमें आर्थिक विकास, लोकतंत्र, परमाणु हथियारों का परिसीमन, सूचना प्रौद्योगिकी और आतंकवाद प्रमुख विषय हैं। 1991 के बाद नरसिंहराव के काल में भारत-अमरीकी संबंधों में सुधार आया। मई, 1994 में प्रधानमंत्री पी0वी0 नरसिंह राव के अमेरिकी यात्रा के बाद संबंधों का तीव्रता से विकास हुआ। बदलते विश्व परिदृश्य में भारत ने अपनी परम्परागत विदेश नीति

के ढांचे में कुछ परिवर्तन भी किया। उदाहरणार्थ, इजरायल के साथ राजनैतिक संबंधों की स्थापना की गई। भारत ने परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करने की अमेरिकी अनुरोध ठुकरा दिया। दूसरी ओर अमरीका ने दबाव की राजनीति की रणनीति के तहत रूस पर रॉकेट-प्रौद्योगिकी भारत को न देने हेतु दबाव डाला। अमेरिका का तर्क था कि भारत इस प्रौद्योगिकी का प्रयोग अपने सैन्य उद्देश्यों की अभिवृद्धि के लिए करेगा। क्लिंटन प्रशासन ने भारत का कड़े विरोध एवं आपत्तियों के बाद भी 'ब्राउन संशोधन कानून' 1996 के तहत पाकिस्तान को आधुनिकतम हथियार दिए। इन्द्र कुमार गुजराल के प्रधानमंन्त्रित्व काल की विशेषता, जून, 1997 में अमेरिका एवं भारत के बीच सम्पादित प्रत्यर्पण संधि थी।

प्रधामन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 11 तथा 13 मई, 1998 को पोखरण में परमाणु परीक्षण किए गए जिससे अमेरिका ने भारत पर कठोर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिए। अमेरिका ने ग्रुप-8 और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत की कटु आलोचना की साथ ही भारत की 200 से भी अधिक कम्पनियों को काली सूची में डाल दिया। किन्तु इस समय भारत आर्थिक रूप से समक्ष था अतः उसने इन आर्थिक प्रतिबन्धों को आसानी से सामना कर लिया। लेकिन चीन के बढ़ते प्रभाव, एशियाई शक्ति संतुलन के प्रति अमेरिकी चिंता और पाकिस्तान में धार्मिक उन्माद की बढ़ती घटनाओं ने अमेरिका के भारत के प्रति नीति को पुनः प्रभावित किया। कारगिल मुद्दे पर पाकिस्तान के पुराने मित्र अमेरिका ने नियंत्रण रेखा के पार पाकिस्तान के सैन्य दुस्साहस पर क्षोभ प्रकट किया। राष्ट्रपति क्लिंटन ने नवाज शरीफ को वांशिगटन बुलाकर उन्हें नियंत्रण रेखा के सम्मान हेतु सहमत कराया।

अमेरिका ने स्वीकार किया कि वह एक स्थायी, सुरक्षित, शक्तिशाली तथा एकीकृत भारत का पक्षधर है। पाकिस्तान में अक्टूबर, 1999 में हुई सैनिक क्रांति और लोकतंत्र की हुई दुर्दशा की पृष्ठभूमि में यह घोषणा महत्वपूर्ण थी। इस समय तक भारत एवं कुछ अन्य देशों में बढते आतंकवाद ने अमेरिका को चिंतित कर दिया था। स्वयं अमेरिका को कट्टरपन और आतंकवाद से खतरा उत्पन्न हो रहा था। भारत के विरुद्ध पाक समर्थित आतंकवाद एवं दिसम्बर, 1999 में भारत के A.K. विमान अपहरण में पाकिस्तान के हाथ होने के प्रमाणों ने भारत में आतंकवाद की समस्या और इसमें पाकिस्तान की भूमिका के संदर्भ में अमेरिका को गंभीरता से सोचने को विवश कर दिया। इसीलिए 2000 ई० में दोनों ने आतंकवाद का सामना करने के लिए एक संयुक्त कार्यदल का गठन करने पर सहमत हुए। 22 वर्षो के

बाद बिल क्लिंटन ने मार्च, 2000 में भारत की यात्रा की। वर्ष 2000 और 2001 से अमेरिका का दृष्टिकोण भारत के प्रति सकारात्मक होने लगा था। 2000 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की अमरीकी यात्रा के दौरान सम्बन्ध मजबूत हुए।

11 सितम्बर, 2001 की आतंकी घटना के जवाब में अमरीका ने 'आतंक के विरूद्ध युद्ध' का उद्घोषण किया। राष्ट्रपति बुश ने आतंकवाद के विरुद्ध अभियान में भारत को अपना स्वाभाविक मित्र घोषित किया। लेकिन 'आतंकवाद से संघर्ष' के सन्दर्भ में अमेरिका की दोहरी नीति अभी बनी रही। अमेरिका ने अलकायदा आतंकवादियों के दमन और तालिबान के सफाए के लिए अफगानिस्तान में सैन्य कार्यवाही की घोषणा की और इस अभियान में पाकिस्तान के महत्व को देखते हुए उसे सैन्य एवं आर्थिक सहायता ही नहीं दी बल्कि आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध में उसे अपना सहयोगी भी बनाया। यहाँ पर अमेरिका ने इस तथ्य को पूर्णतः नजर अंदाज कर दिया कि भारत में आतंकवाद को भड़काने का मुख्य श्रोत पाकिस्तान ही है। भारत ने अफगानिस्तान युद्ध में अमेरिकी गठबन्धन को पूर्ण समर्थन दिया। भारत बदलते दौर में अमेरिका से किसी कीमत पर अफगानिस्तान मुद्दे पर निकटता चाहता था क्योंकि अफगानिस्तान में भारतीय प्रभाव भारत को दीर्घकालिक, राजनैतिक, सामरिक, और आर्थिक लाभ प्रदान कर सकते थे, किन्तु इसमें भारत को सीमित सफलता ही मिली।

इसी बीच भारतीय संसद पर 13 दिसम्बर, 2001 को आतंकवादी हमला हुआ। भारत ने पाकिस्तान को जिम्मेदार माना तथा किसी भी प्रकार की कार्यवाही हेतु तैयार हुआ लेकिन अमेरिका मध्यस्थता के कारण स्थित बेकाबू नहीं हो सकी। ईराक युद्ध में भारत ने अमरीका का अप्रत्यक्ष समर्थन अवश्य किया किन्तु अमेरिका ने इस आग्रह को ठुकरा दिया कि ईराक में हालात सामान्य करने में सहयोग करने के लिए भारत अपनी सेना वहाँ भेजे। किन्तु अब भारत की नीतियों पर अमेरिकी प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। पाकिस्तान के साथ भारत की शांति के लिए पहल अमेरिकी प्रयासों के नतीजे के रूप में भी महत्वपूर्ण है।

अमेरिका दक्षिण एशिया क्षेत्र से आतंकवाद तथा इस्लामी कट्टरता को समाप्त करना चाहता है। अफगानिस्तान में स्थिररता उस उद्देश्य की पहली सीढ़ी है। भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों को सामान्य बनाना तथा कश्मीर समस्या का समाधान ढूंढना एवं इस क्षेत्र में अमेरिका ऐसी सरकारों को प्रोत्साहित

करता है जो अमेरिकी आर्थिक हितों तथा सुरक्षा का समर्थन करे। अमेरिका एक सुदृढ़ लोकतान्त्रिक देश है तथा भारत भी लोकतान्त्रिक (दुनिया का सबसे बड़ा) देश होने के कारण अमरीका के लिए सदैव एक सहयोगी के रूप में रहा है लेकिन भारत तथा अमेरिकी सरकार के मध्य कुछ विभेद है जो दोनों को परस्पर आन्तरिकता का अहसास होने से दूर रखते हैं, जैसे-

1. कश्मीर समस्या (पहले अमेरिका चाहता था कि मुस्लिम बहुल क्षेत्र होने के कारण उसे स्व-निर्णय का अधिकार दिया जाना चाहिए, लेकिन 1990 के बाद अमेरिका ने अपना विचार बदल लिया तथा कहने लगा कि शिमला समझौते के तहत शांतिपूर्ण समाधान वार्ता द्वारा निकलना चाहिए।
2. भारत द्वारा कम्युनिस्ट चीन को तुरन्त मान्यता (1949) देने का मामला।
3. पाकिस्तान का **SEATO** का सदस्य होना (1954)।
4. सोवियत रूस के साथ भारत की मित्रता, भारत-सोवियत संधि (1971)।
5. औपनिवेशिक मामलों पर मतभेद।
6. बांग्लादेश का संकट (1971)।
7. भारतीय परमाणु नीति और परीक्षण (1974)।
8. अफगानिस्तान पर मतभेद (1997-2001)।
9. पाकिस्तान को अमेरिकी आयुध-आपूर्ति (एफ-16, अवाक्स तथा अन्य सैन्य सामग्रियां)।
10. डियागो गार्सिया पर मतभेद : अमेरिका ने ब्रिटेन से ले लिया और उसे नौ-सैनिक अड्डे में विकसित किया। भारत इसके विरूद्ध था और चाहता था कि हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र रखा जाय।
11. अमेरिका द्वारा भारत के विरूद्ध सुपर 301 एवं मिसाइल तकनीकी रिजीम लागू करना।
12. 1991-पूर्व भारत की अनुदार आर्थिक नीति।
13. भारत का परमाणु परीक्षण तथा सी०टी०बी०टी० का मामला।
14. जम्मू-कश्मीर में कथित मानवाधिकारों का उल्लंघन।

15. भारत-ईरान गैस पाइप लाइन पर आपत्ति।

16. अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को गैर नाटो सहयोगी के रूप में मान्यता देना।

17. सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता पर अमेरिका का इंकार।

18. आउट सोर्सिंग मुद्दा : अमेरिका भारतीय आउटसोर्सिंग को मान्यता देने के लिए दो शर्तो पर तैयार है :

(क) भारत अमेरिका को विश्व व्यापार संगठन में उदारीकरण की प्रक्रिया को और बढ़ाने में मदद करे।

(ख) भारत अमेरिकी निर्यात के लिए अपने बाजारों को भी खोले। ज्ञातव्य हो कि आउटसोर्सिंग से भारतीयों को काफी रोजगार प्राप्त होता है।''[7]

दक्षिण एशिया में अमरीकी भूमिका उसके महाद्वीपीय रणनीति का ही अंग है जिसकी शुरूआत 'साम्यवाद के विरोध' की अमरीकी नीति से होता है। इस नीति के परिणामस्वरूप पाकिस्तान को 'सीटो' तथा बगदाद पैक्ट 'सेण्टो' का सदस्य बनाया गया। पाकिस्तान को अमरीकी शस्त्र प्रदान किए गए। आइजनहॉवर ने भारत को भी शस्त्र देने की पेशकश की जिसे भारत ने अस्वीकृत कर दिया।

अमरीका पाकिस्तान को एक तरफ सोवियत संघ के खिलाफ और दूसरी तरफ नेहरू के निर्गुट आन्दोलन के खिलाफ इस क्षेत्र में एक सशक्त दीवार के रूप में खड़ा करना चाहता था। 1965 के युद्ध में भारत के खिलाफ जो भी शस्त्र पाकिस्तान ने काम में लिये वे सब अमरीकी शस्त्र सहायता में प्राप्त किये थे। कश्मीर के प्रश्न पर सुरक्षा परिषद में अमरीकी समर्थन भी पाकिस्तान को प्राप्त था।

1962 के चीनी आक्रमण के समय अमेरिका ने भारत को शस्त्रों की भरपूर सहायता दी। वस्तुतः चीन के खिलाफ भारत को रूस-अमरीकी समर्थन प्राप्त हुआ। 1971 के युद्ध में अमरीका ने बांग्लादेश के प्रकरण के सन्दर्भ में पाकिस्तान का साथ दिया तथा अमरीका ने युद्ध छेड़ने का आरोप भारत पर लगाया। सोवियत विस्तारवाद को रोकने के बहाने अमरीका पाकिस्तान को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाना चाहता था। ''अफगानिस्तान में रूसी हस्तक्षेप से पाकिस्तान का चिन्तित होना स्वाभाविक था। दूसरी तरफ अमेरिका डियागों गार्शिया द्वीप पर अपने सैन्य अड्डे के विस्तार की योजना का तेजी से क्रियान्वयन करने लगा, जिसका मुख्य उद्देश्य था कि वह हिन्द महासागर में आकर सोवियत संघ द्वारा अफगानिस्तान में हस्तक्षेप के लाभ को कम कर सके।''[8]

(स) रूस, चीन एवं दक्षिण एशिया :

दिसम्बर, 1991 में सोवियत संघ के पूर्ण विघटन होने के बाद 9 सोवियत गणतन्त्रों द्वारा स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक राष्ट्रमण्डल स्थापित किया गया। कानूनी रूप में रूस भू0पू0 सोवियत संघ का उत्तराधिकारी बना तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में निषेधाधिकार तथा स्थायी सदस्यता रूस को दे दी गई। सोवियत संघ परमाणु शस्त्र भण्डार की चाभी भू0पू0 सोवियत संघ के राष्ट्रपति गोर्वाच्योव द्वारा रूस के राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन को सौंप दी गई।

मार्च, 1998 में भारत में वाजपेयी के नेतृत्व में बी0जे0पी0 गठबन्धन सरकार का गठन हुआ तथा इस सरकार ने रूस के साथ सभी क्षेत्रों में सहयोग तथा मित्रता को और दृढ़ बनाने की नीति का अनुसरण और भी तेजी से किए जाने की घोषणा की। मई, 1998 में जब भारत ने पांच परमाणु विस्फोट किए तो रूस के नेताओं ने कहा कि वे इससे निराश हुए थे लेकिन रूस ने भारत के विरूद्ध न तो आर्थिक प्रतिबन्ध लगाए और न ही जी-8 को मिलकर ऐसा करने की सलाह दी। दिसम्बर, 1998 में रूस के प्रधानमंत्री श्री प्रिमाकाव ने दो दिन के लिए भारत की यात्रा की तथा कई समझौतों पर सहमत हुए। दोनों देशों ने अमरीकी दबाव की परवाह न करते हुए, एक दीर्घकालिक सन् 2010 तक का सैनिक तकनीकी सहयोग समझौता किया तथा भारत को यू0एन0ओ0 की सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता का समर्थन किया। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कहा, ''रूस के साथ सम्बन्धों के प्रति एक राष्ट्रीय सहमति पायी जाती है तथा भारत के सभी राजनीतिक दल इसका समर्थन करते हैं। हमें प्रसन्नता है कि रूस के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहा जा सकता है।''[9]

भारत-पाक कारगिल युद्ध के सम्बन्ध में रूस ने स्पष्ट रूप से पाकिस्तान को दोषी माना तथा भारतीय सैनिक कार्यवाही को आवश्यक माना। 1 जनवरी, 2000 के दिन रूस के राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन ने त्यागपत्र दिया तथा ब्लादिमीर पुतिन को उत्तराधिकारी के रूप में मनोनीत किया। अप्रैल, 2000 में सम्पन्न चुनावों में पुतिन विधिवत रूप से राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। उन्होंनें परम्परागत मित्रता तथा सहयोग को मजबूत करने पर जोर दिया। अक्टूबर, 2000 में पुतिन ने भारत की यात्रा की (राष्ट्रपति येल्तसिन 1993 के बाद) तथा दोनों के मध्य कई समझौते हुए जिसमें 3 अक्टूबर, 2000 को सामाजिक भागीदारी की घोषणा पर हस्ताक्षर भी शामिल हैं। दोनों देशों ने परमाणु विज्ञानों, प्रतिरक्षा,

अतरिक्ष के क्षेत्रों में संरचनात्मक सहयोग करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, अलगाववाद, धार्मिक उग्रवाद, संगठित अपराध तथा नशीले (गैर कानूनी) पदार्थो के विरूद्ध कार्यवाही की घोषणा की।

दोनों देशों ने सैनिक सहयोग को उच्च स्तरीय बनाने की भी घोषणा की। कश्मीर मुद्दे का समाधान द्विपक्षीय प्रयासों द्वारा बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के करने की सलाह रूस ने दी। भारत ने रूस की चेचन्या नीति की तथा रूस ने भारत की कश्मीर नीति का समर्थन किया। फरवरी, 2001 में भारतीय तारापुर अणु-ऊर्जा संयत्र के लिए रूस से परमाणु ईधन की खेप भारत पहुंची तथा इसने दोनों देशों की मित्रता और सहयोग के उच्च स्तर को स्पष्ट दिखलाया क्योंकि रूस ने यह आपूर्ति अमरीकी विरोध के बावजूद की थी। 15 फरवरी, 2001 के दिन रूसी उप- प्रधानमंत्री श्री क्लेवनोव ने भारत की सुरक्षा आवश्यकता की पूर्ति के सम्बन्ध में एक समझौते के द्वारा भारत को टी-90 मुख्य युद्ध टैंको के आपूर्ति तथा उनके भारत के निर्माण के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण निर्णय किया।

11 सितम्बर, 2001 तथा 13 दिसम्बर, 2001 में हुए आतंकवादी हमले के सन्दर्भ में रूस ने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के सभी स्वरूपों के विरूद्ध कार्यवाही होनी चाहिए। दोनों देश यह स्वीकार करते हैं कि अफगानिस्तान में विद्यमान तालिबान शासन आतंकवाद का संरक्षक एवं पोषक रहा है। नवम्बर, 2001 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने रूस की यात्रा की तथा दोनों देशों ने आतंकवाद की समाप्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। दिसम्बर, 2002 में पुतिन ने भारत की यात्रा की जिसमें सामरिक सहयोग को विकसित करने आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष पर सहमति बनी। मई, 2003 में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने जर्मनी, फ्रांस, रूस की यात्राएं कीं। पुनः नवम्बर, 2003 में प्रधानमंत्री वाजपेयी की रूस यात्रा के दौरान दोनों देशों ने 10 समझौतों पर हस्ताक्षर किए जिनका सम्बन्ध विज्ञान, तकनीक, अंतरिक्ष, भूचाल, अनुसंधान तथा बैंकिंग, रक्षा आदि क्षेत्रों से था। आतंकवाद के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों के आधार पर कार्य किए जाने की मांग की। ईराक की प्रभुसत्ता की शीघ्र पुनः स्थापना की मांग की तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को शांतिपूर्ण समाधान की वकालत की। भारत ने चेचन्या आतंकवादियों के विरुद्ध चलाए जा रहे रूसी अभियान का पूर्ण समर्थन किया।

21वीं शताब्दी में भारत-रूस मित्रता तथा सहयोग उच्च स्तरीय आपसी विश्वास तथा समझ पर आधारित थी। इसी परस्पर विश्वास, समझ और सहयोग के आधार पर ही दोनों देशों ने जनवरी, 2004

में 7000 करोड़ मूल्य के रक्षा सौदों को अन्तिम रूप से अपना लिया। इनके अन्तर्गत भारत को रूस ने अपना हवाई जहाज वाहक एडमिरल गोर्शकोव जहाज तथा इसके साथ 28 मिग, 29-के० लड़ाकू हवाई जहाज बेचने का निर्णय लिया। यह एक भारी रक्षा-सौदा था। इस रक्षा सौदे ने यह स्पष्ट दिखाया कि भारतीय रक्षा सौदों की आपूर्ति करने वालों में रूस सबसे अग्रणी था। भारत तथा रूस पहले ही साझे रूप में ब्रम्होस मिसाइल विकसित कर रहे थे तथा भारत टी-90 टैंकों का निर्माण भी रूसी सहायता तथा सहमति से कर रहा था। भारत-रूस सहयोग तथा सम्बन्धों का आधार है-

1. दोनों के राष्ट्रीय हितों के उद्देश्यों की अच्छी और सकारात्मक समानताएं।

2. दोनों देश आतंकवाद की समाप्ति के लिए संघर्षरत है।

3. दोनों देश उभर रही अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बहुकेन्द्रीय व्यवस्था के रूप में विकसित करना चाहते हैं।

4. दोनों देश अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के पुर्नसंरचना के पक्ष में है तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया का नवउपनिवेशवादी उपयोग नहीं होने देना चाहते।

5. अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को अपना गैर-नाटो मित्र घोषित किए जाने के बाद भारत तथा रूस अपने सम्बन्धों को व्यापक और लाभकारी रूप में विकसित किए जाने के महत्व को और भी दृढ़ता से स्वीकार करते हैं। रूस दक्षिण एशिया में अधिक और गम्भीर अमेरिकी उपस्थिति और भूमिका नहीं चाहता। ऐसी ही सोच चीन तथा भारत की है।

6. भारत तथा रूस पाकिस्तान अफगानिस्तान क्षेत्र में प्रायोजित आतंकवाद की समाप्ति चाहते हैं तथा इस दिशा में सहयोग करने के इच्छुक हैं। ये सभी सकारात्मक तत्व तथा दोनों के सम्बन्धों में किसी बड़े विवाद अथवा विरोध की अनुपस्थिति दोनों देशों के सम्बन्धों में अधिकाधिक वृद्धि की भविष्यवाणी करने को सम्भव बनाते है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य में दक्षिण एशिया का विशेष महत्व है, विशेषकर चीन जैसे विश्व के विशालतम एवं नजदीकी पड़ोसी होने के कारण। भारत द्वारा किए गए परमाणु परीक्षणों तथा परमाणु-सम्पन्न राष्ट्र के रूप में की गई घोषणा से दक्षिण एशियाई देशों के साथ चीन के सम्बन्धों में

गुणात्मक दृष्टि से परिवर्तन आने लगा। भारत के रक्षा मंत्री जार्ज फर्नाडीज ने अपने वक्तव्यों में परमाणु परीक्षण से पूर्व चीन को 'प्रमुख चुनौती' माना है तथा प्रधानमंत्री वाजपेयी ने परीक्षण के विषय में परमाणु सम्पन्न देशों के अध्यक्षों को यह पत्र लिखा कि चीन के खतरे के कारण भारत परमाणु शस्त्रीकरण के लिए बाध्य हो गया है। परमाणु परीक्षणों के बाद भारत-चीन संबंध तेजी से बिगड़े हैं और दोनों देशों के बीच विद्यमान तनावों का इस क्षेत्र के देशों की सुरक्षा पर प्रभाव पड़ा है। परमाणु परीक्षण के लिए चीन ने अपनी आपत्ति जाहिर की तथा भारत भी दीर्घकालिक सामरिक हितों की दृष्टि से इससे बच नहीं पाया।

चीन का यह आकलन है कि अपने चारों ओर स्थिरता तथा शांति का माहौल बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक है, ताकि आतंरिक स्थिरता तथा विकास सम्बन्धी प्रमुख उद्देश्य प्राप्त किये जा सकें। चीन अपने मुद्दों तथा अपनी अन्तर्राष्ट्रीय आशाओं के सम्बन्ध में समर्थन पाने के लिए संयुक्त राष्ट्र और संयुक्त राष्ट्र के कार्यो को समर्थन देना तथा उसे मजबूत बनाना चाहता है। चीन परमाणु अप्रसार और जनसंहारक अस्त्रों के उन्मूलन का भी हिमायती है। शांति एवं विश्व व्यवस्था पर हावी विद्यमान परमाणु ताकतों को रोकने की इच्छा के परिणामस्वरूप चीन ने विशेष रूप से परमाणु इतर अस्त्र-सम्पन्न राज्यों के विरूद्ध 'पहले परमाणु अस्त्र प्रयोग नहीं' के संबंध में एकतरफा घोषणा की है।

पाकिस्तान और श्रीलंका को छोड़कर भारत, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश तथा म्यॉमार के साथ चीन के सबंधों में कई उतार चढ़ाव आए है। छठवें दशक के प्रारम्भ से सोवियत संघ और चीन के बीच दूरी के कारण चीन ने मध्य एशिया में सोवियत प्रभाव का विरोध किया था, इसलिए पाकिस्तान के साथ इसने दृढ़ राजनीतिक रक्षा और आर्थिक संबंध स्थापित किए। चीन ने अफगानिस्तान में सोवियत समर्थक क्रान्ति का विरोध किया था, परन्तु अब चीन को वहाँ चल रहे गृहयुद्ध तथा अफगानिस्तान की सत्ता संरचना में हावी हो रहे धार्मिक उग्रवाद के बारे में आपत्ति है। पांचवे दशक में आरम्भ हुई भावनात्मक मैत्री के बाद भारत-चीन संबंधों में अनेक उतार चढ़ाव आए है। चीन ने भारत के विरुद्ध क्षेत्रीय दावे करना आरम्भ कर दिया था जिसे भारत ने खण्डित किया था। इससे दोनों के मध्य सीमा विवाद उठने लगा, जिसकी परिणति युद्ध में हुई। यह मुद्दा अभी भी नहीं सुलझा है।

चीन के पास भारत के दावों के अनुसार सत्तर हजार से अस्सी हजार वर्ग कि0मी0 भारतीय क्षेत्र है। भारत-चीन युद्ध के बाद उपजी कडुवाहट के बावजूद चीन के भारत के साथ सम्बन्धों में धीरे-धीरे 1988 से सुधार आना शुरू हुआ है। सातवें दशक के अंत में चीन और भारत के नेता वर्ग इससे सहमत हो गए हैं कि चूंकि सीमा विवाद जटिल है तथा इसे आसानी से नहीं सुलझाया जा सकता, इसलिए भारत और चीन को विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग एवं मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने चाहिए तथा ऐसा माहौल तैयार करना चाहिए, जिसमें पारस्परिक समझ-बूझ तथा सहानुभूति के आधार पर दोनों देश राजनीतिक बातचीत के माध्यम से सीमा विवाद सुलझाने में सक्षम होंगे। सन् 1991 से 1994 के बीच की अवधि के भीतर भारत-चीन संबंधों में गुणात्मक सुधार हुआ। दोनों देशों ने सितम्बर, 1993 में करारनामें पर हस्ताक्षर किए, ताकि वास्तविक नियंत्रण रेखा के पास माहौल स्थिर बनाया जाए और रेखा के दोनों ओर शांति बनाकर रखी जाए।

भारत चीन की सैन्य क्षमता और तिब्बत में मिसाइल स्थित करने से अवगत था। भारत और पाकिस्तान के साथ चीन से रक्षा और आर्थिक सहयोग से भी अवगत था। जार्ज फर्नाडीज द्वारा भावावेश में दिए गए बयानों से उत्पन्न अनावश्यक संकट को दूर करने के लिए दोनों देशों को सोद्देश्यपूर्ण तथा निष्ठापूर्वक प्रयास करने होंगे। भारत के नेपाल तथा भूटान के साथ संबंधों तथा चीन और भारत दोनों के प्रति आशंकाओं के कारण नेपाल और भूटान के साथ चीन के संबंधों में तनाव उत्पन्न हुए हैं। हालांकि नेपाल की भारत के विरूद्ध चीन से लाभ उठाने की प्रवृत्ति रही है, परन्तु भारत के अधिक निकट तथा निर्भर होने के कारण भूटान के चीन के साथ संबंध घनिष्ठ नहीं है।

तिब्बत को प्रभावित करने वाली राजनीतिक विसंगतियां भारत, नेपाल और भूटान के साथ चीन के संबंधों पर प्रभाव डाल रही है। तिब्बतियों के देश निष्कासन तथा तीनों देशों में शरणर्थियों की समस्या के कारण चीन के प्रति रोष बढ़ रहा है। तीनों देश, विशेष रूप से भारत ने तिब्बत को चीन के पीपुल्स गणराज्य का स्वायत्त भाग स्वीकार किया है। चीन की सरकार इस बात से चिंचित है कि इन अलगाववादी गतिविधियों के अड्डे के रूप में भारत का इस्तेमाल किया जा रहा है। भूटान और नेपाल भी इस प्रक्रिया में शामिल होते जा रहे हैं। यह राजनीतिक दृष्टि से एक संवेदनशील अव्यवस्था है, जिसके लिए एक ओर चीन तथा दूसरी ओर भारत, नेपाल, भूटान को चीन की अखण्डता तथा चीन और

महत्वपूर्ण दक्षिण एशियाई देशों के बीच राजनीतिक संबंधों में स्थिरता लाने के लिए उचित तथा न्यायोचित समझौता करना पड़ेगा।

चीन ने बांग्लादेश की मुक्ति का विरोध किया था, परन्तु शुरू में कड़ुवाहट के बाद बांग्लादेश सरकार ने कड़ी मेहनत से चीन और पाकिस्तान के साथ संबंध स्थापित किए ताकि भारत द्वारा राजनीतिक दृष्टि से अभिभावी प्रभाव को कम किया जा सके। भारत द्वारा नाभिकीय परीक्षण करने के बाद चीन के रूख में महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है कि चीन ने अब इस उपमहाद्वीप में एक संतुलित विदेश नीति का पालन करने का निश्चय किया। इस नीति के तहत पाकिस्तान से पुरानी मित्रता को कुछ कम कर भारत के साथ रिश्ते सुधारने पर जोर दिया गया। ''पहली बार भारत एवं चीन ने शंघाई तट पर संयुक्त नौसैनिक अभ्यास किया। यह अभ्यास प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की चीन यात्रा का परिणाम था।''[10]

''बांग्लादेश की विचारधारा से चीन के साथ स्थिर और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने लगे। जब तक बांग्लादेश पाकिस्तान का अंग रहा तथा नि-विन की म्यॉमार सरकार से भारत दूर रहा तब तक चीन नागा और मिजों तथा अन्य जातिगत अलगाववादी समुदायों को समर्थन देता रहा जो भारत से अलग होना चाहते थे, परन्तु भारत और चीन के बीच संबंधों के धीरे-धीरे सामान्य बनने के साथ-साथ चीन ने इन अलगाववादी समूहों को समर्थन देना बंद कर दिया। भारत की दृष्टि से यह एक सकारात्मक कदम है।''[11]

एशिया के बारे में चीन के कुछ विचारों का वर्णन करना भी जरूरी है। पहला, चीन में यह भावना मौजूद है कि इक्कीसवीं सदी में चीन एशिया की महाशक्ति होगा। इसी आकांक्षा के कारण चीन दक्षिण एशिया में अपने प्रभुत्व पर विचार करता है। भारत के हितों के संबंध में चीन, पाकिस्तान के साथ अपने संबंध बनाए रखेगा तथा नेपाल, बांग्लादेश तथा कुछ सीमा तक भूटान के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाएगा। दक्षिण एशिया के लोगों के विकास तथा इस क्षेत्र में स्थिरता लाने के लिए आवश्यक है कि भारत और चीन के बीच सामान्य सम्बन्ध हों। दोनों पक्षों को अतीत की यादों तथा आशंकाओं पर आधारित विरोध या कटुता समाप्त कर देना चाहिए। दक्षिण एशिया के अन्य देश भी भारत और चीन को सामान्य द्विपक्षीय सम्बन्धों को विकसित करने और इन सम्बन्धों को समर्थन देने के लिए प्रोत्साहित करके इस प्रक्रिया में अपना योगदान दे सकते हैं। चूंकि नेपाल, भूटान, म्यॉमार, भारत चीन की सीमाओं पर स्थिति है, इसलिए ये देश इस प्रक्रिया में विशेष सकारात्मक भूमिका निभा सकते हैं।

(द) ASEAN एवं दक्षिण एशिया

'एसियन' या आसियान का पूरा नाम 'दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्र संघ' (Association of south-East Asian Nations-AESAN) है। यह इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलीपीन्स, सिंगापुर तथा थाइलैण्ड का एक प्रादेशिक संगठन है। 1967 में दक्षिण- पूर्व एशिया के पांच देशों ने क्षेत्रीय सहयोग के उद्देश्य से 'आसियान' नामक असैनिक संगठन का निर्माण किया और 8 अगस्त, 1967 को बैंकाक में एक सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर इसके निर्माण की औपचारिक घोषणा की। बाद में 1984 में ब्रुनेई भी इसका सदस्य बना। प्रारम्भ में वियतनाम, लाओस, कम्बोडिया तथा म्यांमार को प्रेक्षक का दर्जा प्रदान किया गया था। 1995 में वियतनाम को तथा 30 अप्रैल, 1999 को कम्बोडिया को पूर्ण सदस्यता प्रदान कर दी गई। इसके साथ ही आसियान की सदस्य संख्या अब 10 हो गई है जिसमें इण्डोनेशिया मलेशिया, फिलीपीन्स, सिंगापुर, थाईलैण्ड, ब्रूनेई, वियतनाम, लाओस, म्यांमार एवं कम्बोडिया सम्मिलित है। "आसियान देशों ने भारत को अपना आंशिक सहयोगी बना लिया है। 24 जुलाई, 1996 को भारत को आसियान का पूर्ण संवाद सहभागी बना लिया गया है। आसियान का केन्द्रीय सचिवालय जकार्ता (इण्डोनेशिया) में है और उसका अध्यक्ष महासचिव होता है।"[12]

भारत हमेशा से अपने पड़ोसियों के प्रति मित्रता का भाव रखता रहा है चाहे दक्षिण एशिया के देशों के प्रति हो या दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ हो। विशेषकर प्रधानमंत्री वाजपेयी ने दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के साथ सम्बन्धों को मजबूत करने का विशेष प्रयास किया है। नवम्बर, 2000 में म्यांमार के वाइस चेयरमैन जनरल आई की भारत यात्रा से म्यांमार के साथ सम्बन्धों में एक नई शुरूआत हुई। म्यांमार भारत के लिए सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है यह भारत को दक्षिण पूर्व एशिया के साथ भौगोलिक रूप से जोड़ता है। 9 नवम्बर, 2000 को भारत के राष्ट्रपति के0आर0 नारायणन की सिंगापुर यात्रा के दौरान दोनों देशों ने पारस्परिक सम्बन्धों को मजबूत बनाने का प्रयास किया। सिंगापुर ने आसियान देशों के उपक्षेत्रीय संगठनों में भारत के प्रवेश के प्रयास किए हैं। सिंगापुर को दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय सहयोग में वृद्धि के लिए प्रवेश द्वार माना जाता है। भारत की पूर्वोन्मुखी नीति (Look east policy) को बढ़ावा देने के लिए प्रयासों के तहत दोनों देशों के बीच तीन समझौतों पर हस्ताक्षर हुए।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने जनवरी, 2001 में एक उच्चस्तरीय शिष्टमण्डल के साथ दक्षिण पूर्व एशिया के दो राष्ट्रो वियतनाम व कम्बोडिया की यात्रा की। वियतनामी प्रधानमंत्री फान वान खाई के साथ द्विपक्षीय व अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मुद्‌दों पर वार्ता के बाद परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण उपयोग तथा संस्कृति व कला के क्षेत्रों में पाँच समझौते किए। शिखरस्तरीय वार्ताओं के पश्चात भारत व इण्डोनेशिया के मध्य पारस्परिक महत्व के 5 समझौतों पर हस्ताक्षर हुए जिसके तहत भारत इण्डोनेशिया को निगरानी नौकाओं की आपूर्ति करेगा तथा इण्डोनेशिया पोतों की मरम्मत की सुविधाएं प्रदान करेगा। यह पहला अवसर था जब इण्डोनेशिया के साथ भारत ने रक्षा क्षेत्र में कोई समझौता किया हो।

मई, 2001 में प्रधानमंत्री वाजपेयी की मलेशिया यात्रा का स्पष्ट संकेत यह है कि दक्षिण-पूर्व एशिया के इस समृद्ध और सुदृढ़ अर्थव्यवस्था वाले देश के साथ भविष्य के रिश्तों का आधार अब आपसी व्यापार होगा। यह तय किया गया कि दोनों देश मौजूदा व्यापार को बढ़ाकर अगले तीन वर्षो में दुगना (2.5 अरब से 5 अरब डॉलर) कर लेंगें। अप्रैल, 2002 में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने सिंगापुर तथा कम्बोडिया की यात्रा की। सिंगापुर के राष्ट्रपति गोह चोक तोंग के साथ द्विपक्षीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर वार्ता हुई। आतंकवाद के मामले बातचीत के प्रमुख मुद्‌दों में शामिल थे। 9 अप्रैल, 2002 को वाजपेयी कम्बोडिया पहुँचें। पांच दशकों के बाद किसी भारतीय प्रधानमंत्री की कम्बोडिया यात्रा थी।

भारत की दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में बढ़ती रूचि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदाहरण 'मेकांग गंगा परियोजना' है। 6 राष्ट्रों के इस समूह में भारत व लाओस के अतिरिक्त मेकांग नदी के अन्य तटीय राष्ट्र म्यांमार, थाईलैण्ड, कम्बोडिया व वियतनाम शामिल हैं। प्रारम्भ में पर्यटन, संस्कृति तथा शिक्षा के क्षेत्रों में सम्बन्धों में दृढ़ता लाने के पश्चात व्यापार निवेश एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में भी सम्बन्धों में मजबूती लाने की दिशा में समूह (MGC) द्वारा कदम उठाए जाएंगे। 'मेकांग गंगा सहयोग' (MGC) का गठन दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों में सुदृढ़ता लाने की दिशा में नई पहल कहा जा सकता है।

आसियान क्षेत्रीय मंच की 11 वीं वार्षिक बैठक 2 जुलाई, 2004 को जकार्ता में सम्पन्न हुई। इस बैठक में पाकिस्तान को ए०आर०एफ० के 24 वे सदस्य के रूप में शामिल करने का निर्णय लिया गया। पाकिस्तान ने आश्वासन दिया है। कि वह इस मंच से द्विपक्षीय मुद्दे नहीं उठाएगा। बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका तथा मालद्वीव (सार्क के देशों) ने भी ASEAN के साथ सहयोगपूर्ण नीति अपनाकर एक दूसरे के विकास में सहायक सिद्ध हो रहे हैं तथा आपसी विकास के प्रति समर्पित हो रहे है।

(य) सार्क (SAARC) एवं दक्षिण एशिया

दक्षिण एशिया में उप-क्षेत्रीय शक्ति के रूप में भारत सदैव ही अपने पड़ोसी देशों के साथ उपयोगी द्विपक्षीय सम्बन्ध स्थापित करने तथा दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के साथ सांस्थानिक सहयोग का विकास करने में रूचि रखता आ रहा है। इसी का परिणाम है कि अफगानिस्तान को भी सार्क का सदस्य बनाने पर सहमति हो गई है। भारत ने क्षेत्रीय सहयोग के संगठन बनाने का प्रमुख उद्देश्य यह माना है कि -

1. दक्षिण एशिया के लोगों का कल्याण करना तथा उनके जीवन का स्तर सुधारना।
2. आर्थिक विकास, सामाजिक उन्नति तथा सांस्कृतिक विकास में तेजी लाना।
3. दक्षिण एशिया के देशों के बीच स्वावलम्बन को प्रोत्साहित करना।
4. परस्पर मेल-मिलाप द्वारा एक दूसरे की समस्याओं को हल करने का प्रयास करना।
5. आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तकनीकी तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में सक्रिय सहयोग तथा परस्पर सहायता को प्रोत्साहन देना।
9. अन्तर्राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय संगठनों के साथ, जिनके उद्देश्य तथा लक्ष्य इनसे मिलते जुलते हों, सहयोग करना।

सार्क संगठन के हुए विभिन्न सम्मेलनों में दक्षिण एशिया के राष्ट्रों के मध्य परस्पर सहयोग विकसित करने पर विभिन्न तरह से जोर दिया गया। अब तक 14 सार्क सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं। जिसमें निम्न फैसले लिए गए-

ढाका शिखर सम्मेलन (1985) : ढ़ाका में सम्पन्न प्रथम शिखर सम्मेलन में (बांग्लादेश के राष्ट्रपति एच०एम० इरशाद की अध्यक्षता में) निर्णय लिया गया कि दक्षिण एशिया के सातों देशों के मध्य द्विपक्षीय एवं विवादास्पद मामलों पर बातचीत नहीं की जाएगी। निर्णय सर्वसम्मति से किया जाएगा।

बंगलौर शिखर सम्मेलन (1986) : प्रधानमंत्री राजीव गांधी की अध्यक्षता में हुए दूसरे शिखर सम्मेलन में पांच नए क्षेत्रों में भी सहयोग के लिए सार्क के प्रयत्नों को विस्तृत करने पर जोर दिया गया। ये क्षेत्र थे- दक्षिण एशियाई सूचना प्रसारण प्रोग्राम, पर्यटन को प्रोत्साहन, विद्यार्थियों तथा बुद्धिजीवियों को सुविधाएं प्रदान करना तथा युवकों के आदर्शवाद का सकारात्मक प्रयोग। यह निर्णय लिया गया कि

सदस्य राज्य दूसरे राज्य के विरूद्ध आतंकवाद की गतिविधियों को अपनी जमीन पर न पनपने देना। ''महाशक्तियों को आह्वान किया कि वे दुनिया में शान्ति का वातावरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के लिए सम्मानपूर्वक वातावरण बनाने के लिए प्रभावशाली पग उठाएं।''[13]

काठमाण्डू शिखर सम्मेलन (1987) : दक्षिण एशिया से आतंकवाद को समाप्त करने, दक्षिण एशिया खाद्य भण्डार बनाने तथा काठमाण्डू घोषणा पत्र को अपनाने जिसमें व्यापार उद्योग विकास प्रबन्ध तथा पर्यावरण के संरक्षण से सम्बद्ध क्षेत्रों में सामूहिक प्रयत्नों को और अधिक तेज करने पर निर्णय हुआ।

इस्लामाबाद शिखर सम्मेलन (1988) : बेनजीर भुट्टो की अध्यक्षता में हुए सम्मेलन में आतंकवाद के सफाए पर जोर दिया गया तथा पाकिस्तान प्रायोजित 'सार्क 2000' जो आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए था को अपनाया गया तथा राजीव गांधी द्वारा प्रतिपादित क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग तथा स्वतन्त्र सूचना प्रसार विकसित करने के सुझावों को स्वीकार किया गया।

माले शिखर सम्मेलन : (1990) नशीले पदार्थो की तस्करी पर रोक, तीन-संस्थाओं मानव संसाधन विकास केन्द्र इस्लामाबाद, क्षेत्रीय टी०वी० केन्द्र काठमाण्डू तथा क्षेत्रीय प्रतिलिपि केन्द्र नई दिल्ली की स्थापना का निर्णय लिया गया। कुवैत से ईराकी सेनाओं की वापसी का आह्वान किया गया।

कोलम्बो शिखर सम्मेलन (1991) : ''दक्षिण एशिया में आतंकवाद को रोकने के लिए व्यापक सहयोग तथा सूचनाओं का आदान-प्रदान करने, निरस्त्रीकरण पर बल, मानवाधिकार, सदस्य देशों के बीच व्यापार के उदारीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संस्थागत ढांचे में सुधार, गरीबी उन्मूलन के लिए सार्क समिति की स्थापना आदि संवेदनशील मुद्दों पर जोर दिया गया।''[14]

ढ़ाका शिखर सम्मेलन (1993) : सातवें सम्मेलन में आतंकवाद के खिलाफ संयुक्त अभियान, आपसी आर्थिक सहयोग का घोषणा पत्र स्वीकार करने और दक्षिण एशिया वरीयता व्यापार समझौते की मंजूरी पर बल दिया गया।

नई दिल्ली शिखर सम्मेलन (1995) : इस सम्मेलन में, परमाणु निःशस्त्रीकरण की मांग पर जोर दिया गया। 2002 तक दक्षिण एशिया से गरीबी को समाप्त करने पर जोर दिया गया तथा 20वीं शताब्दी

के अन्त तक निरक्षरता की समाप्ति पर जोर दिया गया और सभी देशों द्वारा SAPTA को लागू करना स्वीकार किया गया। 1995 को 'दक्षेस गरीबी उन्मूलन वर्ष' तथा 1996 को 'दक्षेस साक्षरता वर्ष' घोषित किया गया।

माले शिखर सम्मेलन (1997) : भारत के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया गया कि 2001 तक इस क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र बना देना चाहिए, अनौपचारिक राजनीतिक विचार विमर्शो को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि तनावों को क्षेत्र से कम किया जा सके। सन् 2002 तक दक्षिण एशिया से गरीबी की समाप्ति किये जाने के उद्देश्य को पूर्ण करना था।

कोलम्बो शिखर सम्मेलन (1998) : दसवां शिखर सम्मेलन भारत तथा पाकिस्तान द्वारा मई, 1998 में किये गये परमाणु परीक्षणों द्वारा उत्पन्न तनावों की छाया में हुआ तथा सम्मेलन में इस बात पर चर्चा की गई कि सभी परमाणु शस्त्र धारक देशों का प्रभावी निःशस्त्रीकरण की दिशा में कार्य करना चाहिए तथा दक्षिण एशिया की स्थिति को एक अलग रूप से नहीं देखा जाना चाहिए। यह भी घोषित किया गया कि दक्षिण एशिया की शान्ति सुरक्षा तथा स्थिरता विश्व सुरक्षा वातावरण के सन्दर्भ में न कि अपने आप में अकेले ही परखी जानी चाहिए। भारत ने इस सम्मेलन में सक्रिय भूमिका निभाई तथा 1 अगस्त, 1998 को भारत ने लगभग 200 वस्तुओं के सम्बन्ध में आयात प्रतिबन्धों को प्राथमिकता के आधार पर समाप्त कर दिया तथा दक्षिण एशिया के शेष सदस्य देशों के लिये भारतीय बाजारों में पहुंच को आसान बना दिया।

काठमाण्डू शिखर सम्मेलन (2002) : सार्क नेताओं ने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से आतंकवाद के दुष्प्रभावों से निपटने के लिए कहा तथा आपसी आर्थिक सहयोग, गरीबी उन्मूलन, स्त्रियों, बच्चों सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों के प्रति विशेष ध्यान, शिक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक, आर्थिक वातावरण छोटे राज्यों की सुरक्षा तथा विश्व व्यापार संघ के साथ सम्बन्धित मुद्दो पर आपसी तालमेल बढ़ाने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया।

इस्लामाबाद शिखर सम्मेलन (2004) : इस 12वें शिखर सम्मेलन में दक्षिण एशियाई देशों में आर्थिक सहयोग बढ़ाने की दिशा में एक अच्छी सफलता प्राप्त की तथा सार्क के अधिक व्यापक और

गहन आर्थिक सहयोग संगठन के रूप में आवश्यक कार्य करने के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

''सार्क का 13वां शिखर सम्मेलन ढ़ाका में 2005 को सम्पन्न हुआ जिसमें पूर्व प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा आतंकवाद को मिटाने की पहल को तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह द्वारा बढ़ाया गया तथा क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग के विकास, गरीबी उन्मूलन व ऊर्जा सुरक्षा के लिए ठोस उपाय सुझाए तथा दोहरे करारोपण से बचाव, वीजा नियमों में उदारता, दक्षेस पंचाट परिषद के गठन की चर्चा की गई।''[15] वर्ष 2007 में सार्क का 14वां शिखर सम्मेलन दिल्ली में हुआ जिसमें अफगानिस्तान को सार्क का 8वां सदस्य बनाया गया। अमरीका, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया तथा यूरोपीय संघ के प्रतिनिधियों ने पर्यवेक्षक के रूप में भाग लिया। 1 जनवरी, 2006 से दक्षेस देशों में दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार समझौता लागू हुआ। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने पांच सालों में सदस्य राष्ट्रों के बीच पर्यटना दुगना करने के लिए राजधानियों को सीधी उड़ानों से जोड़ने का भी ऐलान किया।''[16]

''दक्षिण एशिया को समृद्ध और विविधतापूर्ण मानव संसाधनों, नौजवान जनसंख्या, क्षेत्रों में व्यापार, के लिए विशाल व्यापार व्यापक ऊर्जा संसाधन और समृद्ध जैव विविधता की विरासत मिली है। हमारे पास दक्षिण एशिया को विश्व का आर्थिक ऊर्जा केन्द्र बनाने की संभावनाएं, प्रतिभा और संसाधन है। बस जरूरत राजनीतिक इच्छाशक्ति की है जो इसे मूर्त रूप दे सके।''[17] अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ने हमेशा ही दक्षिण एशिया को किसी न किसी तरह प्रभावित किया है। विश्व में शक्ति संतुलन के लिए दक्षिण एशिया एक महत्वपूर्ण भाग है क्योकि दक्षिण एशिया के देश भारत का चीन एवं रूस के साथ सम्बन्धों को बढ़ाना अमरीका को प्रभावित करता है तथा भारत को अमरीका के साथ लगाव चीन एवं रूस को चिंचित करता है। नेपाल तथा भूटान का चीन की तरफ झुकाव भारत को प्रभावित करता है एवं डियागोगार्सिया में अमरीकी सैन्य बलों की उपस्थिति श्रीलंका, भारत, मालद्वीव के लिए चिंता का विषय है। इन सब कारणों की वजह से दक्षिण एशिया आज केवल एशिया का ही महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील भाग नहीं है, अपितु विश्व को भी प्रभावित करने की क्षमता रखता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दैनिक भास्कर (समाचार पत्र), 9 सितम्बर, 2000।

2. स्वतन्त्र वार्ता (समाचारपत्र - हैदराबाद) 1 नवम्बर, 2002।

3. 8 सितम्बर, 2000 को न्यूयार्क में यू0एन0ओ0 में दिए गए भाषण के अंश।

4. स्वतन्त्र वार्ता (समाचार पत्र) 14 सितम्बर, 2002।

5. सिविल सर्विस क्रानिकल, अप्रैल 2006, पृ0 23-24।

6. यू0आर0 घईः भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर 2004, पृ-167।

7. सिविल सर्विसेज टाइम्स, अक्टूबर 2006, पृ0 50-51।

8. डॉ0 बी0एल0 फडियाः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (सिद्धान्त एवं समकालीन राजनीतिक मुद्दे) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2006, पृ0-457।

9. यू0आर0 घईः भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी जालन्धर, 2004 पृ0-213।

10. जे0एन0 दीक्षितः भारतीय विदेश नीति, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 2006, पृ0-380।

11. सिविल सर्विसेज टाइम्सः नवम्बर, 2004 पृ0, 24-25

12. डॉ0 बी0एल0 फडियाः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (सिद्धान्त एवं समकालीन राजनीतिक मुद्दे) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पृ0-638-639।

13. यू0आर0घईः भारतीय विदेश नीति न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी जालन्धर, 2004, पृ0-484।

14. डॉ0 बी0एल0 फडियाः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (सिद्धान्त एवं समकालीन राजनीतिक मुद्दे) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पृ0-645।

15. यूथ कम्पटीशन टाइम्सः आर0के0 पब्लिकेशन इलाहाबाद, पृ0-42।

16. प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2007, पृ0 2160-61।

17. 4 जनवरी 2004 को 12वें सार्क शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री वाजपेयी का भाषण, योजनाः फरवरी 2004, पृ0-8।

अध्याय-पंचम

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के पूर्व दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति

(अ) प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की दक्षिण एशिया के प्रति विदेश नीति (विदेश नीति के संस्थापक)

(ब) प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री एवं श्रीमती इन्दिरा गाँधी (1966-77) की दक्षिण एशिया के प्रति विदेश नीति;

(स) जनता सरकार में अटल बिहारी वाजपेयी की दक्षिण एशिया के प्रति ''विदेशमंत्री'' के रूप में भूमिका;

(द) प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी (1980-84) से संयुक्त मोर्चा सरकार के समय तक की दक्षिण एशिया के प्रति विदेश नीति;

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के पूर्व दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति :

"किसी भी राज्य की विदेश नीति मुख्य रूप से कुछ सिद्धान्तों, हितों एवं उद्देश्यों का समूह होता है जिनके माध्यम से वह राज्य दूसरे राष्ट्रों के साथ संबंध स्थापित करके उन सिद्धान्तों की पूर्ति करने हेतु कार्यरत रहता है।"[1] इसी तरह प्रत्येक राज्य की अपनी विदेश नीति होती है जिसके माध्यम से वे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने संबंधों का निरूपण करते हैं। सर्वप्रथम मॉडलस्की ने कहा था कि विदेश नीति "समुदायों द्वारा विकसित उन क्रियाओं की व्यवस्था है जिसके द्वारा एक राज्य दूसरे राष्ट्रों के व्यवहार को बदलने तथा अपनी गतिविधियों को अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में ढालने की कोशिश करता है।"[2] विदेश नीति परिवर्तन व यथास्थिति दोनों प्रकार की नीतियों का समन्वय होती है। बल्कि फेलिक्स ग्रास तो इससे भी एक कदम आगे निकल जाते हैं जब वे कहते है कि "कई बार किसी राज्य के साथ संबंध न होना या उसके बारे में कोई निश्चित नीति न होना भी विदेश नीति कहलाता है।"[3] इस प्रकार विदेश नीति के सकारात्मक व नकारात्मक दोनों पहलू होते हैं। वह सकारात्मक रूप से तब होती है जब वह दूसरे राज्यों के व्यवहार को बदलने का प्रयत्न करती है तथा नकारात्मक रूप में तब होती है जब वह दूसरे राज्यों के व्यवहार को परिवर्तित करने का प्रयास नहीं करती है।

इस प्रकार विदेश नीति उन सिद्धान्तों, हितों व उद्देश्यों के प्रति वचनबद्धता है जिसके द्वारा एक राज्य दूसरे राज्य के साथ अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में अपने सबंधों का निर्वाह करता है। जयन्तनुता बंद्योपाध्याय इन्हें राष्ट्रीय हितों के तीन मुख्य तत्वों के रूप में देखते हैं। वे है- "सुरक्षा, राष्ट्रीय विकास तथा विश्व व्यवस्था।"[4] उनका मानना है कि इनमें से 'सुरक्षा' राज्य के अन्तर्राष्ट्रीय अस्तित्व की पहली गारण्टी है। राष्ट्रीय विकास इसका आवश्यक तत्व है, तथा एक सुनिश्चित विश्व व्यवस्था एक राज्य के स्वतन्त्र अस्तित्व व विकास की न्यूनतम पूर्व शर्त है। विदेश नीति का निर्माण एवं संचालन विभिन्न निर्धारक तत्वों, संस्थाओं, प्रक्रियाओं तथा व्यक्तियों की अन्तक्रियाओं पर आधारित होता है। इसलिए इस प्रक्रिया में-

"1. नीति निर्धारकों। 2. विदेश नीति के सिद्धान्तों। 3. नीति के उद्देश्यों, हितों व लक्ष्यों। 4. शक्ति के निवेश एवं निर्गत। 5. विदेश नीति के संदर्भ, प्रतिक्रियाओं एवं संबद्ध भूमिकाओं का समावेश होता है।"[5]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विदेश नीति राज्य के मुख्य हितों, सिद्धान्तों एवं लक्ष्यों का ऐसा समूह है जिसके द्वारा राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति में कार्यरत रहता है। ''किसी भी विदेश नीति, विश्व परिस्थितियों के सदंर्भ में उस देश की आन्तरिक आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति होती है। वैसे, विद्वानजन, विदेश नीति की एक सर्वमान्य परिभाषा कर पाने में सक्षम नहीं है।''[6] ''समस्या यह है कि विदेश नीति एक ऐसे धरातल पर कार्य करती है कि उसे पूरी तरह से समझ पाना सम्भव नहीं है।''[7] विदेश नीति किसी देश के दृष्टिकोण, क्रिया-कलापों व उद्देश्यों को दर्शाता है, जो वह अन्य देशों व क्षेत्रों के साथ सम्बन्ध बनाते समय अपनाता है।

विदेश नीति किसी देश के द्वारा किये जाने वाले कार्यो का लेखा जोखा है, यह गम्भीर रूप से किसी देश की घरेलू स्थिति से प्रभावित होती है। विदेश नीति राट्रीय हित के संवर्धन का कार्य करती है। ''विदेश नीति का सम्बन्ध राज्य के उस व्यवहार से है जो वह अन्य राज्यों के साथ करता है।''[8] एक देश का दूसरे देश के साथ राजनीतिक, आर्थिक, सैनिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक आदि क्षेत्रों में सम्बन्ध हो सकता है। देशों के मध्य सहयोग का शत्रुता का या उदासीन सम्बन्ध हो सकता है। विदेश नीति के माध्यम से कोई देश यह प्रयास करता है कि अन्य देशों के व्यवहार इस प्रकार बदल जाय, तो उस देश के लिए लाभकारी हो, जैसे कि 1971 में भारत ने इस बात के लिए प्रयास किया कि पाकिस्तान को अमरीकी सैन्य व आर्थिक मदद न मिले।

अतः विदेश नीति का सारांश यह है कि राज्य के आर्थिक, राजनयिक प्रचार सम्बन्धी संसाधनों का इस प्रकार प्रयोग किया जाये कि अन्य राज्यों के व्यवहार में ऐसा परिवर्तन हो जिससे कि राष्ट्रीय हित को संरक्षण मिलें।''[9] विदेश नीति आज के व्यापार के स्वर्णिम और आवागमन के उन्नत साधनों के लौह तन्तुओं से बंधे विश्व में किसी भी देश की प्रगति का अहम साधन हो गयी है। अतः इसका निष्पक्ष एवं निर्भीक अध्ययन देश की उन्नति के लिए अपरिहार्य है।

(अ) प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की दखिण एशिया के प्रति विदेश नीति :-

पं० जवाहरलाल नेहरू को आधुनिक भारत का निर्माता कहा जाता है। चूंकि देश की बागडोर उस समय उनके हॉथों में थी और उनका व्यक्तित्व इतना विशाल था कि उन्होनें भारत को एक वैज्ञानिक सोच व दिशा देने का प्रयास किया जिसे आधुनिकता का अनिवार्य अंग भी माना जाता है। ऐसा करते समय उनके मस्तिष्क में भारत के अतीत का चित्र भी था कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान किन मूल्यों आदर्शो व दर्शन के लिए लड़ा। आजादी के बाद स्थिति चुनौतीपूर्ण थी। देश का विभाजन हो चुका था। सांप्रदायिक हिंसा का दौर चलने लगा। अतः तत्काल चुनौती यही थी कि इस हिंसा पर कैसे नियन्त्रण पाया जाय तथा भविष्य में देश को किसी अन्य विभाजन से कैसे बचाया जाय। भारत के पास अपनी शासन पद्धति निर्माण की भी चुनौती थी। आर्थिक रूप से देश बहुत पिछड़ा था तथा बेरोजगारी व निर्धनता व्याप्त थी। कृषि व उद्योग का विकास करना था जिसके लिए नवीन प्रौद्योगिकी की आवश्यकता थी जो भारत के पास नहीं थी।

विदेश नीति के स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण ऐसा था जिसमें अपनी स्वन्तन्त्रता को बचाने की चुनौती थी। नेहरू ने संविधान निर्माण, मिश्रित व्यवस्था, वैज्ञानिक शोध एवं विकास से लेकर वैदेशिक रिश्तों के निर्धारण तक में अहम भूमिका अदा की। वे कहा करते थे कि ''विश्व के किसी भी हिस्से में घटी किसी भी घटना के प्रभाव से हम अछूते नहीं रह सकते।''[10] जब नेहरू कालीन विदेश नीति की चर्चा की जाती है तो वह सामान्यतया कश्मीर, तिब्बत और गुटनिरपेक्षता के चारों तरफ घूमती है, लेकिन विदेश नीति के कुछ अन्य पहलू भी हैं जो नेहरू से सम्बन्धित हैं, और अन्य मुद्दों की भॉति समान रूप से महत्वपूर्ण भी हैं।

''संसदात्मक लोकतन्त्र में संसद, व्यवहार में कैबिनेट निर्णय लेने की सर्वोच्च संस्था होती है लेकिन भारत में नेहरू ही विदेश नीति पर प्रमुख आवाज थे। उनके निर्णय को कैबिनेट समर्थन प्रदान कर देती थी।''[11] विदेश में शिक्षा, मोतीलाल नेहरू की सन्तान होने के साथ-साथ जवाहरलाल, गांधी जी के भी प्रिय थे। गांधी जी की रूचि के कारण 1929 में उन्हें कांग्रेस की अध्यक्षता प्राप्त हुई। मद्रास की 1927 में कांग्रेस अधिवेशन के बाद नेहरू विदेश सम्बन्धी मुद्दों पर कांग्रेस के प्रवक्ता हो गए। नेहरू की विदेश नीति सम्बन्धी विशेषाधिकार आजादी के पूर्व से लेकर बाद तक (उनकी मृत्यु तक) बना रहा।

वे स्वयं अपने विदेश मंत्री भी रहे तथा अन्तरिम सरकार में भी विदेश मंत्रालय उन्हीं के पास था।''

''जिस व्यक्ति या समूह की चेतना जितनी दूरगामी होती है, उतनी ही व्यापक उसकी विश्व दृष्टि होती है।''[12] स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत ने पाया कि वह एवं चीन विश्व की बड़ी शक्तियां बनने की क्षमता एवं सम्भावना रखते है। विश्व की दो महाशक्तियों के मध्य तनाव बढ़ता जा रहा था। ''नेहरू की दृष्टि में ऐसे विश्व में भारत के लिए दो बातें आवश्यक थीं, प्रथम चीन के साथ मैत्री तथा दूसरी अमरीका सोवियत तनाव से दूर रहना।'' नेहरू की विश्व दृष्टि पर पाश्चात्य सोच का भी प्रभाव था क्योंकि उनकी शिक्षा पश्चिम में हुई थी। स्वतन्त्रता संघर्ष के प्रभाव के कारण वे नस्लवाद, साम्राज्यवाद के विरोधी हो गये। नेहरू ने विश्वास व्यक्त किया कि देशों के सोच एवं कार्य पर राष्ट्रवाद का प्रभाव पड़ता है। नेहरू ने व्यावहारिक दृष्टि से वैश्विक दृष्टिकोण के तीन पक्ष बताए है-

भूमण्डलीय दृष्टि - भारत की स्वतन्त्रता के समय शीतयुद्ध प्रारम्भ हो चुका था यूरोप द्वितीय श्रेणी की शक्ति रह गया था। पश्चिमी यूरोप पुनर्निर्माण के लिए अमरीका पर निर्भर था जबकि पूर्वी यूरोप सोवियत संघ का अनुगामी बना। इस परिप्रेक्ष्य में नेहरू ने भारत को गुटनिरपेक्षता की दिशा दी। यह नीति अमरीका के पृथकत्ववाद से इस रूप में भिन्न थी कि नेहरू ने दोनों गुटों के मध्य सेतु बंध की भूमिका निभाने का प्रयत्न किया। नेहरू ने विचार किया कि आखिर भारत तथा अफ्रीका एवं एशिया के देश अपने निर्णय लेने की शक्ति का दान क्यों कर दें। उन्होनें समझा कि बहुत से संघर्ष और विवाद तो यूरोपीय मतभेद व संघर्ष का विस्तार है। यूरोप और अमरीका की यह आदत बन गयी है कि वे अपने झगड़ों और विवादों को विश्व के झगड़े या विवाद मानते थे, उन्होनें विश्वास व्यक्त किया कि '' आज का बड़ा प्रश्न यह नहीं है कि यूरोप के देशों के मध्य सम्बन्धों को कैसे पुनः समायोजित किया जाय। एशिया के पास अपनी समस्या है। एशिया के प्रत्येक देश में भोजन, वस्त्र, शिक्षा और स्वास्थ्य की समस्या है। हम सीधे रूप से शक्ति राजनीति से सम्बद्ध नहीं है।''[13]

नेहरू विश्व में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद एवं नस्लवाद को मुख्य समस्या मानते थे। वे ''सौ फूलों को खिलने दो'' के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे जिसके अनुसार सभी विचारों को प्रगट किया जाना चाहिए। उन्होनें शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का मार्ग चुना। विश्व के छोटे-छोटे देशों को मिलाकर नेहरू ने एक बहुध्रुवीय शक्ति की परिकल्पना की जिसमें केवल कुछ ही देशों का आधिपत्य न हो। नेहरू की बड़ी

शक्तियों के आधिपत्य के विरोध का तात्पर्य यह नहीं था कि उनके साथ संघर्षपूर्ण सम्बन्ध बना लिए जायें बल्कि वे संघर्ष के स्थान पर सहयोग चाहते थे, वे अहिंसक विश्व व्यवस्था के स्वप्न दृष्टा थे।

महाद्वीपीय दृष्टि- नेहरू की महाद्वीपीय दृष्टि सामान्य रूप से पूरी तीसरी दुनिया से और विशेष रूप से नवोदित अफ्रीकी-एशियाई देशों से सम्बन्धित थी। ''द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पहला और विश्व का सबसे बड़ा देश होने के कारण भारत स्वयं को अफ्रीकी-एशियाई देशों का नेतृत्वकर्ता मानता था।''[14] अधिकांश अफ्रीकी-एशियाई देशों ने भारत की ही शांति गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण किया। बाद में 1961 में निर्गुट आन्दोलन का जन्म बेलग्रेड़ से हुआ। इसके प्रणेताओं में नेहरू, मिस्र के नासिर एवं यूगोस्लाविया के टीटो प्रमुख थे। अमरीका तथा यूरोप इस बात को नहीं महसूस करते थे कि एशियाई देशों की समस्या का समाधान एशियाई लोगों के विचार एवं सहयोग से किया जाए बल्कि लंदन, न्यूयार्क तथा पेरिस में ही बैठकर करते थे, जिसका नेहरू ने सिद्धांततः विरोध किया। उन्होनें इंस बात पर भी अफसोस जाहिर किया कि एशिया के देश स्वयं को यूरोप के संघर्षो से लिप्त कर लेते हैं। कभी-कभी वे स्वयं ऐसा करते हैं और कभी-कभी दबाववश ऐसा करना पड़ता है। इसलिए उन्होनें ऐसे देशों के लिए एक नए मार्ग की तलाश किया-गुटनिरपेक्षता का मार्ग।

क्षेत्रीय दृष्टि - नेहरू शुरू से ही एशिया के लिए विश्व में विशेष स्थान बनाए रखने का प्रयास करते रहे। वे एशियाई एकता को सुनिश्चित करना चाहते थे ताकि बाहरी ताकतों का मुकाबला किया जा सके। उनका लक्ष्य था एशिया में भारत के महत्व को बढ़ाना तथा पड़ोसी देशों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना। भारत के राष्ट्रीय हित सर्वाधिक इसी क्षेत्र से सम्बन्धित थे। संयुक्त राष्ट्र संघ में पं० नेहरू को विश्वास था क्योंकि उसे वे एक न्यायकारी संस्था मानते थे इसलिए जम्मू कश्मीर में पाकिस्तान के कबीलाई आक्रमण के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र में ले गये। लेकिन वहाँ पर पाकिस्तान के आक्रमण का तथ्य गौण होकर जम्मू कश्मीर के लिए जनमत संग्रह की मांग उठने लगी। ऐसा पश्चिम के दबाव में किया गया।

नेहरू पड़ोसियों के साथ शान्ति व मैत्री के आधार पर कार्य करते रहने का संकल्प लिए थे। चीन की मैत्री के लिए तिब्बत पर लचीला रूख अपनाया गया परन्तु इसकी परिणति 1962 के पराजय के रूप में हुई। इन दो विषयों पर आदर्शवादिता ने भारत के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला, जबकि नेपाल,

इंडोनेशिया एवं गोवा पर अपनायी गई नीति अन्ततोगत्वा लाभकर रही इन पर यथार्थवाद का पुट था। नेहरू की विश्व दृष्टि पर गौतमबुद्ध, अशोक, गांधी के विचार प्रभावी थे जिसका भारत की विदेश नीति के निर्धारण पर प्रभाव पड़ा।

नेहरू द्वारा दिखाए गए आदर्श अफ्रीका, एशिया और लातिन अमरीकी नेताओं की पीढ़ियों को मार्ग दिखाते रहेंगे। जो मार्ग उन्होनें दिखाया वह था गुट निरपेक्षता का मार्ग जिसका एक आधार स्तम्भ था शान्ति। नेहरू के अनुसार ''शान्ति को बनाए रखना भारतीय नीति का केन्द्रीय उद्देश्य है।''[15] 12 जनवरी, 1951 को लंदन से अपने प्रसारण में कहा- ''यदि हम शान्ति की आकांक्षा रखते हैं तो हमें शान्ति का स्वभाव विकसित करना होगा, और हमें उन लोगों को भी जीतने का प्रयास करना होगा, जो हमारे प्रति संशकित हैं या ये सोचते हैं कि वे हमारे विरुद्ध हैं। हम धमकी एवं युद्ध की भाषा बोलकर शांति की खोज नहीं कर सकते।''[16]

शांति की स्थापना के लिए आवश्यक है कि शक्ति न प्रयोग करने का व्रत लिया जाय क्योंकि हिंसा समस्या का समाधान करने की जगह, समस्या को बढ़ाती है। नेहरू स्वतन्त्रता संग्राम से सीखे थे कि राजनीतिक क्रिया के द्वारा भी विश्व में तनाव कम किया जा सकता है। वे मानते थे कि युद्ध से कटुता एवं घृणा उत्पन्न होती है। उन्होनें कहा कि ''शान्ति जीवन का रंग है युद्धों की निरन्तर तैयारियों के बीच शान्ति का स्वप्न देखना अपने आपमें एक विरोधाभाष है। पिछले झगड़ों, कटुताओं और विरोधों को भूलकर केवल सहनशीलता और क्षमाशीलता के वातावरण में ही शान्ति की स्थापना सम्भव है।''[17] साम्यवादी एवं गैर साम्यवादी दोनों मानते थे कि अपने सिद्धान्तों की रक्षा मात्र युद्ध की भाषा के द्वारा की जा सकती थी, लेकिन आधुनिक विश्व में हम उस स्थान पर खड़े हैं कि जब जबर्दस्ती अपने विचारों को थोपने का प्रयास असफल होना सुनिश्चित है।

नेहरू ने पाया कि शान्ति अफ्रीकी एशियाई देशों के हित में हैं क्योंकि शीतयुद्ध से वैसे ही खतरा था, लेकिन कहीं यदि युद्ध भड़क जाएगा तो यह विनाश और अर्थव्यवस्था के लिए संकट उत्पन्न करेगा। परमाणु आयुध द्वारा ढायी विनाशलीला (नागासाकी, हिरोशिमा) उनके दिमाग में थी। अतः वे परमाणु हथियारों के खतरे से दुनिया को आगाह कर रहे थे। परमाणु शस्त्र की होड़ के प्रति उन्होनें आवाज उठायी तथा कहा कि परमाणु शस्त्र मानव सभ्यता व मानवीय मूल्यों के लिए खतरा है। अतः उन्होनें शांतिपूर्ण

तरीके से विवादों के समाधान की बात की। विकासशील देशों के लिए सामाजिक-आर्थिक विकास जरूरी था। यदि वे युद्ध या हिंसा में लिप्त होते तो उनका संसाधन विकास पर खर्च नहीं हो पाता, जो कि त्वरित आवश्यकता थी। इसीलिए वे परमाणु निरस्त्रीकरण के साथ-साथ आम निरस्त्रीकरण की भी मांग कर रहे थे।

उपनिवेशवाद निश्चय ही पापपूर्ण है लेकिन यह समाप्त होने की तरफ अग्रसर है। शान्ति और युद्ध का प्रश्न उपनिवेशवाद के प्रश्न से कम महत्वपूर्ण नहीं है। नेहरू ने सोवियत संघ तथा अमरीका में दो प्रतिनिधिमण्डल भेजने की कवायद की जिससे उन देशों को भविष्य में परमाणु परीक्षण न करने के लिए मनाए। शान्ति प्राप्त करने के इसी प्रयास के अन्तर्गत भारत ने शुरू से ही सीटो, सेन्टो जैसे सैन्य गठबन्धनों का विरोध किया। भारत वारसा पैक्ट का भी विरोधी था क्योंकि सैन्य संगठनों से विश्व शान्ति को खतरा उत्पन्न हो जाता हे। ये सैन्य गठबन्धन युद्ध का वातावरण तैयार करते थे। ''इसलिए भारत ने दो महाशक्तियों के मध्य सेतु का कार्य करने का प्रयास किया, जिससे शान्ति की स्थापना की जा सके।''[18] तमाम युद्धों तथा विवादों में भारत ने शान्ति स्थापना के प्रयास किए। जैसे-कोरिया संकट 1950-53, हिन्दचीन 1954, स्वेज संकट 1956, पांडिचेरी के सम्बन्ध में समझौता आदि।

नेहरू ने यू0एन0ओ0 में शान्ति प्राप्त करने के लिए व्यापक विश्वास किया। यह माना कि यह विश्व संस्था जिसका उद्देश्य है- अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना, उसमें सफल होगी। लेकिन संयुक्त राष्ट्र से उन्हें सर्वाधिक निराशा जम्मू कश्मीर के प्रश्न पर हुई जो शान्ति स्थापना के स्थान पर पश्चिम के विचारों का इस मुद्दे पर पोषक के रूप में काम किया। ''नेहरू ने माना कि जहां तक हो सके समस्या का समाधान शान्तिपूर्ण हो तथा राजनीतिक हो।''[19] इसी कारण से नेहरू ने गोवा में शुरू में ही सैन्य कार्यवाही नही की। शक्ति प्रयोग करके भारत ने समस्या को कुछ घंटों में ही समाप्त कर दिया होता, भौतिक रूप से गोवा पर आक्रमण करने और इस पर अधिकार करने में कोई बाधा नहीं थी। लेकिन अहिंसा के सिद्धान्त में विश्वास के कारण ऐसा नहीं किया गया।

''नेहरू मात्र आदर्शवादी ही नहीं थे बल्कि यथार्थवादी भी थे।''[20] ''उन्होनें इसे ज्यादा विवेकपूर्ण समझा कि राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर व्यापक दृष्टिकोण अपनाया जाए, जिसमें आदर्शवाद एवं यथार्थवाद दोनों का सामंजस्य बिठाया जाए जितनी कि परिस्थितियां अवसर प्रदान करें।''[21] नेहरू ने

यथार्थवादी बने रहने का प्रयास किया जिससे कि भारत में शक्तिशाली राज्य की स्थापना किया जा सके। जिसमें सशक्त आर्थिक संरचनात्मक विकास, सैन्य बल, संवैधानिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था शामिल हो, साथ ही भारत के राष्ट्रीय हित को बढ़ावा दिया जा सके।

नेहरू जानते थे कि "विदेश नीति अथवा राज्य का कार्य करना न तो कोई धार्मिक है और न नैतिक ऊँचाईयों तक पहुँचाने वाली वायवी उड़ान।"[22] किसी भी देश का विदेशमंत्री चाहे वह साम्राज्यवादी, समाजवादी या साम्यवादी देश हो, सबसे पहले राष्ट्रीय हितों के सुरक्षा की चिन्ता करता है। "विदेश नीति अन्त में अर्थ नीति से जन्मती है।"[23] नेहरू ने राष्ट्रीय हित को दो तरह से देखा है-संकीर्ण या क्षणिक राष्ट्रीय हित जैसा कि लोग आमतौर पर देखते है, व्यापक राष्ट्रीय हित जिसका अर्थ होता है विश्व शान्ति, राष्ट्रों की मैत्री, पड़ोसी देशों का अभ्युदय जिसमें अपना राष्ट्रीय हित अपने आप सध जाता है। इस तरह के यथार्थवाद के प्रति उनकी अरूचि थी जो अपनी नाक को ही देखता रहता है वह और कुछ नहीं देखता और ठोकरों पर ठोकर खाता है।

इस प्रकार स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अपने विचारों को व्यक्त करते हुए नेहरू ने कहा- लक्ष्य निर्माण करते समय उसका लक्ष्य आदर्शवादी होना जरूरी है, किन्तु साथ ही यथार्थवादी भी। यदि वह नीति आदर्शवादी नहीं तो अवसरवादिता को जन्म देगी, और यदि वह यथार्थ से टूट गयी तो हो सकता है कि वह एक प्रभाव रहित साहसिकता मात्र रह जाए। वे भारत की शक्ति को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप से बढ़ाकर इसका प्रयोग निर्धनता से लड़ने, प्रादेशिक एकता बनाए रखने तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने के लिए करना चाहते थे। वे चाहते थे कि सुरक्षा के लिए सैन्य तैयारी की जाय पर दूसरे देशों पर प्रभुत्व के लिए नहीं। 1951 में नेपाल पर चीन के दबाव की आशंका होते ही, भारत ने दोनों के मध्य औपचारिक वार्ता या संधि की प्रतीक्षा न करके अपनी ही तरफ से सैनिक सहायता का वचन दिया। इसी प्रकार फरवरी 1949 में दिल्ली में राष्ट्र मंडल देशों की अर्द्ध सरकारी बैठक में वर्मा सरकार को साम्यवादी विद्रोहियों से बचाने के लिए उपायों पर चर्चा की गई। यथार्थवाद के कारण ही भारत ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता ग्रहण की।

राष्ट्रमंडल की सदस्यता के विषय में नेहरू ने कहा कि हमने राष्ट्रमंडल की सदस्यता इसलिए ली है कि यह हमारे लिए लाभप्रद है और हमारे हेतु में वृद्धि करता है। "आज के विश्व में कई शक्तियाँ विघटन के कार्य कर रही हैं। हम प्रायः युद्ध के निकट पहुंच जाते है। मैं समझता हूँ इसलिए यह उचित नहीं हैं कि हम किसी उस संगठन को तोड़ दे जो पहले से मौजूद है, बल्कि हम इसकी बुराइयों को समाप्त कर दें- और बेहतर है कि इसे सहयोगकारी बनाए।"[24] नेहरू वैसे तो निरस्त्रीकरण की मांग करते थे परन्तु महाशक्तियों द्वारा असाधारण सैन्य क्षमता प्राप्त करने की आंकाक्षा के कारण उन्होनें महसूस किया कि भारत के परमाणु विकल्प को बंद नहीं करना चाहिए। उन्होनें परमाणु ऊर्जा के महत्व को समझा। गोवा के प्रश्न पर भी यथार्थवाद की झलक मिलती है।

नेहरू के ऊपर आदर्शवाद का प्रभाव भी काफी पड़ा। महत्मा गांधी की सानिध्यता व स्वतन्त्रता संग्राम के आदर्श व मूल्यों ने उनके ऊपर व्यापक प्रभाव डाला। विश्व शान्ति की वकालत, अहिंसा के सिद्धान्त में विश्वास नस्लवाद, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद का विरोध, पंचशील के सिद्धान्त, सभी इसी आदर्शवाद के उपज थे। वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में सुधार चाहते थे ताकि तनाव कम हो सके, संघर्षो का समाधान हो सके। निर्धनता, स्वास्थ्य और शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण हो सके। चीन की मैत्री की आशा आदर्शवाद से प्रभावित थी। उन्हें कभी यह आशा नहीं थी कि चीन भारत पर आक्रमण करेगा, इसीलिए तिब्बत के सवाल पर भारत ने पर्याप्त नरमी का दृष्टिकोण अपनाया।

इसी प्रकार जम्मू कश्मीर के प्रश्न पर उन्हें सलाह दी गयी कि इस विषय को संयुक्त राष्ट्र में नही ले जाना चाहिए क्योंकि शीतयुद्ध के दौर में यह राजनीति का शिकार हो सकता है; पर संयुक्त राष्ट्र संघ में उनके विश्वास और माउंटबेटन की सलाह पर इसको ले जाया गया, वह भी तब जब भारतीय सेना जम्मू कश्मीर में लगातार घुसपैठियों को पीछे धकेल रही थी। नेहरू की गुट निरपेक्षता की नीति यथार्थवाद एवं आदर्शवाद दोनों के मूल्यों को रेखांकित करती है।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यूरोप के देशों को काफी हानि हुई। अतः युद्ध के बाद उनके सामने यह चुनौती थी कि वे कैसे अपना पुनर्निर्माण करें। इस कार्य के लिए "ट्रूमैन-सिद्धान्त" तथा "मार्शल योजना" अमेरिका द्वारा घोषित किया गया। चीन में 1949 में साम्यवादी क्रान्ति के बाद नयी सरकार सत्ता में आयी जो तिब्बत, नेपाल, सिक्किम आदि पर अपना दावा किया। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान मित्र देशों

ने उपनिवेशों से वायदा किया था कि वे युद्ध में उनका साथ दें और जैसे ही युद्ध खत्म हो जाएगा उन्हें आत्म निर्णय का अधिकार दे दिया जाएगा और वे स्वतन्त्रता प्राप्त करेंगे। फलतः एशिया, अफ्रीका तथा लातिन अमेरिका के तमाम देशों को धीरे-धीरे स्वतन्त्रता मिलने लगी और विश्व में नवस्वतन्त्र देशों की एक श्रेणी उत्पन्न हुई। विश्व द्विध्रुवीय हो गया। तमाम देश किसी न किसी गुट में सम्मिलित हो गए।

शीतयुद्ध हो चुका था, भारत के समक्ष अमरीका की तरफ से उसके गुट की सदस्यता स्वीकार करने का प्रस्ताव आया जिसे नेहरू ने मना कर दिया। उन्होनें किसी भी गुट में शामिल न होने की बात की क्योंकि इससे भारत की स्वतन्त्रता नष्ट हो सकती थी। नेहरू द्वारा प्रस्ताव ठुकराए जाने के बाद अमरीका को अफसोस हुआ। ''अमरीका भारत को अपने प्रभाव क्षेत्र में मानता था। यह आशा नहीं की जा सकती थी कि भारत साम्यवादी प्रभाव क्षेत्र का भाग बनेगा। अमेरिका के एशिया में हित को इस बात से धक्का लगा कि भारत ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।''[25] तब से अमरीका भारत के प्रति आंशिक सहायता के साथ-साथ उसे रोकने की नीति अपनाई। भारत द्वारा अपनाई गई गुट निरपेक्षता की नीति पर हेनरी किसिंजर ने कहा ''मास्कों ने भी उन्हें उतनी परेशानी नही दी है जितनी की दिल्ली ने दी है।

जो सैन्य गठबन्धन बनाए एवं स्थापित किए गये भारत ने उनका विरोध किया। जैसे- ''दक्षिण पूर्व एशिया में सीटों का निर्माण हुआ। नेहरू ने सीटों का विरोध किया, क्योंकि इसमें वे देश भी सम्मिलित हो सकते थे जो देश इस क्षेत्र के नहीं हैं। ''मनीला संधि के माध्यम से आक्रमण की जो परिभाषा की गयी, नेहरू ने उसका प्रबल विरोध किया''[26] इस सन्धि में आक्रमण का अर्थ केवल दूसरे देश द्वारा हमला ही नहीं माना गया, बल्कि आक्रमण की स्थिति या आक्रमण के तथ्य को भी आक्रमण माना गया। इससे इन देशों को आन्तरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया, यदि वे चाहते। इससे इस क्षेत्र के देशों की एकता, सम्प्रभुता तथा स्वतन्त्रता पर प्रभाव पड़ा। नेहरू ने बगदाद संधि (सेण्टो) का भी विरोध किया। ''भारत ने संयोगवश 'सीटो', 'बगदाद संधि' व कोरिया संकट या हिन्द चीन समस्या पर जो भी दृष्टिकोण अपनाया वह अमरीकी हितों के प्रतिकूल रहा। अमेरिका ने दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय संतुलन बनाए रखने की नीति अपनायी।''[27]

पाकिस्तान को आर्थिक एवं सैन्य रूप से मदद देकर भारत को रोकने की नीति अपनायी गयी ताकि भारत इस क्षेत्र में उभरकर आगे न आ सके। भारत द्वारा अपनायी गयी गुट निरपेक्षता की नीति अमेरिका को पसंद नहीं आयी। 1962 के भारत-चीन युद्ध के दौरान भी अमेरिका क्षेत्रीय संतुलन कायम रखने की नीति पर चलता रहा। अमेरिका भारत को वायु सुरक्षा अपने नियंत्रण के अंदर देने का प्रस्ताव किया, लेकिन भारत को सैन्य आवश्यकताओं के क्षेत्र में आत्म निर्भर बनाने से इन्कार कर दिया। अमेरिका ने पाक को सुपरसोनिक जेट लड़ाकू विमान दिए पर भारत को देने से मना कर दिया।

सोवियत संघ भारत को अमरीकी प्रभाव में जाने से रोकने के लिए सैन्य व आर्थिक मदद देता रहा। वह भारत को स्वतन्त्र शक्ति का केन्द्र बनने की इच्छा पर सहानुभूति रखता था। सोवियत संघ दक्षिण एशिया में स्थायित्व सुनिश्चित करना चाहता था। दोनों ही महाशक्तियां अलग-अलग कारणों से भारत सहयोग का सम्बन्ध रखना चाहती थीं परन्तु चीन यह जानते हुए कि वह भारत में प्रभावशाली नहीं हो सकता, पाकिस्तान से मित्रता किया जो घोषित तौर पर भारत विरोध के लिए तैयार रहता था। चाऊ एन लाई ने 1956 और 1961 में कश्मीर के विषय पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया था कि कश्मीर के लोग भारत के साथ रहने की अपनी इच्छा पहले ही व्यक्त कर चुके हैं। उसके बाद चीन भारत से सीमा के प्रश्न पर कुछ सहूलियतें चाहता था जिसे न मिलने पर वह पाकिस्तान की तरफ रूख कर लिया। 27 फरवरी, 1962 को चाऊ एन लाई ने औपचारिक पत्र द्वारा विचार व्यक्त किया कि चीन कभी भी कश्मीर में भारत की सम्प्रभुता को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया है।

2 मार्च, 1963 को पाकिस्तान ने एक समझौते के द्वारा चीन को पाक अधिकृत कश्मीर के सामरिक महत्व के काफी क्षेत्र (लगभग 2000 वर्ग कि0मी0) दे दिया। इससे भारतीय सुरक्षा व विदेश नीति को झटका लगा। एक तरफ तो भू-भाग की हानि हुई (जो पहले ही 1962 के युद्ध में काफी हो चुकी थी) दूसरे, चीन पाकिस्तान का नया गठबन्धन उभरा। तब से चीन ने पाकिस्तान को हर एक मुद्दे पर साथ दिया। नेहरू जी यह मानते थे कि देश की स्वतन्त्रता और सम्प्रभुता को बचाने के लिए भारत की विदेश और रक्षा नीतियों में विकल्पों की स्वतन्त्रता का होना अनिवार्य है। ''नेहरू की दृष्टि में नए देश (भारत) की अधिकार शक्ति मात्र संवैधानिक लोकतंत्र की आंतरिक प्रक्रियाओं पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सम्प्रभुता स्थापित करने पर भी निर्भर है।''[28]

(ब) प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री एवं इन्दिरा गाँधी के समय दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेशनीति :

नेहरू के आदर्शवाद को दृष्टि में रखते हुए राष्ट्रीय हित की दृष्टि से प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने यथार्थवादी नीतियां अपनायी तथा पड़ोसी देशों के प्रति मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की। अप्रैल, 1965 में कच्छ को लेकर भारत-पाक युद्ध हुआ। इससे पूर्व दोनों में कच्छ का समझौता हुआ था। शास्त्री के नेतृत्व में भारत ने खुलकर युद्ध में भाग लिया तथा पाकिस्तान को पराजित किया। जब पाकिस्तान ने अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर सैनिक कार्यवाही आरम्भ की तो सैनिक विशेषज्ञों ने यह मत प्रकट किया कि इस स्थिति का यही तकाजा है कि विशाल पैमाने पर जवाबी आक्रमण किया जाये। शास्त्री ने बिना किसी हिचकिचाहट के विशेषज्ञों का तर्क स्वीकार कर लिया। इस युद्ध में पाकिस्तान की वायु और टैंक शक्ति तहस-नहस कर दी गई जबकि भारत की क्षति अपेक्षाकृत कम थी। युद्ध विराम रेखा पर स्थित महत्वपूर्ण हाजीपीर 'पास' पर कब्जा कर लिया। संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप के कारण दोनों के मध्य 22 सितम्बर, 1965 को युद्ध विराम की घोषणा हो गई।

सोवियत संघ ने प्रस्ताव रखा कि शास्त्री तथा अयूब खां ताशकन्द में मिले। कोसीजिन के प्रयास से 4 जनवरी, 1966 को सम्मेलन प्रारम्भ हुआ तथा 10 जनवरी, 1966 को ताशकन्द समझौते पर हस्ताक्षर हुए कि :

1. दोनों पक्ष जोरदार प्रयास करेंगे कि संयुक्त घोषणा पत्र के अनुसार भारत और पाकिस्तान में अच्छे पड़ोसियों के सम्बन्ध निर्मित हों। वे आपस में बल प्रयोग का सहारा न लेंगे और अपने विवाद को शान्तिपूर्ण तरीके से सुलझायेंगे।

2. दोनों देशों के सभी सशक्त सैनिक 25 फरवरी, 1966 के पूर्व उस स्थान पर वापस चले जायेंगे जहां वे 5 अगस्त, 1965 के पूर्व थे।

3. दोनों देश एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करेंगे।

4. दोनों देश एक दूसरे के विरूद्ध होने वाले प्रचार को निरूत्साहित करेंगे और दोनों देशों के मध्य

मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की वृद्धि करने वाले प्रचार को प्रोत्साहन देंगे।

5. दोनों देशों के मध्य राजनयिक सम्बन्धों को पुनः सामान्य किया जाएगा। दोनों देशों के उच्चायुक्त अपने पदों पर वापस जायेंगे।

6. आर्थिक-व्यापारिक सम्बन्ध बहाल किये जायेंगे तथा दोनों देश युद्ध बन्दियों का प्रत्यावर्तन करेंगे। एक दूसरे की हस्तगत की हुई सम्पत्ति की वापसी पर भी विचार करेंगे तथा आपस में मिलते रहेंगे।

इस समझौते के कारण भारत को वह सब प्रदेश पाकिस्तान को वापस देने पड़े जो उसने अपार धन एवं जन की हानि उठाकर प्राप्त किये थे, लेकिन शास्त्री जी ने पाकिस्तान के साथ शान्ति तथा मित्रता पूर्ण सम्बन्धों के विकास के लिए यह समझौता स्वीकार किया। अपने पड़ोसियों के प्रति अच्छे सम्बन्धों के तहत **श्रीलंका** के साथ भी अक्टूबर, 1964 में प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री और श्रीमती भण्डारनायके के बीच एक समझौता हुआ जिसमें निम्न बातें थी-

1. श्रीलंका में रह-रहे सभी भारतीय नागरिक जो अभी तक किसी भी देश के नागरिक नहीं है वे भारत या श्रीलंका में से किसी भी देश की नागरिकता अपनायें।

2. 9 लाख 75 हजार राष्ट्रीयताविहीन लोग हैं, इनमें से 3 लाख को श्रीलंका तथा 5 लाख 25 हजार को भारतीय नागरिकता प्रदान की जायेगी। 1.5 लाख लोगों का निर्णय भविष्य में होने वाले समझौते पर निर्भर करेगा।

3. 15 वर्षो में यह कार्य पूरा कर लिया जायेगा।

4. भारतीय अपनी कमाई हुई पूंजी को भारत ले जा सकेंगे लेकिन उसकी सीमा 4000 से कम नहीं होनी चाहिए।''[29]

नेपाल के सन्दर्भ में लालबहादुर शास्त्री ने सितम्बर, 1964 के मध्य एक समझौता किया। इसके अनुसार भारत ने नेपाल के लिए 9 करोड़ रुपयों की लागत से सीमावर्ती कस्बों सुगोली और मध्यपूर्व नेपाल में ओखरा घाटी के बीच 128 कि0मी0 लम्बी सड़क का निर्माण करने का निश्चय किया। कोसी

योजना को पूर्ण करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। कोसी योजना का उद्देश्य नेपाल को बाढ़ से बचाना, बिजली पूर्ति करना तथा सिंचाई में लाभ पहुंचाना था। दिसम्बर, 1965 में नेपाल नरेश ने भारत की यात्रा की। प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने विश्वास दिलाया कि नेपाल की पंचवर्षीय योजनाओं में भारत अधिकतम सहयोग करेगा। ''प्रधानमंत्री शास्त्री की नेपाल यात्रा से नेपाल की भारत-विरोधी नीति में कुछ कमी आयी।''[30]

प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी एवं दक्षिण एशिया :

विदेश नीति की दृष्टि से श्रीमती इन्दिरा गांधी के कार्यकाल को दो भागों में बांटा जा सकता है- पहला कार्यकाल 1966 से मार्च 1977 तक तथा दूसरा कार्यकाल जनवरी, 1980 से अक्टूबर, 1984 तक।

पाकिस्तान : जहाँ तक हमारें निकटतम पड़ोसी पाकिस्तान के साथ हमारें सम्बन्धों का सवाल है, इस दशक के आरम्भ में परिस्थितियाँ काफी अच्छी थीं। उसी समय ताशकन्द की जो घोषणा हुई थी, उससे दोनों देशों की समस्याओं को अच्छी तरह समझने का रास्ता खुला था। यदि इसे अच्छी भावना के साथ अमल में लाया जाता तो इससे भविष्य में भाई-चारे तथा शान्ति की आशा थी। सितम्बर, 1966 में दोनों देशों के सैनिक अधिकारियों के बीच यह निश्चय किया गया कि यदि सीमाओं पर कोई सैनिक गतिविधि हो तो इसकी पूर्व सूचना वे एक दूसरे को दे दें, लेकिन पाकिस्तान इसके बाद भी छुट-पुट छेड़छाड़ करता रहा। ताशकन्द समझौते के बाद से ही पाकिस्तान के प्रति रूसी रवैये में कुछ परिवर्तन आया, और जुलाई, 1968 में उसे रूस ने सैनिक सहायता देने का निश्चय किया। पाकिस्तान में अप्रैल, 1969 में अयूब खां के हाथों से सत्ता छिनकर जनरल याहिया खां के हाथों में आ गयी। याहिया खां ने भी भारत के प्रति जहर उगलना ही अपनी विदेश नीति का सिद्धान्त बनाया।

पाकिस्तान की मनोवृत्ति और रवैये में विकृति पैदा हो गई और फिर बाद की वे सब घटनाएं घटी जिसका दिसम्बर, 1971 में सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण सैनिक युद्ध में अन्त हुआ। इस युद्ध में इन्दिरा गांधी ने भारत को गौरवपूर्ण विजय प्राप्त करवायी। भारत-पाक युद्ध केवल 14 दिन चला और 16 दिसम्बर 1971 को ढ़ाका में पाक सेना के ले०ज० ए०के० नियाजी ने आत्म समर्पण पर हस्ताक्षर कर दिये। पूर्वी मोर्चे पर लगभग 1 लाख पाक फौजों ने आत्म समर्पण कर दिया, और पश्चिमी मोर्चे पर

भारत ने पाक की लगभग 1400 वर्ग मील भूमि पर कब्जा कर लिया। आत्म समर्पण के तुरन्त बाद ही श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 17 दिसम्बर की रात्रि को 8 बजे एक पक्षीय युद्ध विराम करते हुए पाक राष्ट्रपति जनरल याहिया खां से युद्धबन्दी प्रस्ताव को मान लेने की अपील की, जिसे स्वीकार करने के अलावा पाकिस्तान के पास और कोई चारा नहीं था।

इस पराजय के कारण पाकिस्तान में बड़ा असन्तोष उत्पन्न हो गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रपति याहिया खां का पतन हुआ और सत्ता जुल्फिकार अली भुट्टों के हांथ में आयी। भुट्टो और श्रीमती गांधी के बीच 3 जुलाई, 1972 को शिमला समझौते पर हस्ताक्षर हुए जिसमें दोनों सरकारें इस बात पर सहमत हुयी कि उनके राष्ट्राध्यक्षों की भविष्य में फिर भेंट होगी तथा शान्ति एवं समर्थन का प्रयास करते रहेंगे। इसमें युद्धबन्दियों एवं नागरिकों की वापसी, जम्मू कश्मीर का अन्तिम हल व कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने के प्रश्न शामिल हैं।

अप्रैल, 1974 में दोनों देशों ने 1971 के युद्ध के पहले एक दूसरे के बन्दी बनाकर रखे हुए सभी नागरिकों को वापस भेज देना स्वीकार किया। सितम्बर, 1974 में डाक और तार के संचार सम्बन्ध स्थापित करने के बारे में एक समझौता हुआ। दिसम्बर, 1974 में व्यापार समझौता हुआ। 1974 में जब भारत ने पोखरण में शान्तिपूर्ण उपयोग के लिए आणविक परीक्षण किया तो भुट्टों ने कहा कि पाकिस्तान भी अवश्य बम बनायेगा चाहे इसके लिए उसे घास ही क्यों न खानी पड़े। जनवरी, 1975 में दोनों देशों ने जहाज रानी समझौता किया। 24 फरवरी, 1975 को प्रधानमंत्री श्री इन्दिरा गांधी ने कश्मीर समस्या का अन्तिम रूप से समाधान करने के लिए शेख अब्दुल्ला से एक समझौता कर लिया। इसके अन्तर्गत शेख अब्दुल्ला को कश्मीर का मुख्यमंत्री स्वीकार किया गया और शेख ने कश्मीर को भारत का अंग माना।

श्रीलंका :''श्रीमती इन्दिरा गांधी ने श्रीलंका के साथ सम्बन्धों को दृढ़ बनाने के लिए 1967 में श्रीलंका की यात्रा की तथा दोनों प्रधानमन्त्रियों ने यह निश्चय किया कि समझौते (1964) के अधिकांश भाग के कार्यान्वयन के पश्चात ही शेष बचे राज्यविहीन नागरिकों के सम्बन्ध में निर्णय लिया जायेगा।''[31] नवम्बर, 1968 को प्रधानमंत्री डडली सेनानायके भारत आये। ''दोनों राष्ट्र इस बात पर सहमत हुए कि वह परस्पर सहयोग के साथ अपने अन्तःविरोधों को सुलझाने का प्रयास करेंगे।''[32] सन् 1970 के चुनावों

के उपरान्त श्रीमती सिरिमावों भण्डारनायके पुनः श्रीलंका की प्रधानमंत्री बनीं। उन्होनें भारतीय मूल के नागरिकों के स्वदेश प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया को शीघ्रता से आगे बढ़ाने पर बल दिया। 30 अप्रैल,1970 तक प्राप्त किये गये आवेदनों में 6 लाख 25 हजार प्रवासी भारतीयों ने श्रीलंका की नागरिकता प्राप्त करने हेतु आवेदन किया।" श्रीलंका की नागरिकता प्राप्त करने हेतु आवेदन करने वाले व्यक्तियों की संख्या 1967 के समझौते में निर्धारित संख्या की दुगने से भी अधिक थी।"[33]

"जून, 1971 में भण्डारनायके सरकार द्वारा भारत-सीलोन समझौता अधिनियम 1967 में संशोधन किया गया जिसका उद्देश्य श्रीलंका की नागरिकता प्रदान किये जाने वाले व्यक्तियों की संख्या को प्रवासी भारतीयों के स्वदेश प्रत्यावर्तन की संख्या के समानुपात में लाना था।"[34] "प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने अप्रैल, 1973 को श्रीलंका की यात्रा की। दोनों प्रधानमन्त्रियों द्वारा सहमति बनी कि प्रवासी भारतीयों के स्वदेश प्रत्यावर्तन की दर में बढ़ोत्तरी की जाये जो कि 1964 के समझौते में निर्धारित संख्या 35,000 की 10% वार्षिक की दर से होगी।"[35] जनवरी, 1974 में प्रधानमंत्री श्रीमती भण्डार नायके भारत की यात्रा पर आयीं जिसके तहत 1964 के समझौते में शेष बचें, 1,50,000 नागरिकता विहीन व्यक्तियों के सम्बन्ध में विचार विमर्श किया तथा यह निश्चित किया कि 75,000 व्यक्तियों को श्रीलंका की तथा शेष 75,000 व्यक्तियों को भारत की नागरिकता प्रदान की जाएगी।

इस प्रकार वर्षो से चली आ रही प्रवासी भारतीयों की समस्या का समाधान किया गया। 21 फरवरी 1974 को श्रीमती भण्डार नायके ने अपने भाषण में कहा- "भारत-श्रीलंका के मध्य की समस्या जो पिछले 40 वर्षो से चली आ रही थी का समाधान उनके कार्यकाल में ही सम्भव हो सका हैं।"[36] "1976 में एक समझौता किया जिसमें आर्थिक, सांस्कृतिक और तकनीकी क्षेत्र में दोनों के बीच सहयोग बढ़ाने पर बल दिया गया।"[37] प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने अगस्त, 1976 में कोलम्बों में आयोजित 'NAM' सम्मेलन में श्रीलंका गयी।

बांग्लादेश : 6 दिसम्बर, 1971 को भारत ने बांग्लादेश को मान्यता दे दी तथा 16 दिसम्बर, 1971 को स्वतन्त्र बांग्लादेश का निर्माण हुआ। श्रीमती गांधी के प्रयासों से 9 जनवरी, 1972 को शेख मुजीब को पाक जेल से रिहा कर दिया और 10 जनवरी, 1972 को भारत पहुंचने पर शेख ने श्रीमती गांधी का आभार व्यक्त किया तथा कहा, "भारत-बांग्लादेश एक असीम भाई-चारे में बंध गये हैं, उनका कृतज्ञ

राष्ट्र भारत की सहायता भुला नहीं सकेगा।'' स्वतन्त्र बांग्लादेश के निर्माण के समय से लेकर 1975 तक भारत-बांग्लादेश सम्बन्ध घनिष्ठ मित्रता के रहे। दोनों ही देश धर्म निरपेक्षता तथा पंचशील और गुट निरपेक्षता की नीति में विश्वास करते रहे। फरवरी, 1972 को शेख मुजीब भारत आए तथा मार्च, 1972 को श्रीमती गांधी बांग्लादेश गयीं।

19 मार्च, 1972 को भारत और बांग्लादेश के बीच एक मैत्री सन्धि हुई जिसकी अवधि 25 वर्ष थी इस सन्धि के द्वारा दोनों देशों ने एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने, एक दूसरे की सीमाओं का आदर करने, एक दूसरे के विरूद्ध किसी अन्य देश की सहायता नहीं करने, विश्व शान्ति एवं सुरक्षा को दृढ़ बनाने आदि का संकल्प लिया। दोनों देशों के मध्य व्यापार, आर्थिक तथा सांस्कृतिक समझौता भी सम्पन्न हुआ। अप्रैल, 1974 को भारत, पाक तथा बांग्लादेश के मध्य एक त्रिपक्षीय समझौता हुआ जिसके अनुसार सभी पाकिस्तानी युद्धबन्दी मुक्त कर दिये गये।

मई, 1974 में बांग्लादेश और भारत के मध्य सीमांकन सम्बन्धी समझौता हुआ जिसके अनुसार भारत ने दाहग्राम और अमरकोट का क्षेत्र बांग्लादेश को दे दिया और बांग्लादेश ने बेरूबाड़ी पर भारतीय अधिकार स्वीकार कर लिया। मई, 1974 में भारत ने बांग्लादेश को 40 करोड़ रुपये का ऋण देना भी स्वीकार किया 15 अगस्त, 1975 को शेख मुजीब की हत्या कर दी गयी। पहले खोदकर मुश्ताक अहमद और फिर 6 नवम्बर, 1976 को जस्टिस आबू सादात सयाम राष्ट्रपति बने। 30 जनवरी, 1977 को मेजर जनरल जिया-उर-रहमान ने मुख्य मार्शल लॉ प्रशासक बनकर सत्ता पर अधिकार कर लिया। शेख मुजीब के कार्यकाल में भारत-बांग्लादेश सम्बन्ध मधुर रहे।

नेपाल : अक्टूबर, 1966 में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने नेपाल की यात्रा की। उन्होनें नेपाल के पंचायती लोकतन्त्र की सराहना की और महाराजा महेन्द्र को दार्शनिक शासक कहकर पुकारा। चीन को सन्तुष्ट करने के लिए नेपाली प्रधानमंत्री मि. के.एन. बिष्ट ने 1969 में यह मांग रखी कि नेपाल से भारतीय सैनिक तथा कर्मचारी हटा लिए जाएं तथा भारत को संतुष्ट करने के लिए उसने दोनों देशों के बीच परम्परागत सम्पर्को को दृढ़ करने पर बल दिया। 1970 तथा 71 के समय में दक्षिण एशिया उपमहाद्वीप में जो परिवर्तन हुए उनके कारण एक ऐसा वातावरण पैदा हो गया जिसमें भारत के नेपाल के प्रति तुष्टीकरण नीति की अपेक्षा दृढ़ दृष्टिकोण अपनाया जाना सम्भव हो सका।

भारत तथा रूस के बीच भारत-रूस मैत्री संधि (1971), बांग्लादेश मुक्त करवाने में भारत की भूमिका ने इस क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा को चार चांद लगा दिए। नेपाल के साथ सम्बन्धों में भारत ने नेपाल सम्बन्धों के आधार के लिए पारस्परिकता के सिद्धान्त को अपनाने का निर्णय लिया। श्रीमती गांधी ने नेपाल के साथ व्यापार तथा पारगमन संधि के पुनः नवीनीकरण की समस्या पर कड़ा रवैया अपनाया जो कि नवम्बर, 1970 में पुरानी संधि के समाप्त हो जाने के बाद आवश्यक हो गया था।

दीर्घ कालीन बातचीत के बाद ही अगस्त, 1971 को सन्धि का नवीकरण किया गया। नेपाल, भारत से वांछित सभी रियायतें प्राप्त करने में असफल रहा तथा इससे नेपाल के प्रति भारत के दृष्टिकोण में परिवर्तन और अधिक स्पष्ट हो गया। सन् 1975 में भारत नेपाल सम्बन्ध उस समय तनावपूर्ण हो गए जब अपनी राजनीतिक व्यवस्था में सम्भावित परिणामों के कारण नेपाल ने सिक्किम के भारत में विलय के प्रति कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की। भारत ने नेपाल को तेल तथा पेट्रोलियम की आपूर्ति के विषय में दृढ़ रवैया अपनाया जिससे नेपाल के प्रधानमंत्री श्री एन०पी० रिज़ल द्वारा दिल्ली का दौरा तथा भारतीय वित्त मंत्री वाई०बी० चौहाण का नेपाल दौरे से दुराव कम हुआ लेकिन श्रीमती गांधी ने दृढ़ रवैया अपनाए रखा।

अक्टूबर, 1975 में महाराजा वीरेन्द्र भारत आये तथा श्रीमती गांधी ने आश्वासन दिया कि वे उसकी पंचवर्षीय योजनाओं में सहायता देंगी। भारत ने नेपालियों को भारत के विशेष क्षेत्रों में गतिविधियों पर भी इस आधार पर रोक लगा दी कि ये क्षेत्र सरंक्षित होने के कारण दूसरे देशों के नागरिकों के लिए निषिद्ध थे।'' इस प्रकार 1971-77 तक भारत के नेपाल के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे। ''पहले से सशक्त स्थिति ने भारत को नेपाल के साथ सम्बन्धों में इच्छित परिवर्तन लाने में सहायता प्रदान की।''[38]

भूटान : श्रीमती गांधी की दक्षिण एशिया के प्रति विदेश नीति के क्रम में भूटान को एक प्रभुसत्ता सम्पन्न देश माना तथा कहा कि वह भूटान की प्रभुसत्ता तथा आन्तरिक स्वायत्तता का पूरी तरह से सम्मान करता है। 1971 में भारत ने यू०एन०ओ० की सदस्यता के लिए भूटान का नाम प्रायोजित किया तथा इसने उन सभी धारणाओं को झुठला दिया जिनके आधार पर यह सोचा जाता था कि भारत भूटान पर आंख रखता था, इस घटना के बाद से भारत तथा भूटान के सम्बन्ध अधिक गहन तथा प्रौढ़ होते गये। भूटान भारत के साथ सम्बन्धों से पूर्णयता संतुष्ट है। भूटान दूसरे देशों के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना करने से परहेज करता है। यह 'चीन की टोह' से दूर ही रहा है।

बांग्लादेश के संकट के समय भूटान ने भारत को नैतिक समर्थन दिया तथा भारत के तुरन्त बाद बांग्लादेश को मान्यता प्रदान कर दी। जब 1975 में सिक्किम भारतीय क्षेत्र का एक भाग बन गया तो चीन ने भारत को यह समझाने का प्रयत्न किया कि भूटान का हाल भी सिक्किम जैसा ही होगा लेकिन भूटान ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। भारत ने हमेशा भूटान का आर्थिक तकनीकी सहयोग किया है।

(स) जनता सरकार में अटल बिहारी वाजपेयी की दक्षिण एशिया के प्रति "विदेशमंत्री" के रूप में भूमिका :

चूँकि शोधार्थी का शोध शीर्षक "दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति" (प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी के विशेष सन्दर्भ में) अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्रित्व काल की विदेश नीति के विषय में है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि अटलबिहारी वाजपेयी के विदेशमंत्री बनने के बाद दक्षिण एशिया के प्रति उस समय की नीति को भी संक्षिप्त रूप से रेखांकित किया जाए जिसे अटल बिहारी वाजपेयी ने आगे बढ़ाया। लोकसभा के छठे आम चुनावों में विजयी होने के पश्चात जनता पार्टी ने सर्वसम्मत से मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री घोषित किया तथा अटलबिहारी वाजपेयी विदेशमंत्री बने। जनता पार्टी ने अपने पड़ोसी देशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी।

पाकिस्तान :

मार्च, 1977 में भारत में जब जनता शासन की स्थापना हो गई और अटलबिहारी वाजपेयी विदेशमंत्री बने, तो भारत-पाक सम्बन्धों को लेकर संशय का वातावरण बन गया क्योंकि इससे पूर्व वाजपेयी जनसंघ के नेता थे तथा जनसंघ के नेता के रूप में हमेश ही उनका दृष्टिकोण पाकिस्तान विरोधी रहा। परन्तु सत्ता में आने के पश्चात यह धारणा बदल गई। इसी बीच 6 जुलाई, 1977 को पाकिस्तान में पुनः सैनिक क्रान्ति हो गई तथा भुट्टों को सस्त्ता से हटा दिया गया तथा सेनापति जनरल जिया-उल-हक ने मार्शल लॉ प्रशासक के रूप में अपने हाथ में सत्ता ले ली। इस अवसर पर भारत ने इसे पाकिस्तान का आन्तरिक मामला बताया। विदेशमंत्री वाजपेयी ने पाकिस्तान के साथ शान्ति के लिए कहा कि भारत "युद्ध नहीं समझौता" करने को तैयार है।

दक्षिण एशियाई देशों से मधुर सम्बन्ध बनाने की कड़ी में विदेशमंत्री वाजपेयी 6 फरवरी से 8 फरवरी, 1978 को पाकिस्तान की सद्भावना यात्रा की। "1965 के भारत-पाक युद्ध के बाद किसी भारतीय मंत्री की यह पहली पाकिस्तान यात्रा थी। विदेशमंत्री वाजपेयी ने दो बातों पर बल दिया-एक यह कि दोनों देंशों के बीच ठण्डे पड़े सम्बन्धों में कुछ गरमी पैदा की जाय और एक दूसरे के प्रति विश्वास जगाया जाय तथा दूसरा, वातावरण में तनाव कम करने के इस प्रयास में ऐसे मुद्दों पर लम्बी बहस टाल

दी जाए, जो ऐतिहासिक रूप से भारत और पाकिस्तान के बीच कटुता के कारण बनें हैं।''[39]

''विदेश मंत्री वाजपेयी ने पाकिस्तानी पत्रकारों के समक्ष पाकिस्तान के साथ जनता पार्टी सरकार के सम्बन्ध सुधारने के दृढ़ निश्चय को दोहराया और उस पर बल दिया।''[40] शिमला समझौते के प्रश्न पर वाजपेयी ने कहा कि ''नई सरकार सभी पुराने अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों का सम्मान करती है। शिमला समझौते से हम पूरी तरह बंधे हुए हैं। हालांकि मैंने स्वयं दिल्ली में शिमला समझौते के खिलाफ प्रदर्शन किया था, लेकिन वह अल्पमत का प्रदर्शन था, आज जनसंघ नहीं है, हम जनता पार्टी के घटक हैं, इसलिए हम सभी समझौतों का सम्मान करते हैं।''[41]

विदेशमंत्री वाजपेयी ने भारत की पाकिस्तान से मैत्री की इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि– '' मैं पाकिस्तान में दोनों देशों के बीच मित्रता व आपसी समझ के एक नये युग का सूत्रपात करने आया हूँ। हम इस दिशा में अपनी इच्छानुसार किन्तु सावधानी से आगे बढ़ें एवं अपने उद्देश्य की प्राप्ति में कोई रूकावट न आने दें।''[42]

विदेशमंत्री वाजपेयी की पाकिस्तान यात्रा का मूल उद्देश्य दोनों देशों के बीच जो वर्षो से कटुता का वातावरण था, उस वातावरण को बदलते हुए मधुर सम्बन्ध स्थापित करना था और वाजपेयी अपने इस उद्देश्य में सफल भी हुए। वाजपेयी की पाकिस्तान यात्रा के फलस्वरूप दोनों देशों के बीच व्यापार, संचार, आवागमन तथा परियोजनाओं के क्षेत्र में सहयोग का द्वार खुल गया। वीजा प्रक्रिया तथा सांस्कृतिक क्षेत्र से सम्बन्धित समझौतों पर भी सहमति हुई जिसके अन्तर्गत खिलाड़ियों, साहित्यकारों तथा कलाकारों का आदान-प्रदान हुआ। ''अप्रैल-मई 1978 में भारत और पाकिस्तान के बीच हॉकी टेस्ट मैचों की श्रृंखला खेली गई तथा अक्टूबर, 1978 में भारत की क्रिकेट टीम 28 वर्ष बाद पाकिस्तान गयी।''

''10 अप्रैल 1978 को जनरल जिया-उल-हक के विदेशी मामलों के सलाहकार आगाशाही ने भारत की यात्रा की, और 8 वर्ष से अधर में लटके हुए सलाल परियोजना के मसले को अन्तिम रूप देने में सफलता प्राप्त की।''[43] सलाल बिजली घर के निर्माण के साथ ही निश्चय किया गया कि इस योजना से उत्पन्न बिजली का प्रयोग भारत करेगा तथा चिनाव नदी का जल उपयोग करने का अधिकार पाकिस्तान का होगा।''[44] 4 अप्रैल, 1979 को पाकिस्तान के भूतपूर्व प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति श्री

जुल्फिकार अली भुट्टों को फाँसी दे दी गयी जिस पर प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई तथा विदेशमंत्री वाजपेयी ने इसे पाकिस्तान का आन्तरिक मामला बताया।

''विदेशमंत्री वाजपेयी की पाकिस्तान यात्रा से न तो कश्मीर समस्या के बारे में कुछ प्रगति हुई न ही पारगमन या साझा बाजार या अन्य किसी ठोस समस्या पर कोई निर्णय हुआ हाँ इतना अवश्य हुआ कि वाजपेयी अपने व्यक्तित्व से फौजी राष्ट्रपति को प्रभावित कर सके। यह दावा जरूर किया गया है कि जनता पार्टी के शासनकाल में पाकिस्तान के साथ भारत के व्यापार में वृद्धि हुई, सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ा, यातायात सामान्य रूप से चला।''[45]

पाकिस्तान के जन्म से लेकर अभी तक भारत-पाक सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं लेकिन फिर भी जनता शासनकालीन विदेशमंत्री वाजपेयी भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों में सुधार लाने में सफल हुए। उन्होनें पाकिस्तान को इस बात के लिए भी राजी कर लिया था कि कश्मीर के प्रश्न को कुछ समय के लिए स्थगित ही रखा जाय तो अच्छा होगा। अतः हम कह सकते है कि वाजपेयी के विदेशमंत्रित्व काल में भारत-पाक सम्बन्धों में अवश्य ही सुधार हुआ था।

श्रीलंका :

'' श्रीलंका में यूनाइटेड नेशनल पार्टी ने जे०आर० जयवर्द्धने के नेतृत्व में सरकार का गठन किया लेकिन एक महीने के बाद ही सिंहली पुलिसवालों ने जाफना पेनिनसुला आदि तमिल क्षेत्रों में अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। देखते ही देखते श्रीलंका में दंगे भड़क उठे, जो 1958 के दंगों से कहीं ज्यादा भयानक थे।''[46] हजारों लोग मारे गये। ''तमिल युवाओं ने भी सेना के विरूद्ध हथियार उठा लिये। परिणामस्वरूप आत्मरक्षा के लिए सिंहली बहुल क्षेत्रों में भारी संख्या में तमिल शरणार्थी उत्तर-पूर्वी की ओर आने लगे।''[47] ''बढ़ती आतंकवादी घटनाओं के कारण श्रीलंका ने 19 मई, 1978 को LTTE तथा कुछ अन्य संगठनों को प्रतिबन्धित कर दिया।''[48] 4 फरवरी, 1978 को श्रीलंका में संसदीय सरकार की जगह अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को अपना लिया गया जिसकी वजह से प्रधानमंत्री जयवर्द्धने संविधान परिवर्तन के कारण राष्ट्रपति बर्ने।

जनता सरकार ने श्रीलंका से सम्बन्ध बढ़ाने के लिए ईमानदारी भरा प्रयत्न किया। श्रीलंका के विदेशमंत्री ए0पी0एस0 हमीद ने अप्रैल, 1978 में भारत की यात्रा की। उन्होनें एक एशियाई साझामण्डी की तरह किसी आर्थिक समुदाय की स्थापना के प्रति अपने देश के सक्रिय प्रयासों का उल्लेख करते हुए घोषणा की कि गरीबी और बेरोजगारी के बोझ से दबी हमारे क्षेत्र की जनता को आर्थिक पट्टे करना हम सबका कर्तव्य है।

भारत-श्रीलंका के सम्बन्धों को मुधरतम बनाने के लिए 26 अक्टूबर, 1978 को श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्द्धने ने भारत की यात्रा की तथा प्रधानमंत्री देसाई एवं विदेशमंत्री वाजपेयी से अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर विचार-विमर्श किया। फरवरी, 1979 में भारत के प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने श्रीलंका की यात्रा की तथा प्रवासी भारतीयों की नागरिकता से सम्बन्धित प्रक्रिया की स्वयं जाकर देखभाल की। प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने श्रीलंका को तकनीकी ज्ञान देने का प्रस्ताव किया। श्री देसाई ने तमिलों को सलाह दिया कि वे अलगाववाद को छोड़े एवं सिंहलियों के साथ मिलजुल कर रहें।

भारत के विदेशमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जून, 1979 में कोलम्बों में गुटनिरपेक्ष देशों के ब्यूरों की बैठक में भाग लेने के लिए श्रीलंका गये तथा दोनों के बीच सहयोग एवं विश्वास का माहौल उपजा। ''12 जुलाई, 1979 की अर्द्धरात्रि को जाफना में सरकार द्वारा आपात स्थिति लागू कर दी गयी। राजनीतिक रूप से अभिप्रेरित सिंहली सेना ने अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए तमिलों के विरूद्ध अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया।''[49] जनता सरकार ने श्रीलंका के सिंहली तमिल संघर्ष को वहाँ की आन्तरिक समस्या के रूप में देखा।

बांग्लादेश :

जनता सरकार का दृष्टिकोण अपने पड़ोसियों के प्रति पूर्व सरकार की अपेक्षा अधिक उदार था। प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई के नेतृत्व में 16 अप्रैल, 1977 को फरक्का विवाद के सन्दर्भ में वार्ता हुई। जिसमें काफी मतभेद दूर हो गये। ''मई, 1977 में जगजीवनराम के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल पुनः ढ़ाका गया जिसमें फरक्का समस्या पर एक सफल वार्ता हुई। भारत और बांग्लादेश में 30 सितम्बर, 1977 को समझौता सम्पन्न हुआ।''[50] इस पर भारत की ओर से विदेश सचिव श्री जे0सी0मेहता ने तथा बांग्लादेश की ओर से श्री बी0एम0 अब्बास ने हस्ताक्षर किये। इस समझौते के अन्तर्गत पानी के

अत्यधिक कमी के दिनों में (जनवरी-मई) भारत को 20,800 क्यूसेक तथा बांग्लादेश को 34,700 क्यूसेक पानी मिलेगा। ऐसा अनुमान है कि इस अवधि में फरक्का बांध में 55,500 क्यूसेक पानी उपलब्ध होगा, परन्तु इसके तुरन्त बाद भारत को मिलने वाली पानी की मात्रा तेजी से दुगनी होगी, और शीघ्र ही 40 हजार क्यूसेक पर पहुंच जायेगी।

कलकत्ता बन्दरगाह में जमी कीचड़ और रेत को साफ करने के लिए कम से कम इतना ही पानी चाहिए। समझौतें में अल्पकालीन व्यवस्था यह भी है, कि भारत अपनी स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बीच में ही अल्पमात्रा में पानी ले सकेगा। यह समझौता 5 वर्षो के लिए किया गया था। 15 वर्षो से चले आ रहे विवाद को हल किया गया। "19 सितम्बर 1977 को बांग्लादेश के राष्ट्रपति श्री जियाउर-रहमान ने भारत की दो द्विवसीय यात्रा की जिसमें प्रधानमंत्री मोरारजी एवं विदेश मंत्री वाजपेयी से उपयोगी वार्ताएं कीं तथा संयुक्त विज्ञप्ति में कहा कि पारस्परिक सहयोग और एक दूसरे के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करने से इस समूचे क्षेत्र में शान्ति के उभरते हुए आधारों को बल मिलेगा।"[51] अप्रैल, 1979 में भारत के प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने बांग्लादेश की यात्रा की जिसमें देसाई जी ने बांग्लादेश को आर्थिक सहायता दी तथा चावल एवं गेहूं सस्ती दरों पर दिया। जनता शासन के काल में भारत और बांग्लादेश के बीच मित्रता का स्वर्णयुग प्रारम्भ हो गया था।

नेपाल :

नेपाल के साथ निकट भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्को के कारण विभिन्न मामलों पर दोनों के मध्य मतभेदों को दूर करने के लिए तत्कालीन पग उठाने का निर्णय लिया गया। 2 अप्रैल, 1977 को राजा वीरेन्द्र का नई दिल्ली दौरा हुआ। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने नेपाल को यह आश्वासन दिया कि भारत किसी भी प्रकार नेपाल के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता तथा वह सभी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण तथा सहयोगात्मक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है विशेषतया अपने पड़ोसी देशों के साथ। वाजपेयी के इस कथन का नेपाल में स्वागत किया गया परन्तु फिर भी नेपाली नेताओं प्रेस तथा प्रधानमंत्री श्री गिरी द्वारा नेपाल के प्रति भारत की तथाकथित अवांछित नीतियों तथा रवैये को ही उछाला जाता रहा।

नेपाल के प्रधानमंत्री ने 24 मई को काठमाण्डू में एक पत्रकार सम्मेलन में भारत, जनता पार्टी तथा भारतीय प्रेस के विरूद्ध उत्तेजनात्मक वक्तव्य दिया। नेपाल की सरकार द्वारा अस्वस्थता के आधार पर श्री कोइराला को छोड़ देने का निर्णय तथा 14 से 16 जुलाई 1977 तक वाजपेयी की काठमाण्डू यात्रा दो ऐसी घटनाएं हुई जिन्होनें भारत तथा नेपाल के सम्बन्धों को सुधारने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी। वाजपेयी ने आश्वासन दिया कि भारत नेपाल के साथ मित्रता तथा सहयोग स्थापित करने में रूचि रखता है तथा नेपाल के साथ शांति तथा सहयोग की संधि में पूर्ण विश्वास प्रकट किया तथा भारत सरकार ने नेपाल को एक शांति-क्षेत्र बनाने के प्रस्ताव पर नेपाल के साथ बातचीत करने की इच्छा व्यक्त की। इस यात्रा से नेपाल तथा भारत के बीच आपसी मेल-मिलाप पैदा हुआ।

अगस्त, 1977 में प्रधानमंत्री देसाई ने नेपाल के राजदूत को यह सूचना दी कि भारत-नेपाल के साथ व्यापार तथा पारगमन सन्धियां करने की इच्छा रखता है। नेपाल में कठोर स्वभाव वाले तुलसी गिरी के स्थान पर कीर्ति निधि बिस्ता के नए प्रधानमंत्री बनने से दोनों देशों के बीच सम्बन्ध सुधारने के प्रयत्न भी सुविधाजनक हो गए।

9 दिसम्बर से 11 दिसम्बर, 1977 को प्रधानमंत्री देसाई ने नेपाल का दौरा किया जिससे मित्रता तथा सौहार्द का वातावरण बना तथा नेपाल में भारत द्वारा सहायता प्रदान किए जाने वाली योजनाओं को पूरा होने का मार्ग प्रशस्त हो गया जैसे करनाली, पंचेश्वर, देवीघाट योजनाएं आदि। 17 मार्च, 1978 को भारत तथा नेपाल ने एक व्यापार तथा दूसरी पारगमन सुविधाओं के सम्बन्ध मे पृथक-पृथक दो संधियाँ की। इन संधियों से भारत तथा नेपाल के सम्बन्धों में नया विश्वास पैदा हो गया। 15 अप्रैल, 1978 को नेपाल के प्रधानमंत्री कीर्ति निधि बिस्ता भारत आए। इस यात्रा से नेपाल में साझे उद्योग स्थापित करने की दिशा में दिए जाने वाले सहयोग को बल मिला। भारत ने नेपाल को भेजे जाने वाले कोयले की विविध प्रकारों के लिए उनका भारतीय मूल्य ही लगाने का निर्णय किया तथापि नेपाल को शांति क्षेत्र बनाए जाने की अपनी मांग के लिए भारत का समर्थन नहीं मिला।

इस प्रकार जनता पार्टी के शासनकाल में भारत तथा नेपाल का एक दूसरे के प्रति विद्यमान प्रारम्भिक मन मुटाव दूर हो गया तथा इसका स्थान विभिन्न क्षेत्रों में भारत-नेपाल सहयोग की ओर होने वाली प्रगति ने ले लिया। भारत नेपाल के साथ नए सिरे से मैत्री स्थापित करने में सफल रहा। परन्तु नेपाल को शांति क्षेत्र

घोषित करने का प्रस्ताव तथा भारत के कुछ एक क्षेत्रों में नेपाली नागरिकों पर प्रतिबन्ध आदि रूकावटें पहले जैसी बनी रहीं। इनके बावजूद जनता सरकार सब प्रकार से ''लाभकारी द्विपक्षवाद'' के आधार पर भारत तथा नेपाल के बीच मैत्री तथा सहयोग स्थापित करने में काफी सफल रही।

भारत के विदेशमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 20-20 अक्टूबर, 1978 में दूसरी बार नेपाल की यात्रा की। वाजपेयी ने अपनी नेपाल यात्रा में नेपाल नरेश महाराज वीरेन्द्र प्रधानमंत्री श्री विष्ट व विदेशमंत्री श्री कृष्णराज आर्याल से अलग-अलग भेंट कर आर्थिक एवं द्विपक्षीय मसलों पर वार्ता की। वापस लौटने पर वाजपेयी ने विश्वास प्रकट किया कि भारत से छिपाकर नेपाल ऐसा कुछ नहीं करेगा, जिससे दोनों देशों के बीच बढ़ते सहयोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। जनता पार्टी ने नेपाल से अच्छे सम्बन्धों को बनाने के लिए अति उदारता का परिचय दिया। जनता पार्टी ने 1976 से अधर में लटकी हुई व्यापार और आवागमन सन्धि को उसी प्रकार सम्पन्न किया जैसा कि नेपाल चाहता था। 1978 में एक के बजाय दो सन्धियाँ की गयीं और दोनों में रियायतों का अम्बार लगा दिया गया।''[52] नेपाली उद्योग के विकास का जिम्मा भारत ने लिया। भारत ने तटकर हटा लिया तथा नेपाल को 16 आवश्यक वस्तुएं नियमित देते रहने का दायित्व भी भारत ने सम्हाला। पारगमन सन्धि के अन्तर्गत भूवेष्ठित नेपाल को बांग्लादेश तक सामान ले जाने और लाने के लिए भारत ने मार्ग की सुविधा देने का वायदा भी किया।

विदेशमंत्री वाजपेयी ने अपनी विदेश यात्रा 'नेपाल यात्रा' के दौरान दोनों देशों के मध्य विद्यमान सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को अधिक मजबूत बनाने की बात की। इसमें सन्देह नहीं है कि काठमाण्डू में जब तक नरेश है तथा मजबूत हैं तब तक भारत सरकार को उससे ही बात करनी पड़ेगी फिर भी जनता सरकार ने अपने ढाई वर्ष के शासनकाल में यही कोशिश की है कि अपने पड़ोसी राष्ट्र नेपाल से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखे और कुछ हद तक वह सफल भी रही।

भूटान :

अप्रैल, 1977 में भूटान के राजा ने भारत की यात्रा की तथा नयी सरकार के नेताओं के साथ बातचीत की। भारतीय विदेशमंत्री वाजपेयी व प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई ने भूटान नरेश को आश्वासन दिया कि भारत-भूटान की सम्प्रभुता एकता व अखण्डता के प्रति वचनबद्ध है। नवम्बर, 1977 में

विदेशमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने भूटान की यात्रा की। 1972 के व्यापार समझौते की धारा 5 के अनुसार भूटान पर भी विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में वे ही कानून-कायदे लागू होते थे, जो कि भारतीय व्यापारियों पर होते थे। भूटान की मांग यह थी कि इस समस्या का समाधान किया जाय और विदेशमंत्री वाजपेयी ने समाधान कर भी दिया। दूसरी समस्या थी भूटान काफी अर्से से यह माँग कर रहा था कि उसे नई दिल्ली में अपना राजदूतावास खोलने की अनुमति दी जाय। जनता शासन ने भूटानी मिशन को न केवल दूतावास का दर्जा दिया अपितु उसे बांग्लादेश के साथ राजनयिक सम्बन्ध स्थापित करने की सुविधा प्रदान कर दी।

मार्च, 1978 में भूटान नरेश एक बार फिर भारत आये। इस बार भारत ने भूटान की चौथी पंचवर्षीय योजना के लिए 70 करोड़ का अनुदान स्वीकार किया जबकि यह योजना 77 करोड़ रुपये की थी। अगस्त, 1978 में नई दिल्ली स्थित भूटान के मिशन को पूर्ण दूतावास का दर्जा दे दिया गया। भूटान की सामरिक स्थिति का लाभ उठाने के लिए चीन ही नहीं, अमेरिका, रूस तथा अन्य यूरोपीय राष्ट्र भी लालायित हैं। यदि भूटान को एकदम खोल दिया जाय, तो वह भारतीय सुरक्षा के लिए भी खतरनाक सिद्ध हो सकता है, लेकिन एक सार्वभौमिक राष्ट्र को जो कि संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है, भारत एक सन्धि के आधार पर कितना नियंत्रित कर सकता है, यह प्रश्न भी विचारणीय है। भारत सरकार को या तो 1949 की सन्धि को निरस्त करना चाहिए था या उसे पूरी तरह से लागू करना चाहिए। लेकिन इन सबके बावजूद जनता पार्टी शासनकाल में दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध मधुर रहे।

मालद्वीव :

जनता सरकार को विदेशमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने पड़ोसी देशों से मधुर सम्बन्ध बनाने की अपनी नीति के तहत मालद्वीव से भी मधुर सम्बन्ध बनाये रखने की बात दोहराई। दिसम्बर, 1978 में मालद्वीव के विदेशमंत्री श्री फतुल्ला जमील ने भारत की यात्रा की। विदेशमंत्री वाजपेयी ने मालद्वीव के विदेशमंत्री से आपसी विचार-विमर्श के दौरान कहा कि भारत मालद्वीव सरकार की गुटनिरपेक्षता की नीति की सराहना करता है, क्योंकि यह नीति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय आर्थिक सहयोग के लिए एक सुदृढ़ नींव रखती है। दोनों मन्त्रियों ने आपसी बातचीत के दौरान हिन्दमहासागर

को शान्ति का क्षेत्र बनाने की भी बात दोहराई। विदेशमंत्री वाजपेयी ने मालद्वीव सरकार के इस निर्णय पर प्रसन्नता व्यक्त की कि मालद्वीव किसी भी देश को अपने क्षेत्र में सैनिक अड्डा नहीं बनाने देगा।

विदेशमंत्री वाजपेयी ने यह भी कहा कि मालद्वीव के आर्थिक विकास के लिए दोनों देशों के अधिकारियों की एक समिति बनाई जायेगी, जो कि मालद्वीव के आर्थिक एवं तकनीकी क्षेत्र में सहयोग की सम्भावना पर विचार करेगी। साथ ही मालद्वीव के विदेशमंत्री ने भारत सरकार से इंजीनियरिंग, मेड़ीसिन, प्रशासन एवं नियोजन के क्षेत्र में भारत से मदद करने की मांग की तथा विदेशमंत्री वाजपेयी ने उन्हें आश्वासन दिया कि भारत सरकार मालद्वीव की हर तरह से सहायता करेगी।[52]

(द) प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के कार्यकाल से संयुक्त मोर्चा के समय तक की दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति :

प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी की दक्षिण एशिया के प्रति विदेश नीति :

पाकिस्तान :

पाकिस्तान के राष्ट्रपति जियाउल हक ने भारत के सामने 1981 में एक युद्ध-वर्जन प्रस्ताव प्रस्तुत किया। भारत 1947 से ही पाकिस्तान के समक्ष कई युद्ध वर्जन प्रस्ताव रख चुका था और भारत प्रारम्भ से ही इस बात पर बल देता रहा है कि भारत और पाकिस्तान को अपनी आपसी समस्याओं को आपस में शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाना चाहिए। इसी में दोनों का हित है परन्तु पाकिस्तान बार-बार इस प्रस्ताव को ठुकराता चला आ रहा है। भारत जानता है कि पाकिस्तान का यह युद्ध वर्जन प्रस्ताव एक कूटनीतिक चाल है। औपचारिक रूप से इस प्रस्ताव को लेकर पाकिस्तान के तत्कालीन विदेश मंत्री आगाशाही 29 जनवरी, 1982 को भारत आये। पहले तो भारत ने इस पर आनाकानी की, परन्तु जब भारत ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का उपक्रम किया तो पाया कि इधर तो पाकिस्तान भारत के साथ युद्ध वर्जन प्रस्ताव रख रहा था, दूसरी ओर भारत के विरूद्ध कश्मीर का मसला शिमला समझौते की भावना के प्रतिकूल मानवाधिकार समिति में उठा रहा था।

पाकिस्तान की इच्छा भारत के साथ शान्ति की नहीं है। जब तक पाकिस्तान में वास्तविक धर्म निरपेक्ष लोकतन्त्र की स्थापना नहीं हो जाती है, तब तक भारत-पाक सम्बन्धों में सुधार सम्भव नहीं है। 1983 में पाकिस्तान में लोकतन्त्र की बहाली के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। यह पाक का आन्तरिक मामला था लेकिन श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस आन्दोलन के प्रति सहानुभूति प्रकट की। पाकिस्तान ने इस सहानुभूति का गलत अर्थ निकाला उसका कहना था कि भारत, पाकिस्तान में तोड़-फोड़ को पुनः प्रोत्साहन देना चाहता है और पाक को समाप्त करना चाहता है।

जून, 1983 में भारत के विदेश मंत्री श्री नरसिंह राव पाकिस्तान गये। इस वर्ष भारत-पाक संयुक्त आयोग का प्रस्ताव के कुछ फलितार्थ नजर आ रहे थे। वास्तव में, श्रीमती गांधी को लोकतन्त्र

का समर्थन तो करना चाहिए था परन्तु पाकिस्तान की अखण्डता बनाये रखने का आश्वासन देते हुए, 1984 में भारत में धीरे-धीरे यह सन्देह के बादल छँटते जा रहे थे, और उम्मीद बन चली थी कि शीघ्र ही दोनों देशों के संयुक्त आयोग की बैठक में युद्ध-वर्जन सन्धि पर कुछ समझौता हो सकेगा।

श्रीलंका :

''प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने श्रीलंका सरकार के तमिल विरोधी दृष्टिकोण की आलोचना की। दूसरी ओर तमिल नेताओं ने मद्रास की ओर देखना प्रारम्भ कर दिया था। श्रीमती गांधी ने मध्यस्थता का प्रस्ताव रखा जिस पर श्रीलंका द्वारा ध्यान न दिया गया जिससे क्षुब्ध श्रीमती गांधी ने तमिल उग्रवादियों को मदद करने का निर्णय लिया।''[54]

''जनवरी, 1981 में दोनों देशों के एक औद्योगिक सहयोग का महत्वपूर्ण समझौता भी हुआ।''[55] जून, 1981 में भारत के लोकसभा अध्यक्ष की अध्यक्षता में एक संसदीय दल ने श्रीलंका की यात्रा की। फरवरी, 1982 में श्रीनीलम संजीव रेड्डी की श्रीलंका की राजकीय यात्रा भारत और श्रीलंका के बीच मित्रता और सहयोग के विकास का एक महत्वपूर्ण सोपान बने। 1983-84 का वर्ष भारत-श्रीलंका सम्बन्धों की दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता। मार्च, 1983 में दिल्ली में हुए सातवें गुट निरपेक्ष सम्मेलन में एक बार फिर स्पष्ट हो गया कि भारत के श्रीलंका के साथ कई प्रश्नों पर मतभेद हैं। दोनों अफगानिस्तान, कम्पूचिया और मध्य अमरीका के प्रश्नों पर सहमत नहीं है।

श्रीलंका में जब-जब दक्षिणपन्थी सरकार स्थापित हुई तब ही भारत से उसके सम्बन्ध मित्रता पूर्ण नहीं रहे। 1983 में ही श्रीलंका में राष्ट्रपति जयवर्द्धने की सरकार में उग्रवादी सिंहली हावी हो गये तथा तमिल लोगों के साथ भेद-भाव किया जाने लगा। ''पुलिस सेना सहित सरकारी सेवाओं में सिंहलियों का एकाधिकार हो गया जिससे कुछ गरम मिजाज के तमिलों ने इस स्थिति का फायदा उठाकर एक पृथकतावादी आन्दोलन चलाया है और श्रीलंका में एक पृथक तमिल राज्य की मांग की है। श्रीमती गांध ी ने इस पृथकतावाद का तो समर्थन नहीं किया लेकिन इस पृथकतावादी आन्दोलन के सहारे तमिलों का जो नरसंहार किया जा रहा था उससे चिन्तित थी।''[56] तमिलों के साथ हो रहे अत्याचार पर श्रीमती गांध ी ने तो ' श्रीलंका से दूर रहने का सिद्धान्त' प्रतिपादित किया था।

तमिल समस्या का समाधान करने हेतु भारत शुरू से ही बातचीत का रास्ता अपनाता रहा है। जुलाई, 1983 में जी0 पार्थसारथी भारतीय प्रधानमंत्री के विशेष दूत के रूप में कोलम्बों में बातचीत किया। श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्द्धने की जून, 1984 में दिल्ली में प्रधानमंत्री के साथ शिखर वार्ताएं आयोजित हुई। भूटान की राजधानी थिम्फू में श्रीलंका की समस्या के हल के लिए 8 जुलाई से और पुनः 12 अगस्त से वार्ताएं हुई। परन्तु कोई हल नहीं निकला। ''श्रीलंका की नीति गांधी के काल में मुख्यतः दो तथ्यों पर आधारित थी-(1) श्रीलंका को बाह्य शक्तियों के प्रभाव में जाने से रोकना। (2) श्रीलंका में चल रहे अलगाववादी आन्दोलन के प्रभाव में तमिलनाडु को जाने से रोकना।''[57]

<u>बांग्लादेश</u> :

अप्रैल, 1980 में बांग्लादेश के राष्ट्रपति भारत पहुंचें। एक समान और संयुक्त परम्परा की पृष्ठभूमि में दोनों देशों ने अपने सम्बन्धों को मजबूत किया। अगस्त, 1980 में विदेशमंत्री श्री पी0वी0 नरसिंहराव की बांग्लादेश यात्रा से कुछ प्रगति हुई। सितम्बर, 1981 में बांग्लादेश के विदेश मंत्री भी भारत आए। दिसम्बर, 1981 में दोनों देशों के बीच एक तकनीकी सहयोग पर हस्ताक्षर हुए। फरक्का विवाद पर पुनः मतभेद उभरे। दोनों देशों के बीच थल और समुद्री सीमा भी विवादास्पद थी। थल सीमा को पार कर प्रतिवर्ष हजारों बंगाली भारत आ जाते है। भारत की असम समस्या इसी घुसपैठ की देन है। 1980 में दोनों में एक समझौता हुआ, जिसमें यह निर्णय लिया गया, कि भू-सीमा का अंकन किया जायेगा तथा नाजुक स्थलों पर बाड़ या दीवाल बनायी जायेगी। बांग्लादेश ने बाड़ का विरोध किया। समुद्री सीमा के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं हो सका और बीच में नवमूर का विवाद और उत्पन्न हो गया।

नवमूर द्वीप का विवाद 1981 में उभरा बंगाल की खाड़ी में 12 वर्ग कि0मी0 क्षेत्रफल का द्वीप है। यह भारत की सीमा से अधिक नजदीक है। इसका पता 1974 में चला। बांग्लादेश ने अपना अधिकार जताया किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार यह भारत का है। इस समस्या को लेकर उग्र विवाद उत्पन्न होने ही वाला था कि बांग्लादेश में क्रान्ति हो गयी। यह उथल-पुथल 1982 तक चलती रही। अप्रैल, 1982 में सेनापति जनरल इरशाद ने सत्ता संभाल ली। जनरल इरशाद ने अक्टूबर, 1982 में भारत की यात्रा की और एक 'स्मरण पत्र' पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार 1977 में फरक्का

समझौते को रद्द कर दिया और संयुक्त नदी आयोग को अगले 18 महीने में गंगा जल के बहाव पर अध्ययन करने को कहा गया।

दोनों देशों के बीच एक अन्य समझौते के अन्तर्गत भारत ने बांग्लादेश को भारत के कूच बिहार में स्थित दाह ग्राम और आंगरा पोटा के दो अन्तः क्षेत्रों को बांग्लादेश की मुख्य भूमि से जोड़ने के लिए स्थायी पट्टे पर एक तीन बीघा गलियारा प्रदान कर दिया। यह 178x85 मीटर है। इस गलियारे पर भारतीय सम्प्रभुता रहेगी परन्तु भारत बांग्लादेश से जो एक टका किराये के रूप में लेता था उसे समाप्त कर दिया। 30 जुलाई, 1983 को दोनों में तीस्ता जल समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार भारत और बांग्लादेश सूखे मौसम के दौरान तीस्ता नदी के पानी के तदर्थ आधार पर बंटवारे पर सहमत हो गये इस समझौते के अन्तर्गत भारत को 39% पानी मिलेगा और बांग्लादेश को 36% शेष 25% पानी किसी को आवंटित नहीं किया जायेगा। मई, 1982 में विदेश मंत्री ने बांग्लादेश की यात्रा की जिसमें व्यापारिक सम्बन्धों को विस्तृत करने के लिए एक संयुक्त आयोग गठन करने का निश्चय किया गया। मार्च, 1983 में दिल्ली में हुए 'नाम' सम्मेलन में भाग लेने जनरल इरशाद भारत आये।

1984 में भारत और बांग्लादेश के बीच सीमा पर बाड़ लगाने के प्रश्न को लेकर गहरे मतभेद उत्पन्न हुए । बाड़ लगाने पर बांग्लादेश ने आपत्ति जतायी। गृहमंत्री प्रकाशचन्द्र सेठी ने संसद में घोषित किया कि बाड़ लगाने का काम जारी रहेगा। गंगा नदी के पानी के बँटवारे को लेकर 18 अक्टूबर, 1984 को नसाऊ (महामा) में एक समझौता हुआ। यह समझौता तीन वर्ष तक लागू रहेगा। इसके साथ ही इस प्रश्न पर पिछले एक वर्ष से चला आ रहा गतिरोध समाप्त हो गया।

नेपाल :

श्रीमती इन्दिरा गांधी नेपाल के साथ अच्छे पड़ोसियों जैसे सम्बन्ध कायम करने की दिशा में काफी सजग थीं। नवम्बर, 1980 में भारत के विदेशमंत्री श्री नरसिंह राव ने नेपाल की यात्रा की तथा विभिन्न मामलों पर बातचीत हुई। दिसम्बर, 1981 में राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने नेपाल की राजकीय यात्रा की। भारत ने नेपाल की जन विद्युत परियोजना के पूरा करने का अपना वचन पूर्णयता निभाया। जुलाई, 1983 को देवी घाट जल विद्युत परियोजना के शुरू हो जाने से नेपाल के आर्थिक तथा औद्योगिक

विकास के मार्ग में भारत की सहायता की ही भूमिका थी। 1982 को एक समझौते द्वारा भारत ने नेपाल को कई व्यापारिक तथा पारगमन सुविधाएं दीं। नेपाल के व्यापारियों से तिगुने किराए की रीति को भी छोड़ने का निर्णय किया।

भूटान :

जून, 1981 में भारत के विदेशमंत्री श्री पी0वी0 नरसिंह राव ने थिम्फू की यात्रा की। प्रारम्भ से ही भारत भूटान को आर्थिक सहायता दे रहा है। भारत ने 150 करोड़ की सहायता दिया। भूटान की पांचवीं योजना के लिए 139 करोड़ की पेशकश की। चुक्का में बड़ी पन बिजली परियोजना का निर्माण किया। पैनदन में एक सीमेण्ट फैक्ट्री भूटान को उपहार में दिया। राष्ट्रीय विमान सेवा स्थापित करने का निर्णय लिया गया जो पारों को कलकत्ता से जोड़ेगी। भूटान में रहने वाले 1500 तिब्बती शरणार्थियों को भारत ने अपने यहां रखना स्वीकार किया। "भूटान की राजनीतिक आकांक्षाओं को पूरा होने देने के साथ सम्मान, विश्वास और मार्गदर्शक रूप में भूटान की निगाहों में अपने को प्रतिष्ठित किये रखना ही भारतीय विदेश नीति के लिए एक मुख्य चुनौती है।"[58]

प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी एवं दक्षिण एशिया :

श्रीमती गांधी की हत्या के बाद श्री राजीव गांधी प्रधानमंत्री निर्वाचित हुए। राजीव गांधी का 21वीं सदी का आह्वान तथा आधुनिकता की ओर रूझान में परम्परागत भारतीय विदेश नीति में परिवर्तन के बीज दिखाई दे रहे थे। राजीव गांधी की विदेश नीति में चार बातों पर विशेष जोर रहा- निःशस्त्रीकरण, उपनिवेशवाद उन्मूलन, विकास तथा शान्ति की कूटनीति।

पाकिस्तान :

17 दिसम्बर, 1985 को राष्ट्रपति जियाउल हक और प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के मध्य एक छः सूत्री समझौता हुआ जिसमें तय किया गया कि वे एक दूसरे के परमाणु ठिकानों पर हमला नहीं करेंगे। 10 जनवरी, 1986 को भारत और पाकिस्तान के आपसी आर्थिक सम्बन्धों में एक नए युग की शुरूआत हुई। दोनों देशों के बीच मुक्त व्यापार पुनः शुरू करने के अलावा सार्वजनिक क्षेत्र के व्यापार को दुगना

करने, दोनों देशों के बीच सीधी डायल सेवा शुरू करने व वायुसेवा सुविधा बढ़ाने पर सहमति हुई। दिसम्बर, 1988 में पाक में बेनजीर ने भारत के साथ युद्ध वर्जन सन्धि के प्रस्ताव को ठुकराते हुए कश्मीर समस्या सहित अन्य विवादों के निपटारें के लिए शिमला समझौते के महत्व को स्वीकार किया। 31 दिसम्बर, 1988 को दोनों देशों के मध्य तीन समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। इनमें सबसे महत्वपूर्ण समझौता दोनों देशों के बीच एक दूसरे परमाणु संस्थानों पर हमला नहीं करने से सम्बद्ध है।

श्रीलंका :

''प्रधानमंत्री बनने के पश्चात शीघ्र ही राजीव गॉधी ने श्रीलंका सरकार को विश्वास में लेने तथा उनकी जातीय समस्या के समाधान के प्रति हार्दिक-इच्छा तथा गम्भीर दृष्टिकोण को प्रदर्शित करते हुये दो महत्वपूर्ण निर्णय लिये। प्रथम, जी० पार्थसारथी के स्थान पर विदेश सचिव रोमेश भण्डारी को प्रधानमंत्री का विशेष दूत नियुक्त किया गया क्योंकि पार्थसारथी श्रीलंका सरकार का विश्वासमत जीतने में असफल रहे थे।''[50] दूसरा, निर्णय भारतीय सामुद्रिक तटवर्ती क्षेत्र में तमिल गुरिल्लाओं की गतिविधियों को रोकना था। जून, 1985 में दिल्ली में आयोजित शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री राजीव गॉधी तथा राष्ट्रपति जयवर्द्धने के मध्य वार्ता सम्पन्न हुयी। दोनों नेता इस बात पर सहमत हुए कि एकीकृत श्रीलंका के ढॉचे के अन्तर्गत ही स्थितियों को सामान्य बनाने की दिशा में शीघ्र ही कोई राजनीतिक समाधान निकाला जायेगा जो सर्वमान्य हो। राजीव गॉधी ने कहा कि ''भारत अपनी भूमि से किसी भी प्रकार की आतंकी गतिविधियों को संचालित न होने देने के लिये कृत संकल्प है।''[60] दोनों देशों के मध्य वार्ताएं चलती रही।

'' नवम्बर, 1986 में राष्ट्रपति जयवर्द्धने बंगलौर में आयोजित 'सार्कः' सम्मेलन में भाग लेने भारत पहुँचे। राजीव गॉधी की स्पष्ट नीति थी कि श्रीलंका की जातीय समस्या का समाधान उसकी एकता और अखण्डता के अन्तर्गत ही होना चाहिये। इसी हेतु उन्होंने भरसक प्रयास भी किया, किन्तु इसके बाद भी श्रीलंका के प्रधानमंत्री प्रेमदासा ने 1986 में आयोजित हरारे सम्मेलन में भारत पर एकपक्षीय होने तथा तमिलों को अप्रत्यक्ष आन्तरिक समर्थन करने जैसे गम्भीर आरोप लगाए।[61]

''तमिलों के विरुद्ध वाह्य समर्थन (अमेरिका, पाकिस्तान, इज्राइल, इंग्लैण्ड) के कारण तमिलों का रवैया भी आक्रामक हो गया। 1 जनवरी, 1987 को लिट्टे ने ईलम की एकतरफा घोषणा कर दी।''[62]

समानान्तर प्रशासन व्यवस्था उत्पन्न कर लिट्टे ने श्रीलंका सरकार के समक्ष चुनौती उत्पन्न कर दी थी। उक्त घटना के प्रतिशोध में श्रीलंका सरकार द्वारा जनवरी, 1987 में जाफना की आर्थिक नाकेबन्दी कर दी। मई 1987 में श्रीलंका की सेना ने जाफना पर हमले भी किये। ''भारतीय उच्चायुक्त जे0एन0 दीक्षित ने तमिलों के लिये उत्पन्न गम्भीर समस्या के लिये जयवर्द्धने का ध्यान आकृष्ट कराया।''[63] 3 जून, 1987 को भारतीय नौकाएं तमिलों को राहत सामग्री लेकर जाफना की ओर रवाना हुयी लेकिन श्रीलंकाई नौसेना ने उन्हें घुसने नही दिया। भारत के लिये यह प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। अतः भारत ने 5 जून, 1987 को खाद्य सामग्री और दवायें जाफना प्रायद्वीप पर गिराया। श्रीलंका ने इसकी तीखी आलोचना की। हवाई राहत का गम्भीर परिणाम यह निकला कि इसने श्रीलंका की जातीय समस्या को भारत-श्रीलंका समस्या में परिवर्तित कर दिया।

29 जुलाई, 1987 को प्रधानमंत्री राजीव गॉधी और राष्ट्रपति जयवर्द्धने के बीच कोलम्बों में एक 18 सूत्री समझौता हुआ जिसे 'बेमिसाल' और 'ऐतिहासिक' समझौता कहा गया। राजीव गॉधी के अनुसार ''यह 20 वीं सदी का सबसे बड़ा समझौता है।'' समझौता तमिल होमलैण्ड का जिक्र किये बिना पूर्वी और उत्तरी प्रान्तों का तमिल के 'आदतन-आवास' का क्षेत्र स्वीकार करता है जहॉ उनकी अपनी निर्वाचित प्रान्तीय परिषद होगी, अपना गर्वनर, मुख्यमंत्री और मन्त्रिमंडल होगा। समझौता दक्षिण एशिया में शान्ति स्थापित करने और विदेशी हस्तक्षेप को नेस्तनाबूंत करने का प्रयत्न है।

''राजीव गॉधी - जयवर्द्धने समझौते के अन्तर्गत 'भारतीय शांति सेनाएं' श्रीलंका भेजी गयी। 'आपरेशन-पवन' के गुप्त नाम से भारतीय शान्ति सेना ने लिट्टे के विरूद्ध अपना प्रथम अभियान 10 अक्टूबर, 1987 को आरम्भ किया तथा 26 अक्टूबर, 1987 को जाफना पर भारतीय शान्ति सेना का नियंत्रण स्थापित हो गया।''[64] जयवर्द्धने ने अपनी कूटनीति से भारतीय सैनिकों को तमिल उग्रवादियों से भिडा दिया। प्रेमदासा ने राष्ट्रपति बनने के साथ ही भारत सरकार से शान्ति की वापसी का अनुरोध किया। जनवरी, 1989 से भारतीय शान्ति सेना की वापसी श्रीलंका से शुरू हो गयी। मार्च 1990 तक कई चरणों में शान्ति सेना भारत लौट आई।

बांग्लादेश :

जुलाई, 1986 में बांग्लादेश के राष्ट्रपति लैफ्टिनेंट जनरल एच0एम0 इरशाद ने भारत का दौरा किया तथा बहुआयामी बातचीत की। दोनों ही देशों ने सीमा आर-पार पर नियंत्रण करने के लिये सहयोग देना स्वीकार किया तथा नदी जल समस्या को मित्रतापूर्वक सुलझाने का निश्चय किया। बांग्लादेश ने यह भी स्वीकार किया कि वह त्रिपुरा में अवैध रूप से प्रविष्ट हुये चकमा कबीले के लोगों को वापस बुलाने के लिये उनके विरूद्ध सभी कदम वापस ले लेगें। प्रधानमंत्री राजीव गॉधी एवं राष्ट्रपति इरशाद ने तय किया कि दोनों देशों के बीच बंगाल की खाड़ी मे तटवर्ती सीमा को पुनः लागू किया जाये तथा संयुक्त आर्थिक आयोग की बैठक को शीघ्र बुलाने की आवश्यकता को भी स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त भारत ने बांग्लादेश को यह आश्वासन भी दिया कि वह तीन बीघा का क्षेत्र बांग्ला देश को पट्टे पर हस्तान्तरित कर देगा। बांग्लादेश ने भारत से लगभग 1800 चकमा शरणार्थियों को वापस लेना भी स्वीकार किया।

29 सितम्बर, 1988 को राष्ट्रपति इरशाद ने दिल्ली की एक अल्पकालिक यात्रा की। बांग्लादेश ने यह स्पष्ट कर दिया कि द्विपक्षीय बातचीत में कोई तीसरा पक्ष भाग नही लेगा। बाढ़ के खतरे से निपटने के लिये निर्णय लिया गया कि एक विशेष कार्यबल का निर्माण किया जाए, जिसका दायित्व था कि ब्रह्मपुत्र तथा गंगा नदियों के पानी से उत्पन्न बाढ़ के नियंत्रण के लिये अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक दोनों उपायों का सुझाव दे।

नेपाल :

सन् 1985 में प्रधानमंत्री राजीव गॉधी ने हिमालयी राज्य के साथ और अधिक मैत्रीपूर्ण तथा सहयोगात्मक सम्बन्ध कायम करने के प्रयत्नों को और तेज कर दिया। सार्क के प्रादुर्भाव से नेपाल और भारत में सामान्य रूप से आर्थिक व्यापार तथा सांस्कृतिक सहयोग में और वृद्धि होगी। 1986 मे महाराजा नेपाल ने भारत का दौरा किया। नेपाल के लिये शान्ति-क्षेत्र की स्थिति पर मतभेद बराबर बने रहे। सन् 1988-89 के समय में भारत तथा नेपाल के सम्बन्धों में व्यापार तथा पारगमन सन्धि के मामले पर तनाव बनने आरम्भ हो गए। जहॉ पर नेपाल इस बात पर बल दे रहा था कि व्यापार तथा पारगमन की दो पृथक-पृथक सन्धियॉ होनी चाहिये। भारत की इच्छा थी कि दोनों मामलों को एक ही सन्धि द्वारा निपटाया

जाए। इस नकारात्मक घटना के पीछे नेपाल की विदेश नीति में भारत-विरोधी तथा चीन समर्थक निश्चित झुकाव था जिसका पता नेपाल द्वारा चीनी हथियारों की प्राप्ति से लगा था। 23 मार्च, 1989 को भारत तथा नेपाल के मध्य व्यापार तथा पारगमन सन्धि का समापन हो गया तथा भारत एवं नेपाल के सम्बन्धों में इस मामले के प्रति मतभेद ने उग्रतम रूप ले लिया तथा 1950 से प्रचलित व्यापार को अधिमान देने की व्यवस्था का अन्त हो गया।

नेपाल का चीन से शस्त्र खरीदने का निर्णय, पेट्रोलियम उत्पादों तथा नमक की आपूर्ति के लिये चीन से तदर्थ समझौता, श्रीलंका में भारत द्वारा गोरखा सैनिकों को लगाये जाने के मामले का उठाना, पाकिस्तान के साथ ऑख मिचौली, नेपाली नेताओं द्वारा भारत के विरूद्ध शब्द-युद्ध की बौछार, नागरिक समस्या पर नये सिरे से धमकी आदि बातों ने भारत नेपाल द्विपक्षीय सम्बन्धों में भारी तनाव उत्पन्न कर दिया।

भारत तथा नेपाल के मध्य पारगमन सन्धि के निरस्त हो जाने के कारण नेपाल में अपनी जनता की दैनिक आवश्यकताओं की आपूर्ति में भी अत्यन्त कठिनाई अनुभव की जाने लगी। सन्धि के निरस्त हो जाने के बाद भी भारत ने नेपाल में आयात के लिये, मानवता के आधार पर दो स्थान खुले रखे। नेपाल की जनता को शीघ्र ही इस बात का आभास हो गया कि राजा बीरेन्द्र का शासन भारत के साथ दृढ़ मित्रता स्थापित नही करना चाहता तथा चीन के साथ सम्बन्ध भारत के प्रति संतुलन के रूप में ही बढाये जा रहे थे। नेपाली सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के दबाव में राजा के शासन के विरूद्ध सशक्त लोकप्रिय असंतोष को जन्म दिया।

भूटान :

भारत और भूटान के बीच सम्बन्धों को पुख्ता करने के लिये प्रधानमंत्री राजीव गॉधी ने 29 सितम्बर, 1985 से 1 अक्टूबर, 1985 तक भूटान की यात्रा की। इससे पूर्व फरवरी 1985 में भूटान नरेश ने भारत की यात्रा की थी।

प्रधानमंत्री वी०पी० सिंह - चन्द्रशेखर एवं दक्षिण एशिया :

2 दिसम्बर, 1989 में वी०पी० सिंह के नेतृत्व में तथा नवम्बर, 1990 में चन्द्रशेखर के नेतृत्व में अल्पमतीय सरकार केन्द्र में सत्तारूढ़ हुई। जहाँ वी०पी० सिंह सरकार भा०ज०पा० व साम्यवादी दलों के सहयोग पर टिकी रही, वहीं चन्द्रशेखर सरकार कांग्रेस(इ) के सहयोग से सत्तारूढ़ हुई। दोनों ही सरकारों के पास राजनीतिक शक्ति की मजबूती नही थी। अतः विदेश नीति के क्षेत्र में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं किया गया।

पाकिस्तान :

नई राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने अपने दक्षिण एशियाई पड़ोसियों विशेषतया पाकिस्तान के साथ भारत के स्वस्थ सम्बन्धों को गतिशील बनाने की आवश्यकता पर फिर से शुभारम्भ किया किन्तु 2 महीने के भीतर ही उसे कश्मीर घाटी पर पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित आतंकवाद का सामना करना पड़ा। दिसम्बर, 1989 में पाक एक बार फिर भारतीय कश्मीर तथा पंजाब में गड़बड़ करने में लग गया। कश्मीर में खुले रूप से आतंकवादियों का समर्थन देने लगा। सन् 1990 में प्रधानमंत्री नवाज शरीफ के सत्ता में आने के बाद भी पाकिस्तान ने कश्मीर में अव्यवस्था फैलाने वाले आतंकवादियों की सहायता करने की नीति को अपनाए रखा।

श्रीलंका :

वी०पी० सिंह सरकार श्रीलंका की आन्तरिक समस्याओं के प्रति अहस्तक्षेप के सिद्धान्त का अनुसरण करती थी। अपने शासन के आरम्भ में ही शान्ति सेना की वापसी सुनिश्चित करना इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। किन्तु इसके साथ ही श्रीलंका के तमिलों की सुरक्षा भी चाहते थे। वी०पी० सिंह ने कहा कि " श्रीलंका सरकार को तमिलों को जीवन सुरक्षा का विश्वास भी दिलाना होगा।"[65] राष्ट्रपति प्रेमदासा का रवैया तमिलों के प्रति उदार हो चुका था। " वे चाहते थे कि श्रीलंका में तमिल और सिंहली मिलकर शान्तिपूर्वक रहे"।[66] जून, 1990 में अचानक ही श्रीलंका सरकार और लिट्टे के मध्य 13 माह पूर्व युद्ध विराम समाप्त हो गया तथा श्रीलंका में युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई। " वी०पी० सिंह ने 27 अगस्त, 1990 को दोनों पक्षों से शत्रुता समाप्त कर शीघ्र ही युद्ध को विराम देने की अपील की।

जिससे आगे की वार्ता का मार्ग प्रशस्त हो सके।''[67] अक्टूबर, 1990 तक लगभग 1600 तमिल चीते मृत्यु का शिकार हो चुके थे तथा 400 घायल हो चुके थे।

तमिल शरणार्थियों तथा लिट्टे के प्रति प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर की सहानुभूति कम हो चुकी थी। ''केन्द्र की चन्द्रशेखर सरकार ने अपने समर्थक दलों (कांग्रेस,अन्नाद्रमुक) के दबाव में तमिलनाडु की करूणानिधि सरकार पर लिट्टे द्वारा संचालित राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को रोकने में असमर्थ होने का आक्षेप लगाकर 30 जनवरी, 1991 को राज्य सरकार को बरखास्त कर दिया।''[68] लिट्टे के प्रति चन्द्रशेखर सरकार के कठोर दृष्टिकोण को देखकर प्रेमदासा सरकार को भारत के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध विकसित करने को प्रेरित किया। इस समस्या का शीघ्र समाधान न केवल भारतीय हितों के अनुकूल था वरन् क्षेत्रीय स्थिरता तथा सुरक्षा के लिये भी आवश्यक था। इसी उद्देश्य से विदेशमंत्री विद्याचरण शुक्ल 29-30 जनवरी, 1991 को श्रीलंका गये। संयुक्त बयान में कहा गया कि केवल राजनीति की मुख्यधारा में तमिलों को उचित प्रतिनिधित्व के साथ सम्मिलित करने तथा सकारात्मक ढंग से वार्ताएं करने पर ही इस समस्या का कोई अन्तिम समाधान निकल सकता है।

'' जनवरी, 1991 में एक बार पुनः युद्ध विराम के भंग होने पर श्रीलंका सेनाओं ने भारी मात्रा में लिट्टे के विरुद्ध कार्यवाही तेज कर दिया फलस्वरूप लिट्टे ने भी 2 मार्च, 1991 को राज्य रक्षा मंत्री कट्टरपंथी सिंहली रन्जन विजयरत्ने की एक विस्फोट में हत्या कर दी।''[69] जब-जब श्रीलंका में उग्रता और हिंसा प्रर्दशन बढ़ जाती है, तब-तब तमिल शरणार्थियों की भारत में संख्या बढ़ने लगती है। अप्रैल, 1991 तक भारत में श्रीलंका के तमिल शरणार्थियों की संख्या बढ़कर 2.23 लाख हो गयी थी।'' 21 मई, 1991 को एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना उस वक्त घटित हो गयी, जब लिट्टे की आत्मघाती दस्ते की सदस्य महिला 'धानु' ने मद्रास के निकट श्री पेरम्बदूर में राजीव गाँधी की मानव बम विस्फोट से हत्या कर दी।''[70]

इस घटना के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु उनमें प्रमुख कारण राजीव गांधी की केन्द्रीय सत्ता में पुनः वापसी से सम्बन्धित आशंकाएं थी। अपने पूर्व के प्रधानमन्त्रित्व काल में राजीव गाँधी ने लिट्टे के विरुद्ध कठोर नीतियाँ अपनायी थीं। लिट्टे की भागीदारी और सहमति के बिना ही जुलाई, 1987 का समझौता किया गया तथा लिट्टे को शस्त्र विहीन करने के लिए भारतीय शान्ति सेनाएं भी

भेजी गयीं। अतीत की घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो सके इसलिए लिट्टे ने यह दुःसाहसिक कदम उठाया। लिट्टे समर्थक करुणानिधि सरकार को प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर के द्वारा बरखास्तगी भी एक कारण था। दूसरा कारण था प्रभाकरण की व्यक्तिगत प्रतिशोध की भावना। प्रभाकरण ने स्वयं को उस समय अपमानित अनुभव किया जब 1987 में राजीव गांधी द्वारा उन्हें नई दिल्ली वार्ता के लिए आमन्त्रित किया गया तथा वार्ता सम्पन्न होने के पश्चात उन्हें नजरबन्द कर लिया गया था।

बांग्लादेश :

अच्छे पड़ोसीपन के सिद्धान्त का आचरण करते हुए तत्कालीन विदेश मंत्री इन्द्रकुमार गुजराल ने 16 से 18 फरवरी, 1990 को ढ़ाका की यात्रा की तथा व्यापक मुद्दो पर बातचीत की तथा संकल्प किया कि समस्याओं का समाधान सद्भावनां तथा सहयोग की भावना से किया जाएगा। श्री गुजराल ने विदेशमंत्री श्री इस्लाम महमूद को इस तथ्य से सहमत कर लिया कि कमी वाले महीनों में गार से सुरक्षित रखने के लिए कम से कम 40,000 क्यूसेक जल कलकत्ता बन्दरगाह को चाहिए। इसी प्रकार दोनों पक्ष अवैध सीमा उल्लंघन तथा तस्करी को रोकने के लिए कठोर पग उठाने पर सहमत हो गए।

भारत ने तीन बीघा रास्ता बांग्लादेश को स्थानान्तरित करने की अपनी प्रतिबद्धता को दोहराया वहीं बांग्लादेश ने चकमा जनजातियों के लोगों को वापस लेने तथा पुनर्वास का आश्वासन दिया। जब बांग्लादेश में समुद्री तूफानों के कारण भारी क्षति हुई तो प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर ने बांग्लादेश जाकर प्रधानमंत्री खालिदा जिया को भारत की सहानुभूति प्रकट की तथा भरपूर सहायता दिया।

नेपाल :

नेपाल में अप्रैल, 1990 में लोकतन्त्र की पुनः स्थापना के आन्दोलन को सफलता प्राप्त हुई जब महाराज वीरेन्द्र को राज्य का संवैधानिक मुखिया बना दिया गया तथा एक लोकतन्त्रीय और लोकप्रिय राष्ट्रीय सरकार प्रधानमंत्री कृष्ण प्रसाद भट्टाराय के नेतृत्व में नेपाल में सत्ता में आई। जून, 1990 में नेपाल के प्रधानमंत्री श्री भट्टाराय भारत की यात्रा पर आए तथा प्रधानमंत्री वी०पी०सिंह से विभिन्न मुद्दों पर बातचीत की जिससे दोनों देशों के मध्य 23 मार्च, 1989 को व्यापार तथा पारगमन सन्धि के निरस्त हो जाने के परिणामस्वरूप आरम्भ हुए अघोषित आर्थिक युद्ध को फिर समाप्त करने के अवसर

प्राप्त हुये तथा भारत-नेपाल सम्बन्ध बड़ी शीघ्रता से अप्रैल, 1987 की स्थिति तक फिर पहुंच गए। भारत ने आयात शुल्क की दरों में 50% शुल्क में रियायत भी दी।

प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने भारत-नेपाल सम्बन्धों को सकारात्मक रूप से सुदृढ़ किया। उन्होंनें नेपाल की यात्रा की तथा प्रधानमन्त्री भट्टाराय से मुलाकात कर दोनों देशों के मध्य समस्या का गहरा अध्ययन करने के लिए तथा सुधारों के लिए ठोस उपाय सुझाने के लिए एक कार्यदल को संगठित किया। एक संयुक्त आयोग की स्थापना की गई। संयुक्त आयोग ने जो आरम्भिक कार्य किया, उसने 1990 के दशक में भारत तथा नेपाल को सम्बन्धों के संचालन के लिए एक अच्छा आधार प्रदान किया।

भूटान :

महामहिम नरेश जिग्मे सिंघे वांगचुक ने वर्ष 1990 के दौरान जनवरी, फरवरी व नवम्बर में तीन बार भारत की यात्रा की। आपसी हित में द्विपक्षीय और बहुपक्षीय मामलों पर विचार-विमर्श में विचारों की समानता तथा प्रगाढ़ता प्रकट हुई। भारत के वाणिज्यमन्त्री की यात्रा के दौरान 2 मार्च, 1990 को थिम्फू में एक नये भारत-भूटान व्यापार, वाणिज्य समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इसमें दोनों के बीच मुक्त व्यापार जारी रखने की व्यवस्था की गयी और प्रवेश प्रक्रिया को सरल बनाने तथा व्यापार कर में छूट दी गयी।

प्रधानमन्त्री पी०वी० नरसिंह राव तथा दक्षिण एशिया :

20 जून, 1991 को पी०वी० नरसिंहराव अल्पमतीय सरकार का नेतृत्व करने के लिए चयन किये गये माधव सिंह सोलंकी सरकार में विदेश मन्त्री बनाये गये।

पाकिस्तान :

प्रधानमन्त्री श्री पी०वी० नरसिंहाराव ने भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों को सामान्य बनाने पर बल दिया। इसके लिए दोनों देशों के प्रधानमन्त्रियों की छः बार अलग-अलग स्थानों तथा अवसरों पर बैठकें हुई, परन्तु कोई विशेष सफलता न मिली। 30 जून, 1992 को एक वर्ष का कार्यकाल पूरा हो जाने के बाद प्रधानमंत्री राव ने कहा "यद्यपि अपने पड़ोसियों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने में हमारी गहरी

दिलचस्पी रंग ला रही है तथापि पाकिस्तान के साथ हमारा अनुभव निराशाजनक है।" हम यही कथन अधिक बल पूर्वक 1991-98 तक के वर्षो के लिए भी दोहरा सकते हैं।

पाकिस्तान द्वारा कश्मीर के उग्रवादियों को समर्थन तथा उन्हें दी जा रही सहायता के साथ-साथ 6 दिसम्बर, 1992 को अयोध्या की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के समय पाकिस्तानी शासकों के भारत विरोधी प्रचार पाकिस्तान के अडियल तथा भारत विरोधी रूख ने उत्तर शीत युद्ध काल में भारत-पाक के मध्य सम्भावित सहयोग तथा मित्रता की समस्त प्रक्रिया व्यर्थ कर दी। हरारे राष्ट्रकुल शिखर सम्मेलन में दोनों प्रधानमन्त्रियों ने भविष्य में परिपक्व राजनीतिक सम्बन्धों तथा सूझ-बूझ के साथ काम करना स्वीकार किया। 6 दिसम्बर, 1992 की अयोध्या दुर्घटना के बाद से पाकिस्तान विवादास्पद ढाँचे के गिराए जाने को लेकर मुस्लिम देशों को अपने पीछे लगाने में जुटा रहा। भारत को 'हिन्दू भारत' के रूप में पेश करके उसे एक मुसलमान विरोधी देश प्रस्तुत करता रहा।

श्रीलंका :

"जून, 1991 को भारत और श्रीलंका के विदेश मंत्रियों माधव सिंह सोलंकी तथा हैरोल्ड हर्थ के मध्य एक संयुक्त आयोग बनाने का समझौता हुआ।"[71] "इस आयोग की बैठक 6 जनवरी, 1992 को सम्पन्न हुई जिसमें विदेशमंत्री हैरोल्ड हर्थ ने यह घोषणा की कि लगभग 30,000 तमिल शरणार्थियों को प्रथम चरण में स्वदेश वापस लाया जायेगा।"[72] अप्रैल, 1992 में भारत श्रीलंका सम्बन्धों को तब एक गहरा आघात लगा, जब राष्ट्रपति प्रेमदासा ने भारतीय शान्ति सेना को व्यवसाय करने वाली सेना करार दिया। इधर राजीवगांधी की हत्या के बाद लिट्टे के प्रति तमिलनाडु की सहानुभूति समाप्त हो चुकी थी। गृहमंत्री एस०बी० चौह्वाण ने लिट्टे को अवैध संगठन घोषित कर दिया तथा 14 मई, 1992 को भारत ने प्रतिबन्ध लगा दिया।

22 जून, 1993 को श्रीलंका के प्रधानमंत्री रानिल विक्रमसिंघे भारत की यात्रा पर आए। 21 सितम्बर, 1993 को उड्डयन क्षेत्र में एक समझौता हुआ जिसमें भारत ने श्रीलंका जाने वाली उड़ानों की संख्या में वृद्धि का निर्णय लिया लेकिन भारत कुछ कारणोवश इसे पूरा न कर सका। 16 अगस्त, 1994 को श्रीमती सिरिमावों भण्डारनायके की पुत्री चन्द्रिका कुमार तुंगे को चुनावों में जीत मिली तथा प्रधानमंत्री बनी। "शान्ति की स्थापना की दिशा में पहल करते हुए प्रधानमंत्री श्रीमती

कुमारतुंगे ने जाफना, पेनिनसुला जाने वाले मालवाहक जहाजों पर लगी पाबन्दी को हटा लिया जिससे तमिलों को अत्यन्त राहत मिली।''[73]

9 नवम्बर, 1994 को चन्द्रिका कुमार तुंगे ने चुनावों में विजयी हुई तथा चौथी राष्ट्रपति बनीं। लिट्टे के साथ बातचीत के द्वारा समस्या के समाधान के लिए उद्धृत हुई। प्रधानमंत्री श्री राव ने श्रीलंका के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध कायम किए तथा श्रीलंका से भारत द्वारा भारी मात्रा में वस्तुओं का आयात भी हुआ। इस प्रकार राव सरकार के कार्यकाल में भारत-श्रीलंका सम्बन्धों को एक नयी दिशा प्राप्त हुयी। ''राव सरकार द्वारा साप्टा तथा साफ्टा की स्थापना पर विशेष जोर देकर श्रीलंका के साथ आर्थिक सम्बन्धों को मजबूत बनाया।''[74]

नेपाल :

भारत में श्री नरसिंहा राव की सरकार बनने तथा बांग्लादेश में संसदीय प्रणाली की पुर्नस्थापना (सितम्बर 1991) तथा बेगम खालिदा जिया के प्रधानमन्त्री बनने से दोनों देशों में मधुरता बढ़ी। बांग्लादेश के विदेशमन्त्री भारत के विदेशमन्त्री के आमन्त्रण पर अगस्त, 1991 को सरकारी यात्रा पर आए तथा एक ऋण करार तथा दोहरे कराधान के परिहार सम्बन्धी करार पर हस्ताक्षर किये। नदी जल बॅटवारे पर अक्टूबर, 1991 में नई दिल्ली में और फरवरी, 1992 में ढाका में सचिव स्तर की बातचीत की गयी। मई, 1992 में खालिदा जिया ने भारत की यात्रा की और त्रिपुरा से 50 हजार चकमा शरणार्थियों की वापसी तथा अनधिकृत आवागमन की समस्या से निपटने के लिए एक विदेश सचिव स्तरीय संयुक्त कार्यदल बनाने पर सहमत हो गये। 26 जून, 1992 को भारत ने तीनबीघा क्षेत्र बांग्लादेश को हस्तान्तरित कर दिया। तीनबीघा क्षेत्र को पट्टे पर देने का भारत के कई राजनीतिक दलों ने विरोध किया किन्तु बांग्लादेश के साथ मैत्री को अधिक मजबूत बनाने की मंशा से भारत सरकार ने यह निर्णय लिया।

नेपाल के प्रधानमंत्री श्री कोइराला ने 5 से 10 दिसम्बर, 1991 में भारत दौरा किया तथा पांच महत्वपूर्ण सन्धियों और करारों पर हस्ताक्षर किये गये। व्यापार तथा पारगमन संधियों में काफी रियायत के प्रावधान किये गये। नेपाल ने 48 भारतीय संयुक्त उद्यमों का अनुमोदन किया। अप्रैल, 1995 में नेपाली प्रधानमंत्री मनमोहन अधिकारी की भारत यात्रा से दोनों देशों के सम्बन्धों में प्रगाढ़ता बढ़ी। फरवरी, 1996 में नेपाली प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउवा की यात्रा ने सम्बन्धों को और प्रगाढ़ बनाया।

भूटान :

योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्री प्रणव मुखर्जी दिसम्बर, 1991 में भूटान गये। महामहिम नरेश वांगचुक ने जनवरी, 1993 तथा दिसम्बर, 1994 में भारत की यात्रा की। प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव 21-22 अगस्त, 1993 को भूटान की सद्‌भावना यात्रा की। यह यात्रा लाभप्रद रही और इससे भूटान में चल रही कई परियोजनाओं के सहयोग को बढ़ाने में मदद मिली।

अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा की सरकार 13 दिन के लिए मई, 1996 में 11वीं लोकसभा चुनावों के पश्चात सत्तारूढ़ हुई। 24 मई, 1996 को संसद के संयुक्त अधिवेशन में प्रस्तुत राष्ट्रपति के भाषण से वाजपेयी की विदेश नीति का पता चलता है। पाकिस्तान सहित दक्षिण एशिया के अपने सभी पड़ोसियों के साथ द्विपक्षीय रूप में तथा सार्क के मंच पर सम्बन्ध सुधारने पर विशेष जोर दिया। परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण इस्तेमाल की प्रतिबद्धता पर जोर देते हुए राष्ट्रीय हितों के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक होने पर परमाणु-नीति के पुनर्मूल्यांकन पर जोर दिया गया।

संयुक्त मोर्चा सरकार तथा दक्षिण एशिया :
(प्रधानमंत्री एच0डी0 देवेगौड़ा तथा प्रधानमंत्री इन्द्र कुमार गुजराल का कार्यकाल)

वाजपेयी सरकार के त्यागपत्र के पश्चात संयुक्त मोर्चे के नेता श्री एच0डी0 देवेगौड़ा ने 1 जून, 1996 को प्रधानमन्त्री पद की शपथ ली। 5 जून, 1996 को घोषित न्यूनतम साझा कार्यक्रम में विदेश नीति के सन्दर्भ में श्री देवेगौड़ा ने कोई नई व्याख्या नहीं दी तथा गुटनिरपेक्ष मार्ग पर चलते हुए गुट निरपेक्ष आन्दोलन को पुख्ता करने, परमाणु अप्रसार के लक्ष्य को बढ़ावा देने और सार्क, साप्टा के अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से पड़ोसी देशों के साथ घनिष्ठ सहयोग बढ़ाने पर जोर दिया। अप्रैल, 1997 तक देवेगौड़ा प्रधानमंत्री रहे। प्रधानमंत्री देवेगौड़ा का 10 माह का कार्यकाल रहा। सौम्य राजनयिक माने जाने वाले देश के 12वें प्रधानमंत्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल 21 अप्रैल, 1997 को प्रधानमंत्री बने। 1976 में सोवियत संघ में भारतीय राजदूत के रूप में महत्वपूर्ण राजनयिक दायित्व सौंपा गया। वी0पी0सिंह और एच0डी0 देवेगौड़ा के सरकारों में इन्द्र कुमार गुजराल ने कुशल विदेशमंत्री के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह किया। इन्द्र कुमार गुजराल 21 अप्रैल, 1997 से मार्च 1998 तक लगभग 11 माह तक प्रधानमंत्री रहे।

एच0डी0 देवेगौड़ा - इन्द्रकुमार गुजराल की कालावधि भारतीय विदेश नीति के दस्तावेजों में एक ऐसे कालांश के रूप में दर्ज की जायेगी, जिसमें भारत ने विश्व के शक्तिशाली देशों के दबाव तथा अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी में अलग-थलग पड़ जाने के जोखिम के बावजूद अपने राष्ट्रीय हितों के संवर्धन हेतु सी0टी0बी0टी0 के वर्तमान स्वरूप पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया।

पाकिस्तान :

जून, 1996 में जब संयुक्त मोर्चा सरकार बनी तथा इन्द्र कुमार गुजराल विदेश मंत्री बने तो भारत-पाकिस्तान मित्रता एवं सहयोग के विकास उद्देश्य को एक प्राथमिकता बनाया गया। गुजराल सिद्धान्त के आधार पर भारत ने अपने पड़ोसियों से अपने सम्बन्धों को अधिक बेहतर बनाने की नीति अपनाई। बाद में जब गुजराल प्रधानमंत्री बने तो सार्क, चोगम तथा संयुक्त राष्ट्र की बैठकों के अवसरों पर दोनों देशों के सम्बन्धों विशेषकर आर्थिक और व्यापारिक सम्बन्धों को विकसित करने तथा सभी द्विपक्षीय मुद्दों और समस्याओं पर वार्तालाप आरम्भ करने के उद्देश्य को अपनाया।

श्रीलंका :

"संयुक्त मोर्चा सरकार ने अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ मजबूत आर्थिक सम्बन्धों को स्थापित करने में विशेष रूचि दिखाई।"[75] श्रीलंका के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करते हुए श्रीलंका सरकार द्वारा लिट्टे के विरूद्ध चलाये जा रहे अभियानों को अपना समर्थन दिया। "प्रधानमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल द्वारा प्रस्तुत गुजराल सिद्धान्त मूलतः दक्षिण एशियाई पड़ोसियों के साथ विकल्प सम्बन्धों का प्रारूप है।"[76] गुजरात सिद्धांत के कार्यान्वयन से पड़ोसियों के साथ सकारात्मक सम्बन्धों की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान मिलता है।"[77] "1997 को श्रीलंका की यात्रा पर गए प्रधानमंत्री गुजराल ने यह आश्वासन दिया कि भारत श्रीलंका के आन्तरिक मामलों में किसी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं करेगा।"[78] "इस घोषणा का स्वागत करते हुए राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमार तुंगे ने कहा "नई दिल्ली ने जो अहस्तक्षेप की नीति अपनायी है उसका हम स्वागत करते हैं, इतना ही नहीं बल्कि गुजराल सरकार ने तमिल समस्या के समाधान करने में हमें अपना नैतिक समर्थन भी प्रदान किया है जिससे परस्पर विश्वास और सौहार्द का वातावरण स्थापित होने में सहायता मिली है।"[79]

बांग्लादेश :

सितम्बर, 1996 में गुजराल ने बांग्लादेश की यात्रा की 12 दिसम्बर, 1996 को दोनों देशों ने गंगा जल की फरक्का के स्थान से भागीदारी के सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक समझौता किया। यह विवाद 1977 के अन्तरिम समझौते के 1982 में समाप्त होने के बाद से अधर में लटका था। इस ऐतिहासिक समझौते के बाद जनवरी, 1997 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री देवेगौड़ा तथा विदेशमंत्री गुजराल ने बांग्लादेश की यात्रा की तथा प्रधानमंत्री शेखहसीना वाजेद से लाभकारी द्विपक्षीय बातचीत की। मार्च, 1997 में बांग्लादेश तथा चकमा नेताओं में एक महत्वपूर्ण 20 सूत्रीय समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत 50,000 चकमा शरणार्थियों को बांग्लादेश में पुर्नस्थापित किया जाना था। इस समय के आस-पास भारत तथा बांग्लादेश ने भूटान तथा नेपाल के साथ उपक्षेत्रीय आर्थिक-व्यापारिक सहयोग द्वारा विकास के लिए उपक्षेत्रीय सहयोग की व्यवस्था को स्वीकार किया।

जुलाई, 1997 में दोनों देशों के संयुक्त नदी आयोग की बैठक हुई। इसमें गंगा पानी सन्धि के लागू किए जाने की समीक्षा तथा फरक्का पर अनुभव की जाने वाली समस्याओं पर विचार-विमर्श हुआ। तीस्ता के जल की भागीदारी पर भी बातचीत हुई।

नेपाल :

महाकाली नदी सम्बन्धी समझौते से दीर्घकालीन सहयोग की एक विशाल परियोजना का मार्ग प्रशस्त हुआ। काठमाण्डू में वाणिज्य सचिव स्तर की बातचीत 4 से 7 जुलाई, 1996 को हुई और भारत-नेपाल व्यापार संधि को 5 वर्षो की अवधि अर्थात् 5 दिसम्बर, 2001 तक नवीकृत करने से सम्बद्ध पत्रों का आदान-प्रदान भारत सरकार और नेपाल सरकार के बीच 3 दिसम्बर, 1996 को हुआ। नेपाल में निर्मित वस्तुएं अब सीमा शुल्क से मुक्त और बिना किसी यात्रा प्रतिबन्ध के भारतीय बाजार में आ सकती है। प्रधानमंत्री गुजराल 5-7 जून, 1997 को नेपाल यात्रा पर रहे तथा तमाम समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। गुजराल की नेपाल यात्रा में नेपाल की एक बड़ी उपलब्धि यही रही कि उसने बांगला देश से नेपाल जाने के लिए 61 कि0मी0 के पारगमन मार्ग की अनुमति भारत से प्राप्त कर ली।

भूटान :

भारत के विदेशमंत्री 10 से 12 अगस्त, 1996 तक और मन्त्रिमण्डल सचिव 21 से 25 मई, 1996 तक भूटान की यात्रा पर गए। भूटान के महामहिम नरेश भी 6 से 9 जनवरी, 1997 तक भारत की यात्रा पर रहे। 1997 में भारत तथा भूटान ने बांग्लादेश तथा नेपाल के साथ उपक्षेत्रीय सहयोग की धारणा को स्वीकार किया ताकि दक्षिण एशिया के इस आर्थिक उपक्षेत्र का तीव्रता से विकास सम्भव हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. R.S. Yadav : Trends in the Studies of Indian Fareign Policy; International Studies. V-30 Jan- March 1993, Page-53.
2. George Modlaski : A theory of foreign policy, London, 1962, Page-67
3. Felix Gross : Foreign policy analysis, New york, 1954, Page-47-48
4. J. Bandopadhyay : The making of India's Foreign policy, New Delhi. 1979. Page-8
5. Baljeet Singh : Indian Foreign policy, An analysis, London 1976. P-8
6. A Appadorai : Domestic roots of India's Foreign policy 1947-72 Oxford university Press Bombay, Calcutta. Madras. 1981, Page-1
7. M.G. Gupta : India's Foreign policy ; Theory and Practice. Y.K. Publishers.8 Parasuram nager. Shahganj. Agra. Page-31
8. A. Appadorai : Domestic roots of India's Foreign policy 1947-72 oxford university press Bombay Calcutta. Madras. 1981, Page-2
9. पी० डी० कौशिक : भारत की विदेश नीति; मिश्र ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी, 2002 प्राक्कथन से उद्धत।
10. जवाहरलाल कौल : कांग्रेस वर्णिका अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की मासिक पत्रिका, 24 अकबर रोड दिल्ली, नवम्बर 1985, पृ०-18।
11. J. Bando padhyaya : The making of India's foreign policy Allied publishers : New Delhi. Bombay Calcutta, Page-283
12. पी०डी० कौशिक : भारत की विदेश नीति; मिश्र ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी, 2002 पृ०-12।
13. V.P. Dutta : India and the world : Vikas Publishers, New Delhi. Page-24
14. पी०डी० कौशिकः भारत की विदेश नीति, मिश्र ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी, 2002, पृ० 14-15
15. Ibid. ,, ,, ,, ,, Page-10
16. Nehru : India's Foreign policy, Publication division govt of India, Delhi 1961, Page 184-85

17. The Hindu Madras, 6.11.1956, (शीला ओझा : भारतीय विदेश नीति का मूल्यांकन; प्रकाशकः प्रिन्टवैल, रूपा बुक्स प्रा०लि० एस० 12 शांपिंग काम्पलेक्स तिलक नगर जयपुर, पृ० 24 से उद्धृत)।

18. शीला ओझा : भारतीय विदेश नीति का मूल्यांकन; प्रिन्टवैल रूपा बुक्स प्रा०लि० एस० 12 शांपिंग काम्पलेक्स तिलक नगर जयपुर, पृ० 25।

19. Michael brecher : India's foreign policy : An Interpretation institute of pacific relations 1957, Page-562

20. V.P. Dutta : India's foreign policy, vikas Publishers, Delhi. 1984, Page-21

21. J. Bando padhyaya : The making of India's foreign policy Allied publishers New Delhi, Page-290

22. Hiren mukharjee : The gentl colosus. Calcutta. 1949, P-187.

23. Jawahar Lal Nehru : India's foreign policy; New Delhi. 1961 Page-28

24. V.P. Dutta : India's foreign policy, vikas publishers Delhi. 1984, Page-9

25. L.P. singh : India's foreign policy ; Uppal publisher house, New Delhi, Page-6

26. V.P. Dutta : India's foreign policy, vikas publishers Delhi. 1984, Page-13

27. L.P. singh : India's foreign policy ; Uppal publisher house, New Delhi, Page-7

28. जे०एन० दीक्षित : भारतीय विदेश नीति; प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2006, पृ०-318।

29. डॉ० बी०एल० फडिया : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (सिद्धान्त एवं समकालीन राजनीतिक मुद्दे) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2006, पृ०-258।

30. डॉ० एन०के० श्रीवास्तव : भारत और विश्व राजनीति, साहित्य भवन आगरा, 1987, पृ०-281।

31. A. Appadorai and M.S. Rajan; India's foreign policy and relations. South Asian publishers New Delhi, 1988 Page-202.

32. A.K. Sen : International Relations. S.Chand and Co, New Delhi 1993, Page-616

33. S.U. Kodikara : Foreign policy of Srilanka, A third world perspective. chanakya publications, Delhi, 1982, Page- 36

34. Ceylon proceeding of debate in the house of representative, vol 94. Col. 1954-55

35. A. Appadorai and M.S. Rajan; India's foreign policy and relations. South Asian publishers New Delhi, 1988 Page-202.

36. The Hindu, 22.02.1974

37. Report 1976-77 Govt of India Ministry of external affairs, New Delhi, Page-19

38. यू०आर० घई : भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी जालन्धर, 2005 पृ0-437-38।

39. दिनमान, 19 से 25 फरवरी, 1978 (सम्पादकीय-खिड़कियाँ खुल गई हैं)।

40. नई दुनिया, 9 फरवरी, 1978।

41. धर्मयुग, 5 मार्च, 1978 (रमाशंकर अग्निहोत्री-खैबर दर्रे से अरब सागर तक), पृ0 26।

42. Indian foreign review, 15 february, 1978, अंक-15, पृ0-07।

43. दिनमान, 9 से 15 अप्रैल, 1978।

44. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 12 अप्रैल, 1978।

45. वार्षिक रिपोर्ट-1977-78 तथा 1978-79, भारत सरकार, विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली।

46. H.P. Chattopadhyaya Ethnic unrest in modern Srilanka, M.D. Publication New Delhi 1994, Page-59-60

47. Rohan Gunaratnam war and peace in Srilanka (Institute of fundamental- Studies. Srilanka. 1988 Second Edition. Page-20

48. Ram mohan: "Srilanka The fractured Island" Penguin books. New Delhi. 1989. P-54

49. S. Sivanayagam "The phenomenon of tamil Militancy" In V. Suryanarayan (ed) "Srilanka Crisis and India's Response" Page-44

50. Report 1976-77 The Govt. of India. Ministry of Exteranal affairs New Delhi. Page-11-12

51. Hindustan 20 December, 1977

52. Economic Times, 18 March 1978.

53. National Herold, New Delhi. 29 Dec, 1978

54. K.P. Sunil. "What is the LTTE UPto 2 the illustrated wekly of India" June, 22-28. 1991 Page- 28

55. Report 1980-81 : Ministry of External affairs Govt of India-Pub. div.

56. डॉ० एन०के० श्रीवास्तवः भारत और विश्व राजनीति, साहित्य भवन आगरा,1981, पृ० 229-30

57. V. Suryanarayan " India and Ethnic Conflict in Srilanka In V.D. Chopra and K.P. Misra (ed) 'India's foreign policy in the ninties" New Delhi 1990, Page-280

58. हरिशंकर व्यास लेख-सिक्किम के डर से भटकता भूटान, जनसत्ता 25 अप्रैल, 1984।

59. P.V. Rao. " Ethnic Conflict in Srilanka : India's role and perception" Asian Survey Vol. 28 No.4, April, 1998 P-426

60. The times of India 5 June, 1985.

61. Indian Express, 13 September, 1986.

62. Willium Mogowan, Only man is vile the tragedy of Srilanka, Rupa and co. Allahabad 1993. Page-190

63. H.P. Chattopadhyay, Ethnic Unrest in modern Srilanka, M.D. Publications. New Delhi, 1994, Page-85.

64. Lt. Gen. S.C. Sardeshpande. Assignment jaffana. New Delhi. Lancer Publication 1992, Page-102-105

65. Frontline, 4-17 August, 1990

66. India today. 28 February, 1990

67. Asian Recorder 1990, Page-21406

68. Vikram Singh Nain. "International Relations and Ethnicity" R.B.S.A. Publishers Pvt. Ltd. 2000, Page-129

69. Frontline, 16-29 March, 1991

70. India today, 15 july, 1991

71. Asian Recorder 1991, P-21939

72. R.K. Dubey : Indo-Srilanka Relations with special reference to the Tamil problem" Page-92-93.

73. Frontline, 23 September, 1994

74. India's Foreign policy : Emerging Challange and paradigms B.C. Uproti. S.N. Kaushik Mohan lal Sharma. vol II Kalinga publications. 2003, Page-395
75. Vikram singh nain: International relations and Ethnicity R.B.S.A. publishere Pvt Ltd. 2000, Page-134
76. 1990 के दशक में भारतीय विदेश नीति एक अध्ययन, प्रिन्टवेल पब्लिशर्स 2000. पृ0-77।
77. Bhawanisen gupta, " India in the 21 Centuary" International affairs. Vol 73. Jan 1997, P-297-314.
78. Suman Sharma, " India and SAARC", Gyan Publishing house New Delhi, 2001 P-181
79. Times of India. New Delhi. December 22. 1997.

अध्याय-षष्ठम्

अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में दक्षिण एशिया के प्रति प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की विदेश नीति एवं उसकी प्रासंगिकता

(अ) प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं दक्षिण एशिया :-

1. भारत एवं पाकिस्तान

2. भारत एवं बांग्लादेश

3. भारत एवं श्रीलंका

4. भारत एवं नेपाल

5. भारत एवं भूटान

6. भारत एवं मालद्वीव

(ब) दक्षिण एशिया के प्रति प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की विदेश नीति की प्रासंगिकता

(अ) प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी एवं दक्षिण एशिया :-

1. भारत एवं पाकिस्तान :

"15 अगस्त, 1947 को भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्रों के रूप में अलग-अलग अस्तित्व में आए। उस समय आशा की गई थी कि देश के विभाजन के बाद शान्ति स्थापित हो जाएगी, परन्तु पाकिस्तान की विदेश नीति का आधार ही भारत के प्रति घृणा बन गया। इसका एकमात्र कारण यह था कि पाकिस्तान का तो जन्म ही साम्प्रदायिक घृणा के आधार पर हुआ था। दूसरे कुछ ऐसी समस्याएँ भारत तथा पाकिस्तान के बीच उत्पन्न हो गयी, जिन्होनें इन दोनों देशों के बीच मैत्री की आशा को धूमिल बना दिया, जैसे दोनों के मध्य काश्मीर विवाद, हैदराबाद विवाद, जूनागढ़ विवाद, ऋण की अदायगी का प्रश्न, शरणार्थियों की समस्या, नहरी पानी विवाद आदि।"[1] विगत 60 वर्षो से भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों में अनेक उतार-चढ़ाव दृष्टिगत होते रहे है। ये सम्बन्ध इतने तनावपूर्ण भी रहे जिसकी परिणति चार युद्धों में हो चुकी है।

दोनों देशों के सम्बन्धों में सबसे प्रमुख मुद्दा कश्मीर समस्या है जो एक नासूर की तरह है जो किसी भी भारतीय सरकार के लिए एक चुनौती है। "इसी परिप्रेक्ष्य में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अपने 6 वर्षो के कार्यकाल में सम्बन्धों को सुधारने के लिए अनेक सकारात्मक पहल करने की कोशिश की हे। दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध कई दशकों के दौरान तनावों, उत्तेजक बयानों, वाह्य हस्तक्षेप, पारस्परिक सार्वजनिक भर्त्सना तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अपनी इज्जत घटा देने वाले कार्यो से भरपूर रहे हैं।"[2] के०आर० पिल्लै लिखते है : "निश्चित ही भारत के पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध हमारी विदेश नीति का सबसे अधिक देखने योग्य मुख्य भाग रहा है।"[3] नॉरमन डी पॉमर ने कहा है : "भारत के पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों ने भारत की समस्त विदेश नीति के प्रायः सभी पक्षों तथा इसके सारे अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्रभावित कर रहा है।"[4]

भारत पाकिस्तान के साथ अच्छे पड़ोसियों वाले सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तैयार था, तथापि पाकिस्तान के साथ कुछ समस्याएँ तथा झगड़ों की विद्यमानता के कारण पाकिस्तान के नकारात्मक दृष्टिकोण ने वांछित परिणाम प्राप्त करने में भारत को कभी भी सफल नहीं होने दिया।"[5] प्रधानमंत्री

वाजपेयी के नेतृत्व में बनी सरकार ने (1998 से 2004 तक) पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों को मधुर बनाने का भरसक प्रयास किया। 1998 से 2001 के कार्यकाल में भारत पाक सम्बन्धों में कई प्रकार के उतार-चढ़ाव आए। "परमॉणु परीक्षण, बस कूटनीति, लाहौर घोषणा, कारगिल युद्ध में पाकिस्तान की असफलता, पाकिस्तान में सैनिक शासन की स्थापना भारत में लोकतान्त्रिक गठबन्धन की नई साझी सरकार की स्थापना, क्लिंटन की भारत यात्रा से उत्पन्न स्थिति आदि प्रमुख घटनाओं ने भारत-पाक सम्बन्धों का निर्धारण किया और दुर्भाग्यवश यह निर्धारण नकारात्मक दिशा में ही हुआ। आज भी यह वातावरण नकारात्मक बना हुआ है।"[6] वाजपेयी ने भारत की विदेश नीति को गुट निरपेक्षता, पंचशील पर आधारित, द्विपक्षीयवाद, विकास के लिए क्षेत्रीय सहयोग, भारत की सुरक्षा के लिए आर्थिक प्रयास वाली नीति तथा परमॉणु विकल्प अपनाने के सिद्धान्तों पर आधारित तथा पाकिस्तान के साथ अच्छे सम्बन्धों को बढ़ाने वाली नीति पर अमल किया।

"11 मई, 1998 को 3 परमॉणु परीक्षण किए तथा 13 मई, 1998 को 2 और परीक्षण करके प्रधानमंत्री वाजपेयी ने भारत को परमॉणु शस्त्र क्लब में शामिल किया।"[7] "इस का उद्देश्य यह दिखलाना था कि उसके प्रारूपों से सम्बन्धित सुधरे हुए कम्प्यूटरी प्रदर्शन द्वारा अतिरिक्त ऑकड़ें प्राप्त करना और अगर आवश्यक समझा जाए तो कुछ सूक्ष्म प्रयोगों की क्षमता को लागू करने की योग्यता को प्राप्त करना था।"[8] वाजपेयी ने कहा कि हम एक बड़े बम की क्षमता वाले बन गए है। इसके लिए आवश्यक निर्देश और नियन्त्रण प्रणाली भी हासिल कर ली गई है। प्रधानमंत्री ने कहा कि भारत अब नाभिकीय अस्त्र सम्पन्न देश हो गया है, लेकिन इसे समग्र रूप से देखना होगा।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कहा कि सी०टी०बी०टी० भेद-भाव मूलक है क्योंकि यह नाभिकीय हथियारों वाले देशों को उन्नत प्रौद्योगिकी की क्षमता के साथ अपना नाभिकीय अस्त्र कार्यक्रम जारी रखने की अनुमति देता है। "भारत को किसी भी तरह दण्डात्मक कदमों और धमकियों से नहीं डरना चाहिए क्योंकि भारत के पास अपना अतीत का गौरव और भविष्य की दृष्टि हर क्षेत्र में सशक्त बनाने की क्षमता मौजूद है।"[9]

"प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कहा कि भारत अपनी नाभिकीय क्षमता का उपयोग अगर बहुत ही अनिर्वाय हुआ तो आत्मरक्षा के लिए करेगा।"[10] परमॉणु परीक्षण का मुख्य मकसद चीन-पाकिस्तान की

परमॉणु क्षेत्र में गुटबन्दी तथा पाकिस्तान का छिपे रूप में परमॉणु शस्त्र बनाना है। जवाब में पाकिस्तान के द्वारा भी 28 मई, 1998 को छः परीक्षण करना भारत के विरूद्ध शक्ति संग्रहण के रूप में पेश किया गया। ''पाकिस्तान का छिपा हुआ परमॉणु कार्यक्रम अब खुला हो गया तथा इसने अब खुले रूप में अपने कार्यक्रम को भारत का मुकाबला करने के लिए आवश्यक प्रोग्राम के रूप में उचित ठहराना आरम्भ कर दिया।''[11]

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कहा कि भारत पहले कभी भी परमॉणु शस्त्रों का प्रयोग नहीं करेगा। इससे पाकिस्तान द्वारा कश्मीर के मुद्दे को दक्षिण-एशिया की सुरक्षा से जोड़ने के प्रयास को निरस्त किया तथा भारत-पाकिस्तान द्विपक्षीय मुद्दों, विवादों तथा सम्बन्धों में किसी तीसरे देश की भूमिका की संभावना को पूर्ण रूप से नकार दिया। पाकिस्तान के साथ द्विपक्षीय वार्तालाप की आवश्यकता की बात को भारत ने फिर दोहराया। ऐसी बातचीत के लिए पहला अवसर उस समय पैदा हुआ जब जुलाई, 1998 में कोलम्बों सार्क शिखर सम्मेलन में भारत तथा पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों ने एक बैठक की परन्तु परिणाम शून्य रहा। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ, ने इसे शून्य बैठक (Zero meeting) कहा तथा कश्मीर को भड़काने के लिए तैयार चिंगारी कहकर कश्मीर मुद्दे के अन्तर्राष्ट्रीयकरण का प्रयास किया। यहाँ तक कि पाकिस्तान ने भारत के साथ परमॉणु युद्ध छिड़ने की संभावना की बात भी कर दी। ''सार्क के माध्यम से पाक का इस तरह का बयान दोनों देशों के सम्बन्धों को तनावपूर्ण बनाए रखा।''[12]

''पाकिस्तान विद्यमान परमॉणु ताकतों की लगातार सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त करता रहा। बदले में पाकिस्तान यह आश्वासन देता रहा है कि वह पक्षपातपूर्ण अप्रसार संधि, कारनामों आदि का किसी शर्त के बिना पालन करता रहेगा। अगर भारत को ऐसा करना पड़ा (भारत ऐसा कभी नहीं कर सकता) तो पाकिस्तान की घोषित परमाणु अस्त्र हैसियत भारत की विदेश नीति के सम्मुख नई तथा जटिल चुनौतियाँ उत्पन्न हो जाएंगी।''[13] नाम शिखर सम्मेलन (सितम्बर, 1998) में खराब आतंरिक परिस्थितियों के कारण पाकिस्तान के प्रधानमंत्री शामिल नहीं हो सके। इसके बाद वाजपेयी का नवाज शरीफ की मुलाकात का एक अवसर तब बना जब सितम्बर, 1998 में दोनों नेता संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन में भाग लेने के लिए न्यूयार्क गए।

प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने अपने भाषण में कश्मीर मुद्दे को उठाया और यह कहा कि दक्षिण

एशिया में शक्ति संतुलन को पोखरन विस्फोटों द्वारा असंतुलित करने का दोषी भारत था। ''बाद में दोनों नेताओं के बीच यह निर्णय हुआ कि द्विपक्षीय वार्तालाप को पुनः आरम्भ किया जाए तथा यह वार्तालाप 2+6 के फार्मूले-अर्थात् कश्मीर तथा शांति एवं सुरक्षा के मुद्दे को दो प्रमुख मुद्दे मानकर छः अन्य मुद्दों पर वार्तालाप के आधार पर हो।''[14] इसके बाद भारत पाकिस्तान के वार्तालाप के दो दौर हुए तथा क्रिकेट कूटनीति का आरम्भ किया गया, लेकिन कोई ठोस परिणाम न प्राप्त हो सका।

20 फरवरी, 1999 को प्रधानमंत्री वाजपेयी ने बस द्वारा लाहौर की यात्रा की तथा पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ से भेंट की। यह एक ऐसा कदम था जिससे अशांत सीमा के दोनों ओर रहने वाले लोगों के हृदयों को प्रसन्नता प्राप्त हुई। ''प्रधानमंत्री वाजपेयी की यह आशा थी कि नवाज शरीफ भी जवाबी यात्रा करेंगे, परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ।''[15] एक अच्छे वातावरण में वार्तालापों तथा बैठकों के बाद दोनों देशों द्वारा तीन महत्वपूर्ण दस्तावेजों-लाहौर घोषण पत्र, संयुक्त वक्तव्य तथा आपसी समझ पत्र पर हस्ताक्षर किए गए तथा दोनों देशों के नेताओं ने आपसी सम्बन्धों, शांति तथा सुरक्षा के मुद्दे, परमॉणु मुद्दे पर सम्बन्धित विषयों पर बातचीत की तथा यह सहमति बनाई गई कि क्षेत्र में शस्त्र दौड़ न चलाई जाए। परमॉणु और परम्परागत क्षेत्रों में विश्वास उत्पन्न करने वाले विस्तृत उपायों को अपनाना, तथा दोनों देशों ने शिमला समझौते के प्रावधानों तथा भावना को लागू करने के निश्चय को पूर्ण सार्वभौमिक परमॉणु निःशस्त्रीकरण तथा परमॉणु अप्रसार के उद्देश्यों की ओर प्रतिबद्धता को एवं सार्क के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों के प्रति बचनबद्धता को दोहराया। ''आतंकवाद की आलोचना की गई एवं इस बुराई की समाप्ति के लिए संघर्ष करने के निश्चय को प्रकट किया गया।''[16]

प्रधानमंत्री वाजपेयी की पाकिस्तान यात्रा के बाद जो संयुक्त वक्तव्य जारी किया गया उसमें कहा गया है कि समय-समय पर दोनों देशों के विदेशमंत्री बैठक किया करेंगे तथा आपसी सम्बन्धों के सभी मुद्दों, परमॉणु मुद्दों, डब्लू०टी०ओ० से सम्बन्धित मुद्दों वीजा तथा यात्रा व्यवस्थाओं को उदार बनाने पर विचार-विमर्श किया जायेगा, सूचना तकनीक तथा मंत्रीस्तर पर एक दो सदस्यीय समिति को नियुक्त किया जायेगा ताकि हिरासत में लिए गए नागरिकों तथा गुमशुदा युद्ध बन्दियों से सम्बन्धित मानववादी मुद्दों का परीक्षण किया जा सके।''[17] इस यात्रा के दौरान भारत तथा पाकिस्तान के विदेश सचिवों द्वारा जिस समझ के स्मरण पत्र पर हस्ताक्षर किए, उसकी निम्न विशेषताएं थी :-

- सुरक्षा धारणाओं तथा परमॉणु सिद्धांतों पर दोनों पक्षों द्वारा द्विपक्षीय विचार विमर्श किया जाएगा ताकि परमॉणु तथा परम्परागत क्षेत्रों में विश्वास निर्माण के लिए उपायों को विकसित किया जाए तथा विरोध से दूर रहा जाए।

- दोनों देश मिसाइल परीक्षण की पूर्व सूचना एक दूसरे को देंगे।

- बहुपक्षीय मंच पर हो रहे वार्तालाप के संदर्भ में दोनों देश सुरक्षा, निःशस्त्रीकरण तथा परमॉणु अप्रसार के मुद्दों पर द्विपक्षीय विचार-विमर्श करेंगे।"[18]

पाकिस्तान ने भारत द्वारा बढ़ाए गए मैत्री के हाथ को नहीं पकड़ा। पाकिस्तान ने प्रधानमंत्री वाजपेयी की लाहौर यात्रा के तुरन्त बाद कारगिल की पहाड़ियों पर अनधिकृत कब्जा करके भारत के विरूद्ध आक्रामक कार्यवाही कर दी। कारगिल का क्षेत्र कश्मीर में नियंत्रण रेखा के इस ओर, भारतीय प्रदेश में स्थित है। भारत के संचार माध्यमों को पूरी आशा थी कि लम्बे समय से चली आ रही भारत-पाकिस्तान कटुता के स्थान पर मधुर सम्बन्धों की स्थापना होने जा रही थी। जैसा कि असगर अली इंजीनियर ने लिखा " विभाजन अब इतिहास बन चुका है तथा अब कटुता समाप्त होनी ही चाहिए।"[19] पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने कहा कि " हमकों परमॉणु प्रश्न पर चर्चा करनी चाहिए, प्रक्षेपास्त्रों के विषय में बातचीत करनी चाहिए, हमकों प्रत्यक्ष वार्ता करनी होगी। भारत कश्मीर के प्रश्न पर तीसरे पक्ष का हस्तक्षेप नहीं चाहता तो फिर परमॉणु मुद्दे पर तीसरे पक्ष की कोई भूमिका क्यों हो।"[20]

20 फरवरी, 1999 को दिल्ली-लाहौर बस सेवा की यात्रा में वाजपेयी का भव्य स्वागत किया गया तथा इस अवसर पर पाकिस्तान की तीनों सेनाओं के सेनाध्यक्ष उपस्थित नहीं हुए। पाकिस्तान के धार्मिक कट्टरपंथियों ने इस यात्रा का खुलकर विरोध किया। पाकिस्तान में समय-समय पर यह कहा जाता रहा था कि भारत तो अभी भी 1947 के विभाजन तथा पाकिस्तान की स्थापना को स्वीकार नहीं कर पाया है। इस मिथ्या भ्रम को दूर करने के लिए वाजपेयी ने लाहौर में स्थित मीनार-ए-पाकिस्तान गए ताकि भारत दुनिया को (विशेषकर पाकिस्तान) यह विश्वास दिला सके कि वह प्रभुतासम्पन्न पाकिस्तान की स्थापना व उसके अस्तित्व को स्वीकार करता है तथा सम्मान देता है।

"जहाँ एक ओर वाजपेयी द्वारा मित्रता तथा भाईचारे का प्रतीकात्मक यह कदम उठाया, वहीं दूसरी ओर पाकिस्तानी कट्टरपंथियों ने मीनार-ए-पाकिस्तान को पवित्र जल से धोकर उस स्थान को पवित्र किया जहाँ प्रधानमंत्री वाजपेयी खड़े हुए थे।"[21] दोनों प्रधानमन्त्रियों ने 21 फरवरी, 1999 को लाहौर घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए। इस घोषणा पत्र के माध्यम से लाहौर प्रक्रिया आरम्भ हुई तथा लाहौर भावना का सूत्रपात हुआ।

लाहौर घोषणा, फरवरी 1999 :

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने 20 फरवरी, 1999 को लाहौर भाषण के दौरान कहा – "हम कल आए थे, आज जा रहे हैं, दुनिया का यही तरीका है। मुझे लगता है दिल्ली और लाहौर की दूरी कुछ कम गई है हम कुछ नजदीक आ रहे हैं। लाहौर की यादें मेरे दिमाग में है, मैं पहली बार नहीं आया हूँ आखिरी बार भी नहीं। पहली दफा आया था जब अंग्रेजों का राज था, मैं-कुलपहाड़ बनी तक गया था, हाईस्कूल का विद्यार्थी था। अब बहुत दिन दुश्मनी हो चुकी, अब कुछ दोस्ती का मौका मिलना चाहिए। आपने देश और मेरे डेलीगेशन का जो स्वागत किया उसके लिए मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ।"[22] लाहौर घोषणा में लिखा गया कि "दोनों देशों में शांति तथा स्थायित्व, अपने लोगों की उन्नति तथा समृद्धि के लिए एक साझे दृष्टिकोण के आधार पर भारत तथा पाकिस्तान के प्रधानमन्त्रियों का यह विश्वास था कि स्थायी शांति तथा मित्रतापूर्ण सहयोग एवं समरूप सम्बन्ध विकसित करने के द्वारा ही दोनों देशों के प्रमुख हितों की रक्षा की जा सकती है तथा उन्हें अच्छे भविष्य की ओर अपनी शक्ति लगाने के योग्य बनाया जा सकता है"।[23]

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के सिद्धान्तों तथा उद्देश्यों के प्रति सार्वभौमिक रूप में स्वीकृत शांतिपूर्ण सह अस्तित्व के सिद्धान्तों के प्रति प्रतिबद्धता के साथ दोनों देश यह निश्चय दोहराते हैं कि शिमला समझौते को इसके अक्षरों तथा भावना के साथ पूर्ण रूप में दृढ़ता से लागू करेंगे। दोनों देश सार्वभौमिक परमॉणु निःशस्त्रीकरण तथा परमॉणु अप्रसार के उद्देश्यों को स्वीकार करते हैं, आपसी विश्वास निर्माण करने वाले पगों जो कि सुरक्षा वातावरण को सुधारने के लिए आवश्यक है की महत्ता को स्वीकार करते हैं। दोनों देशों की सरकारें जम्मू तथा कश्मीर के मुद्दे सहित सभी मुद्दों के समाधान के लिए प्रयासों के तीव्र एवं गम्भीर प्रयास करेगें, एक दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, आपसी द्विपक्षीय

वार्तालाप की समुचित प्रक्रिया को तेज करेंगे, परमॉणु शस्त्रों के दुर्घटनावश तथा गैर-अधिकृत प्रयोग के खतरे को कम करने के लिए कदम उठाएंगे तथा परमाणु एवं परम्परागत क्षेत्रों में विरोध निवारण तथा विश्वास उत्पन्न करने के लिए विभिन्न धारणाओं एवं सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श करेंगे।

दोनों देश सार्क के प्रति प्रतिबद्धता प्रकट करते हैं तथा इसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इकट्ठे प्रयत्न करने की बात को पुनः स्वीकार करते हैं ताकि दक्षिण एशिया के लोग तीव्र आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति तथा सांस्कृतिक विकास के द्वारा अपने जीवन स्तर को सुधार करें। सभी प्रकार के आतंकवाद की निंदा करते हैं तथा इनका सामना करने का निश्चय प्रकट करते हैं। मानवाधिकारों एवं भौतिक स्वतन्त्रताओं की रक्षा करेंगे एवं उनको बढ़ावा देंगे।''[24]

लाहौर घोषणा में मैत्री, सहयोग, हस्तक्षेप न करने, आतंकवाद का अन्त करने, मानवाधिकारों का सम्मान करने तथा अच्छे पड़ोसियों के रूप में व्यवहार करने जैसे सम्माननीय आदर्शो पर बल दिया गया। परन्तु दुर्भाग्य की बात यह हुई की लाहौर घोषणा की स्याही सूखने भी नहीं पायी थी कि पाकिस्तान ने भारत के विरूद्ध झगड़े एवं आक्रमण का मार्ग अपना लिया। लाहौर घोषणा की अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में बड़ी प्रशंसा हुई। यह उचित ही था कि दोनों देशों के मध्य शांति एवं सद्भावना स्थापित करने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व अब दोनों प्रधानमंत्रियों को वहन करना होगा। संयुक्त वक्तव्य में दोनों प्रधानमंत्रियों ने घोषणा की कि, ''समय-समय पर दोनों विदेशमंत्री आपसी हितों के सभी मामलों पर चर्चा करेंगे, जिनमें परमॉणु-शक्ति सम्बन्धी मुद्दा भी शामिल होगा।''[25] इसमें एक महत्वपूर्ण प्रावधान यह किया गया कि दोनों देश अपने-अपने प्रक्षेपास्त्रों के परीक्षण की एक दूसरे को पूर्व सूचना देंगे तथा इस सम्बन्ध में एक द्विपक्षीय समझौता भी करेंगे।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने पाकिस्तान को आश्वासन दिया कि सभी आपसी विवादों को सुलझाने के लिए भारत कोई भी साहसपूर्ण कदम उठाने के लिए तैयार है। स्थायी शांति, स्थिरता, प्रगति तथा समृद्धि का आह्वान किया। प्रधानमंत्री ने कहा था कि ''हम इतिहास को बदल सकते हैं, परन्तु भूगोल को नहीं, हम अपने मित्रों को बदल सकते हैं, परन्तु पड़ोसियों को नहीं।'' साथ ही उन्होनें यह भी चेतावनी दी थी कि एक छोटी सी चिंगारी के भयानक परिणाम हो सकते है तथा इस बात पर बल दिया था कि विश्वास का वातावरण तैयार किया जाए ताकि परस्पर मनमुटाव कम हो सके। उनकी चेतावनी तथा

भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई कारगिल युद्ध इसका उदाहरण है।

16 मार्च, 1999 को लाहौर से पहली बस ने भारत में प्रवेश किया तथा दोनों देशों में बस यात्रा सेवा आरम्भ हो गई। 22 मार्च, 1999 को पाक ने 14 भारतीय कैदियों तथा भारत ने 46 पाकिस्तानी कैदियों को रिहा कर दिया। 10 अप्रैल, 1999 को भारत-पाकिस्तान साझे वाणिज्य चेम्बर की स्थापना पाकिस्तान 'चेम्बर ऑफ कॉमर्स' तथा 'इण्ड्स्ट्री ऑफ फेडरेशन ऑफ इण्डियन चेम्बर ऑफ कामर्स' ने की। 25 मार्च, 1999 को भारत ने पाकिस्तानी नागरिकों की नौ श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए वीजा तथा यात्रा प्रतिबन्धों को सरल और सुविधा पूर्ण बना दिया। भारतीय यह कैसे सोंच सकते थे कि 27 वर्ष पश्चात और लाहौर घोषणा के तुरन्त बाद पाकिस्तान भारतीय क्षेत्र में कारगिल की पहाड़ी चोटियों पर कब्जा करने की योजना बनाएगा। पाकिस्तान ने न केवल सशस्त्र एवं प्रशिक्षित उग्रवादियों को नियन्त्रण रेखा के इस ओर भेजा अपितु अपनी सेना के अधिकारियों एवं जवानों को भी बिना वर्दी के कारगिल पर कब्जा करने के लिए भेजा, शिमला समझौते का यह अपमान था। "एक ओर प्रधानमंत्री वाजपेयी मैत्री का संदेश लेकर लाहौर गए थे, वहीं दूसरी ओर पाकिस्तान ने भारत की पीठ में छुरा घोंपने का कार्य किया।"[26]

पाकिस्तान का कारगिल में अतिक्रमण का मुख्यततया निम्न उद्देश्य थे-

- कारगिल में युद्ध की स्थिति पैदा करके कश्मीर के मुद्दे का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करना तथा नियन्त्रण रेखा को चुनौती देना।
- दूसरे देशों को इस झगड़े में शामिल करना तथा भारत पर दबाव बनाना।
- लाहौर घोषणा को आड़ के रूप में प्रयोग करके अपने आपको एक शांतिप्रिय देश के रूप में प्रस्तुत करना तथा भारत को कश्मीर मुद्दे पर अड़ियल रवैया अपनाने का दोषी करार देना।

कारगिल में युद्ध छेड़ने के कारण वास्तव में 1947 में पाकिस्तान की स्थापना होने के बाद यह प्रथम अवसर था जबकि पाकिस्तान विश्व समुदाय में बिलकुल अलग- थलग पड़ गया। उधर भारत को विश्व समुदाय का पूर्ण समर्थन मिला। पाकिस्तान के निकटतम मित्र अमेरिका तथा चीन ने भी उस पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वह कारगिल से अपने घुसपैठी तथा सैनिक बुला ले तथा पूर्ववत्

यथास्थिति बहाल करे। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की भारत से केवल इतनी अपेक्षा थी कि वह संयम से काम ले। भारत ने स्वेच्छा से ऐसा ही किया। भारत ने कभी नियंत्रण रेखा को पार नहीं किया। इण्डिया टुडे लिखता है- "भारत की खुफिया एजेन्सियाँ जैसे लाहौर घोषणा के बाद निद्रामय हो गई थी तथा वे घुसपैठ की अग्रिम सूचना एकत्र करने में पूर्ण रूप से विफल रहीं। परन्तु वाजपेयी सरकार की साहसपूर्ण कार्यवाही से पाकिस्तान अचम्भित हो गया। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने वासुसेना को आदेश दिया कि वह कारगिल में शत्रु के ठिकानों पर बम वर्षा करे। "इस प्रकार प्रधानमंत्री वाजपेयी ने स्पष्ट संकेत दिया कि वह घुसपैठिए, पाकिस्तानी सैनिकों तथा भाड़े के उग्रवादियों को निकाल भगाने के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय करने के लिए कटिबद्ध थे।"[27]

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने 20 जून, 1999 को स्पष्ट रूप से घोषणा किया कि जब तक अतिक्रमण करने वालों को भारतीय क्षेत्र से खदेड़ नहीं दिया जाता तब तक पाकिस्तान के साथ कोई बातचीत नहीं की जाएगी। प्रधानमंत्री के नेतृत्व में चलाया गया विजय अभियान अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। 9 जुलाई, 1999 को भारतीय सैनिक कार्यवाही के बढ़ते दबाव तथा अमरीका द्वारा पाकिस्तान पर डाले गए दबाव के कारण पाकिस्तान के सत्ताधिकारियों ने घुसपैठियों को वापस बुलाने का निर्णय लिया। 11 जुलाई, 1999 के दिन भारत तथा पाकिस्तान के सैनिक कार्यवाहियों के निदेशक जनरलों के मध्य अटारी सीमा पर बैठक हुई तथा युद्ध बन्द करने पर सहमति बनी। शीघ्र ही इस निर्णय को व्यावहारिक रूप दिया जाने लगा किन्तु कारगिल, द्रास, बटालिक, क्षेत्रों में छिटपुट गोलाबारी होती ही रही।"[28]

पाकिस्तान की सेना एवं कूटनीति पूरी तरह से विफल रही। भारत को सैनिक विजय के साथ-साथ भारी कूटनीतिक सफलता प्राप्त हुई। "लगभग दो महीने के संघर्ष में 413 भारतीय सैनिक वीरगति को प्राप्त होकर शहीद हो गए तथा 584 घायल हुए। पाकिस्तानी आक्रमण का सामना करने में भारत को 5000 करोड़ रुपए से अधिक का धन व्यय करना पड़ा था।"[29] जिस समय कारगिल का संघर्ष आरम्भ हुआ पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने इस स्थिति का लाभ उठाया कि भारत में वाजपेयी सरकार संसद में पराजित होने के पश्चाम 'काम चलाऊ सरकार' के रूप में कार्य कर रही थी। लेकिन वाजपेयी के कुशल नीति निर्देशन तथा नेतृत्व में भारत की राजनीतिक-सामरिक तथा कूटनीतिक विजय हुई। अमेरिका ने भारत-पाक विवाद में किसी भी रूप में मध्यस्थता करने से इंकार कर दिया। पाकिस्तान की यह भी कूटनीतिक पराजय थी।

"12 अक्टूबर, 1999 को नवाज शरीफ को सत्ता से हटाकर जनरल परवेज मुशर्रफ ने सत्ता हथिया लिया जिससे पाकिस्तान में सैनिक तानाशाही की स्थापना हो गई। इसके विपरीत 13 अक्टूबर, 1999 के दिन 13 वीं लोकसभा के विधिवत चुनावों के बाद एक लोकतंत्रीय सरकार वाजपेयी के नेतृत्व में 'राष्ट्रीय जनतान्त्रिक सरकार' की स्थापना हुई।"[30] दिसम्बर, 1999 में इस्लामिक-आतंकवादियों (जिनका सम्बन्ध पाकिस्तान के साथ था) ने भारतीय हवाई सेना के एक विमान आई०सी० 814 का उस समय अपहरण कर लिया जब यह विमान काठमाण्डू से आ रहा था। अपहरणकर्ता विमान को कन्धार ले गए। भारत को भारतीय जेलों में कैद कुछ आतंकवादियों को रिहा करके, इस विमान तथा इसके 189 यात्रियों को अपरहणकर्ताओं से मुक्त कराना पड़ा। इस सारे प्रकरण में पाकिस्तान का हाथ स्पष्ट रूप से संलिप्त था और यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि जब सभी अपहरणकर्ता तथा रिहा किए गए आतंकवादी पाकिस्तान पहुंच गए तथा उनके खिलाफ पाकिस्तान में कोई कार्यवाही न की गई बल्कि उनको पूर्ण संरक्षण तथा सुविधा भी दी गई। इस प्रकरण ने भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों को और भी ठण्डा कर दिया।

अक्टूबर, 1999 से अप्रैल, 2001 तक पाकिस्तान लगातार भारत विरोधी देश बना रहा तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को संगठित तथा प्रशिक्षित एवं सहायता देने का केन्द्र भी बना रहा। प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा यह नीति अपनाई गई कि जब तक पाकिस्तान आतंकवाद सीमापार को समर्थन (सरंक्षण एवं सहायता) देना बन्द नहीं करता, तब तक इसके साथ कोई भी वार्तालाप नहीं किया जा सकता। भारत ने यह भी माना कि सैनिक शासनों के अधीन, पाकिस्तान सहित कई देशों में लोकतंत्रीय शासन व्यवस्थाओं की पुनः स्थापना होनी चाहिए तथा गुट निरपेक्ष एवं राष्ट्रमण्डल जैसे संगठनों से तब तक निलम्बित रखा जाना चाहिए जब तक वे पुनः लोकतान्त्रिक व्यवस्था न कायम कर लें।

इस तरह भारत-पाक सम्बन्धों का वातावरण काफी खराब बना रहा तथा अच्छे सम्बन्धों की आशा धूमिल दिखाई दे रही थी। पाकिस्तान में मौजूद सैनिक सत्तावादी, धार्मिक कट्टरतावादी तथा आतंकवादी तत्वों की विद्यमानता दोनों देशों के अच्छे सम्बन्धों के मध्य हावी बने रहे। इन सभी कारणों से दोनों देशों के मध्य एक गतिरोध अप्रैल, 2001 तक बना रहा। इसके पश्चात वाजपेयी ने पहल करते हुए सैनिक शासक जनरल परवेज मुर्शरफ को भारत आने का न्योता दिया।

कारगिल युद्ध (मई-जून 1999) तथा पाकिस्तान में सैनिक तानाशाही की स्थापना (अक्टूबर 1999) के बाद भारत-पाक सम्बन्धों में ठण्डापन और रूकावट आ गई थी, उसको दूर करने तथा द्विपक्षीय सम्बन्धों को एक सकारात्मक मोड़ देने के लिए प्रधानमंत्री वाजपेयी ने मई, 2001 में पाकिस्तान के मुख्य कार्यकारी अधिकारी परवेज़ मुशर्रफ को भारत आने का निमन्त्रण दिया ताकि एक शिखर वार्ता के द्वारा दोनों देशों के सम्बन्धों तथा सहयोग को आगे बढ़ाया जा सके। मुशर्रफ ने यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया तथा 14 से 17 जुलाई, 2001 के दौरान भारत यात्रा पर रहे एवं प्रधानमंत्री वाजपेयी के साथ शिखर वार्ता के चार दौर किए (भारत यात्रा से कुछ दिन पहले मुशर्रफ ने राष्ट्रपति पद पर भी अधिकार स्थापित कर लिया था)।

जनरल परवेज मुशर्रफ ने पाकिस्तान की जानी-पहचानी विदेश नीति (कश्मीर नीति) को काफी कठोर ढंग से प्रस्तुत किया। उन्होनें कहा कि पाकिस्तान कश्मीर को भारत-पाक सम्बन्धों का एक प्रमुख झगड़ा मानता है जिसके समाधान के बिना दोनों के सम्बन्धों में कोई प्रगति नहीं हो सकती है। "उन्होनें कश्मीर में चल रहे आतंकवाद को कश्मीरियों का स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कहा तथा भारत द्वारा की जा रही आतंकवाद विरोधी कार्यवाही को दमनकारी कार्यवाही की संज्ञा दी। पाकिस्तान की ऐसी नीति तथा इसके इस प्रकार के कठोर प्रकटीकरण ने शिखर वार्ता के वातावरण को एक नकारात्मक तथा तनावपूर्ण स्वरूप प्रदान किया।"[31]

वाजपेयी ने स्पष्ट किया कि वे कश्मीर को भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों का एक मुद्दा तो मानता है परन्तु इसे एक मात्र मुद्दा नहीं मानता। कश्मीर में विद्यमान वर्तमान स्थिति में चल रहे संकट का प्रमुख कारण सीमापर आतंक अर्थात् पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित आतंकवाद था। कश्मीर के मुद्दे के साथ-साथ इस मुद्दे पर भी वार्तालाप होनी चाहिए। जम्मू कश्मीर भारत का अटूट भाग है तथा भारत द्वारा अपनी सुरक्षा आवश्यकताओं के आधार पर कार्यवाही करना तथा आतंकवाद विरोधी कार्यवाही करना, भारत का सर्वोच्च अधिकार है। दोनों देशों के ऐसे मतभेदों तथा पाकिस्तान के कश्मीर पर अड़ियल रूख ने शिखर वार्ता की असफलता को यकीन ही बना दिया।

इसकी असफलता इस बात से स्पष्ट हुई कि शिखर वार्ता के बाद न तो कोई संयुक्त घोषणा जारी की गई और न ही किसी दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए गए। 16 जुलाई, 2001 को जनरल परवेज मुशर्रफ

पाकिस्तान वापस चले गए। पाकिस्तान कश्मीर मुद्दे के हल के लिए अन्य देशों विशेषकर अमरीका की मध्यस्थता अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका चाहता था। इसके विरूद्ध भारत शिमला समझौते के निहित द्विपक्षीय वार्तालाप के द्वारा ही सभी आपसी मुद्दों का समाधान चाहता था। पाकिस्तान का अड़ियल रवैया ही आगरा शिखर वार्ता की असफलता का कारण रही।

भारत ने पाकिस्तान के साथ द्विपक्षीय वार्तालाप उच्चतम स्तर पर आरम्भ करके विश्व समुदाय पर यह प्रकट किया कि वह पाकिस्तान के साथ कश्मीर सहित सभी मुद्दों पर वार्तालाप के पक्ष में था। भारत ने स्पष्ट किया कि वास्तविक मुद्दा पार-सीमा आतंकवाद की मुसीबत की समाप्ति था जिसके बिना भारत-पाकिस्तान वार्तालाप किन्ही सकारात्मक निष्कर्षो की ओर प्रगति नहीं कर सकता। आगरा शिखर वार्ता से पहले वातावरण को सुखमय बनाने के लिए भारत ने एक तरफा निर्णय करते हुए पाकिस्तान से भारत आने वाले यात्रियों के लिए वीजा नियमों को कुछ सरल कर दिया तथा भारत में आने के लिए कुछ और प्रवेश स्थानों को खोलने का निर्णय लिया भारत ने स्पष्ट किया कि जम्मू तथा कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है तथा भारतीय धर्म-निरपेक्षता का ध्वजवाहक है जिसे कोई भी भारत से अलग नहीं कर सकता।

11 सितम्बर, 2001 के दिन अमरीका में हुए भयानक और घिनौनी आतंकवादी कार्यवाही के बाद अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में तेज परिवर्तन आया। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के संकट का सामना करने, जिसका केन्द्र अफगानिस्तान (पाकिस्तान भी) था। इसके लिए अमरीका के नेतृत्व में एक अन्तर्राष्ट्रीय साझा प्रयास किया गया। इस वातावरण में भारत तथा पाकिस्तान शिखर वार्तालाप के पुनः आरम्भ होने की प्रक्रिया को धक्का लगा। पाकिस्तान की विदेश नीति ने पलटा लिया एवं पाकिस्तान ने अफगानिस्तान में विद्यमान तालिबान शासन के विरूद्ध आरम्भ की गई कार्यवाही (कूटनीतिक, आर्थिक, सामरिक) में अमरीका का साथ देना आरम्भ कर दिया। अमरीका ने अफगानिस्तान के विरूद्ध सैनिक कार्यवाही 8 अक्टूबर, 2001 को आरम्भ कर दिया तथा इससे पहले भारत तथा पाकिस्तान के विरूद्ध लगाये गये प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया।

पाकिस्तान एक बार फिर अमरीकी सहायता का केन्द्र बन गया तथा अमरीका ने पाकिस्तानी सैनिक अंडगे को अफगानिस्तान के विरूद्ध कार्यवाही में प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। पाकिस्तान ने भारत के साथ कश्मीर के मुद्दे पर वार्तालाप करने की इच्छा प्रकट की। ''भारत ने स्पष्ट कर दिया कि कश्मीर सहित सभी द्विपक्षीय मुद्दों पर वार्तालाप किया जा सकता है परन्तु पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित पार-सीमा आतंकवाद के समाप्ति के बाद ही।''[32]

सितम्बर-अक्टूबर, 2001 में अफगानिस्तान समस्या द्वारा निर्मित वातावरण ने भारत पाक सम्बन्धों को उलझनपूर्ण बना दिया तथा स्थिति और भी उलझनपूर्ण हो गई जब 13 दिसम्बर, 2001 के दिन भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला हुआ और इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिले कि इस कार्यवाही के पीछे पाकिस्तान की धरती से कार्य कर रहे भारत विरोधी आतंकवादी संगठनों का हाथ था। भारत ने इस कार्यवाही को शत्रुतापूर्ण माना तथा पाकिस्तान के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों को सीमित कर दिया। पाकिस्तान से भारतीय उच्चायुक्त तथा स्टाफ को वापस बुला लिया गया। भारत में मौजूद पाकिस्तानी दूतावास के स्टाफ में भारी कटौती करने का निर्णय लिया गया। भारतीय भू-क्षेत्र के ऊपर से पाकिस्तानी हवाई जहाजों की उड़ानों का निषेध कर दिया गया। भारत-पाकिस्तान रेल-सेवा तथा बस सेवा को निलम्बित कर दिया गया। भारत-पाक युद्ध की संभावना पैदा हो गई। सार्क बैठक (जनवरी, 2002 के समय पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल परवेज़ मुशर्रफ के मित्रता के हाथ को एक दिखावा माना तथा यह कहा कि पाकिस्तान की कथनी और करनी में अन्तर था।

पाकिस्तान भारत के विरुद्ध पार-सीमा आतंकवाद को बढ़ावा दे रहा था तथा भारत के साथ मित्रता भी कर रहा था। 13 दिसम्बर, 2001 के आतंकवादी हमले के बाद वाजपेयी ने कहा कि ''भारत को संसद पर हमले के तुरन्त बाद ही पाकिस्तान को उचित जवाब दे देना था, मगर तब समूचे विश्व ने भारत से संयम बरतने को आग्रह किया।''[33]

पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने सम्बोधन में कहा कि उनका देश आतंकवादियों को कोई भी सहायता और समर्थन नहीं देता तथा पाकिस्तान में विद्यमान धार्मिक कट्टरतावादी तत्वों की निन्दा भी की, परन्तु कश्मीर में विद्यमान आतंकवाद को राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का नाम भी दिया। इसके साथ ही मुशर्रफ ने भारत के साथ वार्तालाप की पेशकश की तथा यह मत दिया कि सीमा क्षेत्र से भारतीय सेना की वापसी

होनी चाहिए। कश्मीर समस्या पर अमरीकी मध्यस्थता की मांग भी की तथा कश्मीर समस्या के समाधान के बिना भारत-पाक सम्बन्धों में किसी सकारात्मक विकास की सम्भावना को रद्द किया। पाकिस्तान ने पुनः दोमुखी (दोगली) नीति पर ही चलने का प्रयास किया तथा कश्मीर में विद्यमान आतंकवाद को मुक्ति संग्राम कहकर उसका समर्थन करने की घोषणा भी की। 14 मई, 2002 के दिन कालूचक के सैनिक शिविरों पर आतंकवादी हमला हुआ जिसमें 24 व्यक्तियों को जान से हाथ धोना पड़ा। यह हमला भारत को अपनी सेनाओं की तैनाती से रोकने के उद्देश्य से किया गया था तथा यह कार्यवाही पाकिस्तान द्वारा आतंकवादियों को दिए जाने वाले समर्थन और सहयोग का ही परिणाम थी।

23 मई, 2002 को भारत ने पाकिस्तान से कहा कि 2 महीने के अन्दर-अन्दर अपनी आतंकवाद को समर्थन देने की नीति का त्याग कर दे। 27 मई, 2002 को पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने एक बार फिर अपने भाषण में भारत के प्रति अपनी पूर्व घोषित नीति को दोहराया तथा पाक की सुरक्षा के लिए कुछ भी करने की नीति की घोषणा की। वाजपेयी को मुशर्रफ की पेशकश पूर्ण रूप से निराशाजनक तथा खतरनाक लगी। अतः भारत पाक सीमा पर भारतीय सेना का जमावड़ा दृढ़ता से विद्यमान रखने की नीति को अपनाएं रखा। 2002 के अंत तक भारत-पाक सम्बन्ध तनावपूर्ण बने रहे, लेकिन दोनों देशों ने 1 जनवरी, 2003 के दिन 1988 के एक समझौते के आधार पर अपने-अपने परमॉणु संयन्त्रों की सूचियां एक दूसरे को सौंप दीं।

20 जनवरी, 2003 को पाकिस्तान ने एक बार फिर यू०एन०ओ० में कश्मीर का मुद्दा उठाने का असफल प्रयास किया परन्तु प्रधानमंत्री वाजपेयी ने इसके विरूद्ध यह मुद्दा उठाया कि वास्तविक आवश्यकता थी आतंकवाद तथा सीमा पार आतंकवाद की समाप्ति और आतंकवाद को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में समर्थन देने वाले देशों को ऐसी नीति का त्याग करने के लिए विवश करना।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने भारत-पाक सम्बन्धों में तनावों और टकरावों से भरपूर स्थिति को समाप्त करने तथा शांति प्रक्रिया को पुनः चालू करने के लिए 18 अप्रैल, 2003 को श्रीनगर में अपनी एक जनसभा में पाकिस्तान की ओर एक बार फिर मित्रता और शांति का हाथ बढ़ाने का प्रयास किया। लाहौर-यात्रा तथा आगरा शिखर यात्रा के बाद भारत को शंति स्थापना का यह तीसरा प्रस्ताव था। वाजपेयी ने आह्वान किया कि दोनों देशों को अच्छे पड़ोसियों की तरह अच्छे सम्बन्धों के साथ रहना

चाहिए। 22 अप्रैल, 2003 को पाकिस्तान के शासकों ने भारत की इस पहल का सकारात्मक उत्तर दिया, प्रधानमंत्री वाजपेयी ने इस शांति पहल को उनकी तीसरी और आखिरी पहल (पहली लाहौर तथा दूसरी आगरा) कहा।

2 मई, 2003 को राज्य सभा में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने घोषित किया कि भारत पाकिस्तान के सम्बन्धों के तनावों को समाप्त कर सामान्य मित्रतापूर्ण सहयोग सम्बन्धों की स्थापना के लिए एक नई शांति प्रक्रिया की पहल कर रहा है तथा अब दोनों देशों में कूटनीतिक सम्बन्ध फिर से पहले वाले स्वरूप में आ जाने चाहिए। भारतीय पेशकश के उत्तर में पाक विदेशमंत्री खुर्शीद महमूद ने पाक की ओर से यह घोषणा कर दी कि पाक भी बिना किसी बाहरी दबाव के भारत के साथ सकारात्मक रूप में सम्बन्धों की पुनः स्थापना चाहता है। राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने तो युद्ध न करने के समझौते की पेशकश कर दी तथा प्रधानमंत्री जमाली ने अपने देश की सभी राजनीतिक पार्टियों के साथ एक बैठक कर भारतीय प्रधानमंत्री की पेशकश का स्वागत किया तथा 6 मई, 2003 को प्रधानमंत्री जमाली ने कुछ विश्वसनीय कदमों के उठाए जाने की घोषणा की। उन्होनें कहा कि द्विपक्षीय कूटनीतिक सम्बन्ध 13 दिसम्बर, 2001 से पहले वाली स्थिति में पुनः स्थापित किए जाएंगे तथा परमॉणु व अन्य मुद्‌दों पर वार्तालाप आरम्भ किया जाएगा।

दोनों देशों के नेताओं द्वारा सकारात्मक घोषणा करने के पश्चात भारत-पाक सम्बन्धों के सामान्यीकरण की प्रक्रिया के आरम्भ होने का आधार तैयार हो गया। जुलाई, 2003 में भारत-पाक कूटनीतिक सम्बन्ध फिर से पहली वाली स्थिति में स्थापित हो गए। श्री अजीत अहमद खान भारत में पाकिस्तान के उच्चायुक्त तथा श्री शिवशंकर मेनन ने पाकिस्तान में भारत के उच्चायुक्त का कार्यभार सम्भाल लिया। 11 जुलाई, 2003 को नई दिल्ली-लाहौर बस सेवा पुनः चालू हो गई। दोनों देश रेल तथा वायु सम्पर्कों की पुनः स्थापना के लिए वार्तालाप करने लगे। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने पाकिस्तानी नागरिकों के लिए यह मानवीय पेशकश की कि वह 20 पाकिस्तानी बच्चों के भारत में डॉक्टरी इलाज सहित सभी खर्च वहन करेंगे। बंगलौर में पाकिस्तानी बच्ची नूर फातिमा के दिल के सफल आपरेशन ने भी सद्‌भावना का संचार किया।

शांति, मित्रता तथा सहयोग की प्रक्रिया को दिशा देने के लिए प्रधानमंत्री वाजपेयी ने 22 अक्टूबर, 2003 को कई कदमों का प्रस्ताव किया जिनका उद्देश्य आपसी विश्वास को बढ़ाना था। ऐसे नए प्रस्ताव थे -

(1) श्रीनगर और मुजफ्फराबाद के बीच बस सेवा आरम्भ करना।

(2) दिल्ली-लाहौर बस सेवा का विस्तार करना।

(3) मुम्बई-कराची नाव यात्रा आरम्भ करना।

(4) मुन्नावाओ और खोकरापार रेल सम्पर्क स्थापित करना।

(5) वरिष्ठ नागरिकों को बाघा सीमा को पार करने की सुविधा।

(6) भारत-पाक तटरक्षकों के बीच सीधी लगातार टेलीफोन संचार सुविधा की स्थापना।

(7) समझौता गाड़ी को पुनः आरम्भ करने के लिए वार्तालाप करना।

(8) वीजा देने के लिए कैम्पों की स्थापना।

(9) क्रिकेट तथा अन्य खेल सम्पर्कों को पुनः चालू करना।

(10) परस्पर स्वीकृत क्षेत्रों में मछुआरों तथा उनकी नावों को हिरासत में न लेना।

(11) दूतावासों में स्टाफ की संख्या को बढ़ाना तथा वायु सम्पर्क स्थापित करने के लिए वार्तालाप करना।

पाकिस्तान ने विश्वास निर्माण के लिए की गई इस भारतीय पेशकशों में से कुछ एक प्रस्तावों को स्वीकार किया, जबकि दूसरों के सम्बन्ध में परिवर्तन के सुझाव दिए। अक्टूबर, 2003 के प्रस्तावों के आधार पर भारत ने भारत-पाकिस्तान वार्तालाप प्रक्रिया को एक अच्छा प्रारम्भ देने का प्रयास किया तथा नवम्बर, 2003 में दोनों देशों ने कई स्तरों पर सम्पर्क स्थापित कर वार्तालाप प्रक्रिया को आरम्भ किया। भारत-पाक सीमा पर युद्ध विराम की स्थिति (जम्मू तथा कश्मीर में वास्तविक नियन्त्रण रेखा तथा सियाचिन के विद्यमान स्थिति सहित) को स्वीकार किया गया तथा युद्ध विराम 27 नवम्बर, 2003 की रात से लागू हो गया व भारत-पाक सीमा पर बंदूके शांत हो गयी, लेकिन सीमा क्षेत्रों में सैनिकों की तैनाती को समाप्त नहीं किया गया। पाकिस्तान ने युद्ध विराम की संधि को स्वीकार किया, तथा 6 आतंकवादी संगठनों पर निषेधाज्ञा भी लागू कर दी क्योंकि इन संगठनों का संबंध जैश-ए-मोहम्मद तथा लश्करे तैयबा के साथ था।

जनवरी, 2004 के प्रथम सप्ताह में जब सार्क शिखर सम्मेलन इस्लामाबाद में हुआ तो इसमें भारत का प्रतिनिधित्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने स्वीकार किया। सार्क सम्मेलन में पाक प्रधानमंत्री जमाली ने अपने भाषण में कश्मीर के मुद्दे को नही उठाया जो इस बात का प्रतीक था कि अब पाकिस्तान भारत के साथ सम्बन्धों को विकसित करने की सकारात्मक इच्छा रखता है। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने राष्ट्रपति मुशर्रफ के साथ प्रत्यक्ष वार्तालाप बैठक करके यह दृढ़ संकेत दिया कि दोनों देश तनाव तथा सैनिक टकराव की स्थिति को समाप्त कर वार्तालाप कर रहे हैं। वाजपेयी ने कहा कि भारत-पाक वार्तालाप प्रक्रिया अब लगातार चलेगी तथा दोनों देशों की आपसी समझ को विकसित करके आपसी कठिनाइयों को दूर करके आपसी सम्बन्धों के विकास की प्रक्रिया बनी रहेगी। इस अवसर पर पाकिस्तान के राष्ट्रपति मुशर्रफ ने यह भरोसा भी दे डाला कि पाकिस्तान के नियंत्रण वाले क्षेत्र में किसी भी तरह के आतंकवाद को समर्थन नहीं दिया जायेगा।

प्रधानमंत्री वाजपेयी के सतत् प्रयासों के कारण दोनों देशों के मध्य आपसी विश्वास बहाल हुआ तथा दोनों देशों द्वारा अनेक सृजनात्मक कदम उठाए गए जिसके तहत 9 जनवरी, 2004 के दिन दो वर्षो बाद एक भारतीय विमान ने नई दिल्ली से पाकिस्तान के लिए उड़ान भरी। इससे पहले 1 जनवरी, 2004 के दिन पाकिस्तान की हवाई सेना (P.I.A.) की एक उड़ान लाहौर से नई दिल्ली तक की यात्रा कर चुकी थी। 15 जनवरी, 2004 के दिन से समझौता गाड़ी ने भी 2 वर्षो के बाद भारत-पाक रेल लाइन पर यात्रा करनी आरम्भ कर दी। भारत-पाकिस्तान सीमा तथा जम्मू एवं कश्मीर की वास्तविक नियन्त्रण सीमा रेखा पर युद्ध विराम ठीक प्रकार से लागू रहा। भारत ने सीमा पर बाड़ लगाने के अपने कार्य सम्पन्न करने की प्रक्रिया को जारी रखा तथा 285 किमी० की जम्मू क्षेत्र की नियन्त्रण रेखा सीमा पर बाड लगाने का कार्य सम्पन्न कर लिया था।

24 जनवरी, 2004 को भारत तथा पाक ने यह निर्णय लिया कि गलती से सीमा पार करने वाले लोगों के बारे में सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जाएगा। यह बी०एस०एफ० तथा पाकिस्तान रेंजर के कमाण्डों की बैठक के स्तर पर होना था। 11 फरवरी, 2004 को भारतीय रक्षा मंत्री ने यह कहा कि इस बात की पक्की सूचना थी कि इस्लामाबाद से सीमापार आतंकवाद तथा सार्क शिखर सम्मेलन (इस्लामाबाद, जनवरी 2004) में पाकिस्तान के राष्ट्रपति मुर्शरफ ने इस्लामाबाद में वह हासिल किया जो

ढ़ाई साल पहले आगरा में नहीं हासिल कर पाए थे। मुशर्रफ ने पत्रकारों से कहा "आज इतिहास रचा गया है। यह एक नई शुरुआत है। आगरा के बाद बहुत पानी पुल के नीचे से बह चुका है। आगरा के पश्चात् ! मैं एक निराश व्यक्ति था.....अब मैं खुश हूँ।"[34]

सार्क शिखर सम्मेलन इस्लामाबाद में भारत-पाक सम्बन्धों पर निकटता स्पष्ट दिखाई दे रही थी। दोनों देश सम्बन्धों को मजबूत बनाने के लिए उत्सुक थे। पाकिस्तान ने इस बार भारत के मैत्री हाथ को मजबूती से पकड़ा और सम्बन्धों के नए युग का सूत्रपात किया तथा आपसी सहमति बनी कि जून, 1957 में बने फार्मूले के अनुरूप रिश्ते सामान्य बनाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए समग्र वार्ता शुरु होनी चाहिए।

अब समय आ गया है कि भारत और पाकिस्तान अपने द्विपक्षीय तनावपूर्ण सम्बन्धों को छोड़ते हुए विकास पर ध्यान केन्द्रित करें। दोनों देशों को अपने शत्रुतापूर्ण सम्बन्धों की कीमत 'असियान' राष्ट्रमण्डल, संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद जैसे महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर चुकानी पड़ रही है। दोनों इन मंचों पर एक दूसरे की टांग खिंचाई की रणनीति बनाते रहते हैं। वाजपेयी द्वारा पाकिस्तान के साथ दोस्ताना सम्बन्ध बनाने की पहल दोनों देशों के बीच कट्टरतम उग्रता को कम करने में एक सीमा तक सहायक सिद्ध हुई; जिसके कारण सीमा पार से घुसपैठ में कमी आई है। फिर भी पाकिस्तान को अभी आतंकवाद का समर्थन कर रही अवसंरचना को ध्वस्त करने के लिए विश्वसनीय उपाय करने होंगे। प्रध ाानमंत्री वाजपेयी की विदेश नीति का ही यह सकारात्मक बिन्दु रहा जिसके कारण पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधरे तथा वर्षो पूर्व से निर्मित विरोध तथा दुश्मनी की गरमी को पिघलाकर सम्बन्धों की प्रगाढ़ता पर बल मिला।

दोनों देशों के बीच सहयोगात्मक रवैया विकसित हुआ तथा सम्बन्धों का निरन्तर विकास होता रहा। घुसपैठ को नियन्त्रित करने के लिए कुछ ठोस कदम उठाए गए थे। कई पाकिस्तानी शिष्टमण्डल भारत यात्रा पर परस्पर मित्रता, सहयोग तथा विश्वास को बढ़ाने का पैगाम लेकर आए तथा भारत के लोगों से मिलकर अपने देश में भारतीय मित्रता तथा सहयोग को प्रकट किया। कई एक भारतीय शिष्टमण्डलों ने भी इसी उद्देश्य के लिए पाकिस्तान की यात्रा की। मार्च, 2004 में भारतीय क्रिकेट टीम ने पाकिस्तान का दौरा किया जिसमें उन्होंने न केवल क्रिकेट श्रंखला जीती बल्कि दिल भी जीता। क्रिकेट

मैचों के दौरान पाक जनता ने पहली बार सकारात्मक तथा स्वस्थ रूप में भागीदारी निभाई।

इस प्रकार प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों को सामान्य तथा सहयोगपरक बनाने के लिए हर संभव प्रयास किया तथा उसमें कुछ सकारात्मक परिणाम भी निकले किन्तु पाकिस्तान के उग्रवादी संगठनों, आतंकवादियों तथा धार्मिक कट्टरता को पोषण करने वाले नेताओं के कारण वाजपेयी द्वारा बढ़ाई गयी मित्रता की बयार में अनवरत् गतिरोध पैदा होता रहा तथा भारत-पाकिस्तान के मध्य हमेशा विवाद की स्थिति बनी रही।

भारत एवं इसके पड़ोसी राज्यों के मध्य कटुतापूर्ण सम्बन्धों के लिए अगर एक तरफ क्षेत्रीय परिस्थितियाँ उत्तरदायी है तो दूसरी तरफ बाह्य शक्तियों की भूमिका भी कम उत्तरदायी नहीं रही है। जैसे-भारत-चीन सम्बन्धों को पूर्व सोवियत संघ, भारत-पाक सम्बन्धों को चीन तथा अमरीका, भारत-बांग्ला देश सम्बन्धों को पाकिस्तान तथा अमरीका ने सम्मिलित रूप से प्रभावित किया है। पड़ोसी राज्यों के मन में संदेह की भावना में उसकी आकृति, उसकी जनसंख्या, उसकी क्षमता तथा दक्षिण एशिया की भू-सामरिकी में इसकी विशेष भूमिका रही है। इन्हीं प्रभावी कारकों के कारण पड़ोसी राष्ट्र इस पर प्रभुत्ववादी होने का आरोप लगाते रहे हैं। इन पड़ोसी राज्यों ने बांग्लादेश की स्वतन्त्रता में भारत की विशेष भूमिका, श्रीलंका में तमिल उग्रवादियों पर काबू पाने के लिए भारतीय शांति सेना भेजने की कार्यवाही तथा मालद्वीव की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से भारतीय सैनिकों का वहाँ प्रवेश आदि को संदेह की दृष्टि से देखा है।

सबसे बड़ी बिडम्बना यह है कि भारत एवं उसके पड़ोसी देखों के मध्य सजातीय, भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं भाषायी समानता के बावजूद पड़ोसी राज्यों से कभी न कभी किसी न किसी रूप से भारत का ही अंग रहे हैं और फिर भी इन राष्ट्रों के साथ मैत्री एवं सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में भारत को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इन पड़ोसी राष्ट्रों के रुष्ट होने के अनेक कारणों में एक कारण भारत की उभरती हुई गरिमा है। भारत के राष्ट्रहित के संदर्भ में पड़ोसी राष्ट्रों के अनुकूल या प्रतिकूल व्यवहार के कारण बड़े राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने की सबसे बड़ी चुनौती है। वर्तमान समय में क्षेत्रीयता का बोलबाला है परम्परागत शत्रु आदि मैत्री के बन्धन में बध रहे है। यूरोपीय शत्रु आपसी मतभेदों को भुलाकर एक होने का अथक प्रयास कर रहे हैं। इनके इस प्रयास का संकेत

मास्ट्रिख सम्मेलन में समझा जा सकता है।

अमरीका भी लैटिन अमरीकी देशों के साथ अपने सम्बन्धों को सुधारने के लिए एकजुट होने का प्रयास कर रहा है तो भारत के पड़ोसी राष्ट्र क्यों नहीं समझ पा रहे हैं कि ये बिना एकजुटता एवं आपसी सम्बन्धों की प्रगाढ़ता के बिना अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी किसी सशक्त भूमिका की कल्पना भी नहीं कर सकते। आर्थिक एकीकरण के इस युग में भारत के पड़ोसी राष्ट्रों को भी इस बाध्यता को समझना चाहिए। अन्यथा भारत की अपेक्षा करके बाह्य शक्तियों को दी गयी वैशाषी के बल पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी अलग पहचान स्थापित करने का स्वप्न अधूरा ही रह जायेगा।

पाकिस्तान निकटतम पड़ोसी होने के बावजूद भी वह भारत के लिए दूरस्थ पड़ोसी बना हुआ है। सजातीय, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक अनुभूतियों की दृष्टि से सबसे निकट है किन्तु राजनीतिक अनुकूलन एवं विदेश नीति के परिप्रेक्ष्य में यह भारत से काफी दूर है। पाकिस्तान ऐसा राष्ट्र है जिससे भारत का रक्त सम्बन्ध है। किन्तु इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि सन् 1947 में विभाजन के फलस्वरूप अनावश्यक भड़की साम्प्रदायिक हिंसा से भाई-भाई के मध्य रक्त की धाराएं बह निकली और सन् 1948, 1965, 1971 और 1999 में कारगिल सहित चार युद्ध भी हुए और आज भी दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध सुधार की प्रक्रिया अधर में लटकी हुई है। शांति और नई विश्व व्यवस्था के स्थान पर हम नये-नये सघर्ष और व्याप्त अव्यवस्थाओं से दो-चार हो रहे है। जिससे कि अन्तर्राज्यीय हिंसा, अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद और वाह्यय शक्तियों द्वारा परोक्ष युद्ध चलाये जा रहे हैं। जिसमें पाकिस्तान की अग्रणीय भूमिका है।

पाकिस्तान भारत में अधिकांशतः तोड़-फोड़ विद्रोह, आतंकवादी जैसे क्रियाकलापों को करवाकर भारत की सुरक्षा और अखण्डता को तोड़ने का प्रयास करता रहता है जिससे भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा प्रभावित हो रही है यदि कहा जाय कि भारत अपनी सुरक्षा के एक कठिन दौर से गुजर रहा है तो गलत नहीं होगा। पूरा कश्मीर उबल रहा है, आज यह सर्वविदित हो गया है कि पाकिस्तान कश्मीर में आतंकवादियों को सैनिक प्रशिक्षण और पैसा ही नहीं दे रहा है बल्कि वहाँ भाड़े के सैनिक भी भेज रहा है जिससे आतंकवाद की तीव्रता और भयानकता में दिनों-दिन वृद्धि हो रही है। वास्तविकता यह भी है कि पाकिस्तान ने कश्मीर में भारत के विरुद्ध एक प्रकार का कम खर्च वाला युद्ध छेड़ रखा है क्योंकि उसे पता है कि भारत को युद्ध में परास्त करना असंभव है।

आज कश्मीर में लगभग 20-25 आतंकवादी संगठन सक्रिय रूप से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पाकिस्तान व उसकी खुफिया एजेन्सी आई०एस०आई० की मदद से फल-फूल रहे हैं। जम्मू-कश्मीर में घुसपैठियों को मदद देने के लिए बदनाम खुफिया एजेन्सी बांग्ला देश की खुफिया एजेन्सी के साथ मिलकर भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में सक्रिय विद्रोही संगठन उल्फा, दक्षिण एशिया के दूसरे जेहादी संगठनों को संगठित करने का प्रयास जोर-शोर से कर रही है तथा साथ ही आई०एस०आई० द्वारा श्रीलंका में तमिल विद्रोही संगठन लिट्टे की भी हिंसक कार्यवाही में मदद दी जा रही है। पाकिस्तान दक्षिण एशिया में इस्लामीकरण की जमीन तैयार करने में प्रयासरत है, ताकि बांग्लादेश में चीन और पाकिस्तान जैसी विदेशी ताकतों का मौजूदा हालात का फायदा उठाने का मौका मिले और भारत को वैश्विकी शक्ति बनने से रोका जा सके।

कोई भी समस्या चाहे कितनी भी गंभीर क्यों न हो उसका सही समाधान इस बात पर निर्भर करता है कि दोनों पक्ष उसे किस प्रकार परिभाषित करते है। यह बात भारत और पाकिस्तान के मध्य करीब छः दशक पुराने कश्मीर विवाद पर भी लागू होती है। लोकतांत्रिक भावनाएं व आतंकवाद दो ऐसे मुद्दे है जिन्हें कश्मीर समस्या का मूल कहा जा सकता है। कश्मीर को स्वशासन देने की बात पाकिस्तान द्वारा बार-बार दोहराई जाती है, लेकिन उस स्वशासन का स्वरूप क्या होगा ? पाकिस्तान के पास इस सवाल के जवाब से कन्नी काट लेने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है, क्योंकि जो पाकिस्तान के लिए लोकतंत्र है उसे भारत सहित शेष पश्चिमी जगत तानाशाही के नाम से जानता है। यही नहीं लोकतंत्र की परिभाषा के मुद्दे पर जनरल परवेज मुर्शरफ, नवाज शरीफ और स्व० बेनजीर भुट्टों के बीच गहरा विवाद रहा है। यह बात अलग है कि अमरीका अपनी कथित सामरिक विवशताओं के कारण पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल परवेज मुर्शरफ सहित सभी सैनिक शासकों को आश्रय देता रहा है, जिसे भारत आतंकवाद मानता है। वह अब तक पाकिस्तानी विदेश नीति का अहम हिस्सा रहा है।

जम्मू कश्मीर के अलगाववादी संगठनों खासकर हुर्रियत से केन्द्र वार्ता कर रहा है। भारत ने यह भी माना है कि असंतुष्ट समूहों की राजनीतिक शिकायतों का समाधान किए बिना आतंकवादियों के समर्थकों की संख्या में कमी नहीं लायी जा सकती। अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति का सहारा लेकर भारत ने आतंकवाद के मुद्दे पर मुर्शरफ पर दबाव भी बनाया, लेकिन आतंकवाद घटनाओं में अभी भी कोई कमी नहीं आयी है।

कश्मीर समस्या के किसी भी समाधान पर पहुँचने से पहले यह जरूरी है कि जहाँ पाकिस्तान भी आतंकवाद के खतरे के प्रति सचेत हो वहीं भारत भी आतंकवाद से लड़ने की पर्याप्त इच्छाशक्ति विकसित करे। दुर्भाग्यवश यदि ऐसा नहीं होता तो आतंकवादी संगठन बेगुनाह नागरिकों का खून बहाते रहेंगे। हमें इस बात से भी सचेत होने की आवश्यकता है कि यदि इस बार पाकिस्तान के साथ युद्ध हुआ तो परमाणु बमों का इस्तेमाल तक की नौबत आ सकती है क्योंकि पाकिस्तान परमाणु शक्ति का इजहार कर चुका है। यद्यपि जवाब में भारत भी कई गुना अधिक शक्ति रखता है। परमाणु बम जो भी गिरायेगा उसका इलाका रेडियोधर्मी विकिरण से नहीं बच पायेगा। 1971 की लड़ाई में जिस प्रकार भारतीय सेना ने बिना कोई खरोच लगे पाकिस्तान के दो भाग कर दिये यदि इस बार युद्ध हुआ तो भले ही हम पाकिस्तान को मटियामेट कर दें किन्तु हमारे शरीर पर भी ऐसी चोंटे लग ही जायेंगी जिसकी पीड़ा हमें दशकों तक झेलनी पड़ेगी। इसलिए दोनों देशों के मध्य विश्वास का कायम रहना तथा वार्तालाप बेहद आवश्यक है।

वर्तमान में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन के प्रधानमंत्री डा० मनमोहन सिंह द्वारा भी पाकिस्तान के साथ भारत के सम्बन्धों को प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा बनायी गयी नीति के तहत ही चला रहे हैं, लेकिन पाकिस्तानी कट्टरपंथियों के कारण दोनों देशों के मध्य मित्रता को बढ़ाने के सम्बन्धों पर प्रयास असफल हो रहे हैं। भारत के द्वारा पाकिस्तान के साथ किए गए शांति प्रयास न तो प्रधानमंत्री वाजपेयी के शासनकाल में सफल सिद्ध हुए और न ही डॉ० मनमोहन सिंह के समय सफल सिद्ध हो रहे हैं।

(2) भारत एवं बांग्लादेश

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भारत ने बांग्लादेश के साथ सम्बन्धों के विकास की प्रगति को अधिक गतिशील बनाने का निर्णय लिया। अप्रैल, 1998 में बांग्लादेश के विदेश मंत्री अब्दुलसमद ने भारत की यात्रा की तथा भारतीय नेताओं से उच्च स्तरीय वार्तालाप किया। दोनों देशों ने निर्णय लिया कि आतंकवाद की समाप्ति, द्विपक्षीय व्यापार में बढ़ोत्तरी तथा क्षेत्र में नदी जलों के उपभोग की दिशा में इकट्ठे मिलकर कार्य किया जाएगा। "11 मई तथा 13 मई, 1998 को जब भारत ने अपने परमॉणु परीक्षण करके परमॉणु शस्त्र धारक देश बनने की घोषणा की तो बांग्लादेश की सरकार ने एक संयमपूर्ण नीति अपनाई।"[35]

वास्तव में जून, 1998 में बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना ने पोखरण विस्फोट के बाद भारत यात्रा करने वाली पहली सरकारी अध्यक्षा थीं। भारतीय प्रधानमंत्री वाजपेयी से वार्तालाप किया तथा दोनों ने यह निर्णय लिया कि दोनों देश विकसित हो रहे आर्थिक और व्यापारिक सहयोग को और अधिक गति देंगे। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने उन विशेष कारणों की सूचना दी जिनके कारण भारत ने परमॉणु शस्त्र निर्माण करने का निर्णय लिया था। शेख हसीना ने ऐसा करना भारत के प्रभुसत्तात्मक अधिकार के अन्तर्गत बताया।

बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना वाजेद ने 16 जून, 1998 को भारत की यात्रा की और प्रधानमंत्री वाजपेयी के साथ दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय मामलों को आपस में हल किए जाने, आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों को बढ़ाने पर चर्चा किया। "शेख हसीना ने प्रधानमंत्री वाजपेयी से मुलाकात के बाद जिस समग्रता के साथ भारतीय दृष्टिकोण का समर्थन किया उससे दोनों देशों के सम्बन्ध निश्चय ही प्रगाढ़ हुए हैं।"[36]

बांग्लादेश को प्रधानमंत्री ने स्वीकार किया है कि प्रत्येक देश को आत्मरक्षा एवं सुरक्षा के लिए हर तरह का जरूरी कदम उठाने की आजादी है। इसी प्रकार भारत द्वारा 11 एवं 13 मई को किये गये परमॉणु परीक्षण को प्रधानमंत्री शेख हसीना ने पूरी तरह उचित साबित किया तथा यह भी स्वीकार किया कि भारत और पाकिस्तान के सभी विवाद आपसी बातचीत के जरिए हल करना चाहिए। कश्मीर पर किसी दूसरे देश की मध्यस्थता से प्रधानमंत्री शेख हसीना ने साफ इंकार किया, जिससे भारत के दृष्टिकोण को बल मिला।

दिसम्बर, 1998 में भारत ने इस निर्णय की घोषणा की कि 1430.5 किमी० की भारत-बांग्लादेश सीमा पर कांटेदार तार की बाड़ लगा दी जाएगी। भारत ने ऐसा अवैध रूप से सीमा पार करने पर रोक लगाने के लिए किया। यद्यपि बांग्लादेश ने इस निर्णय की आलोचना की तथापि भारत ने अपने निर्णय को पूर्ण रूप से उचित ठहराया।

भारत एवं बांग्लादेश ने सड़क यातायात की व्यवस्था किया जाना स्वीकार किया तथा इस सहमति के अन्तर्गत 9 अप्रैल, 1999 को पहली भारतीय बस 12 पत्रकारों तथा 23 अधिकारियों को लेकर कलकत्ता से ढाका गई तथा इसने कलकत्ता-ढाका सड़क यातायात को आरम्भ किया। 19 जून, 1999 को विधिवत रूप में बस यातायात का शुभारम्भ किया गया। इस अवसर पर प्रधानमंत्री वाजपेयी ढाका यात्रा पर गए तथा बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना से उच्चस्तरीय वार्तालाप किया। दोनों नेताओं ने बांग्लादेश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में अपने सहयोग तथा मित्रता को स्मरण किया एवं इसी तरह भविष्य में भी आपसी मित्रता और सहयोग को विकसित कर अच्छे पड़ोसियों की भॉति रहने का निर्णय किया। दोनों नेताओं ने द्विपक्षीय, क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर विचार-विमर्श किया। इस यात्रा के दौरान संयुक्त घोषणा की गई कि दोनों देशों की सरकारों ने एक समझौता किया है जिसके अन्तर्गत भारत बांग्लादेश को 200 करोड़ रुपए का कर्ज देगा तथा गैर सरकारी स्तर पर भारत-बांग्लादेश साझे चेम्बर ऑफ क़ामर्स की स्थापना की जाएगी।

भारत ने बांग्लादेश के इस आग्रह को भी स्वीकार कर लिया कि गैर-द्विपक्षीय स्तर पर भी कुछ वस्तुओं को शुल्क से मुक्त रखा जाए। दोनों देशों ने बहुआयामी संचार सम्पर्को की स्थापना पर सहमति बनाई। सीमा व्यापार तथा व्यापार के अन्तरों पर भी वार्तालाप किया गया। बांग्लादेश की प्रधानमंत्री ने कहा कि सार्क भावना के अधीन अन्य देशों के साथ सम्बन्धों के मुद्दे द्विपक्षीय सम्बन्धों के क्षेत्र से दूर रखे गए है। भारत तथा पाकिस्तान को लाभकारी द्विपक्षवाद को अपनाना चाहिए। भारत तथा बांग्लादेश में बस सेवा आरम्भ किए जाने से दोनों देशों के लोगों में आपसी सम्बन्ध स्थापित होने की प्रक्रिया को एक अच्छी स्वस्थता तथा दिशा प्राप्त होने की आशा बनी जिससे दोनों देशों के बीच राज्य स्तरीय सम्बन्धों के अधिक दृढ़ होने की आशा भी बनी।

जनवरी, 2000 में भारत के विदेशमंत्री ने ढाका यात्रा की तथा आपसी सम्बन्धों को और अधिक दृढ़ करने का प्रयास किया। दोनों देशों ने अगरतला-ढ़ाका के लिए बस सेवा आरम्भ करने पर सहमति जताई। यह उस सोच का एक भाग था जिसके अधीन इस क्षेत्र के देशों-वर्मा, भूटान, नेपाल बांग्लादेश तथा भारत को सड़क यातायात से जोड़ा जाना था। कृषि तथा इससे सम्बन्धित क्षेत्रों में द्विपक्षीय सम्बन्धों के विकास के लिए भी निर्णय लिया गया। जनवरी, 2000 के अन्तिम सप्ताह में संयुक्त कार्य समूह की एक बैठक हुई तथा दोनों देशों ने अन्तः क्षेत्रों को सूचीबद्ध किया जिनका आपस में आदान-प्रदान किया जाना था। ब्योरा तो प्रकाशित नहीं किया गया परन्तु यह पता चला कि भारत ने 51 इनक्लेव जिनका क्षेत्रफल 1172 एकड़ था, प्राप्त करने थे। यह भी निर्णय किया गया कि 400 किमी० सीमा से बचे 6.5 किमी० सीमा के चिन्हीकरण का कार्य मई-जून, 2000 तक पूरा कर लिया जाना था। परन्तु सीमा सम्बन्धी सभी वास्तविक मुद्दों का वास्तविक समाधान न किया जा सका।

फरवरी, 2000 में भारत ने बांग्लादेश को 400 करोड़ रुपए का सरल कर्ज देने पर सहमत जतायी। इसके द्वारा बांग्लादेश में यातायात सुविधाओं का विकास किया जाना था। वास्तव में 200 करोड़ रुपया तो फरवरी, 2000 में ही दे दिया गया था। भारत-बांग्लादेश की सरकारों ने 4 जुलाई, 2000 के दिन दोनों देशों में रेल द्वारा माल व्यापार को पुनः आरम्भ करने का समझौता किया गया। यह रेल सम्पर्क 21 जनवरी, 2001 से आरम्भ हो गया जब 35 कोच वाली एक रेलगाड़ी बांग्लादेश से भारत पहुंची। दोनों देशों ने एक ऐतिहासिक रेल-व्यापार मार्ग को दोबारा आरम्भ कर दिया तथा आपसी व्यापार एवं यातायात को सुविधाजनक बनाने का एक अच्छा प्रयास आरम्भ किया।

फरवरी, 2001 में भारत-बांग्लादेश साझे कार्य समूह की एक बैठक नई दिल्ली में हुई तथा दोनों में वीजा व्यवस्था पर वार्तालाप हुआ और इस सम्बन्ध में एक नया समझौता किया गया इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नवत रही-

1. कूटनीतिक पासपोर्ट धारकों को वीजा प्राप्त करने से स्वतन्त्रता दी गई।
2. व्यापारियों, विद्यार्थियों तथा शोधकर्ताओं को एक वर्ष के लिए बिना रूकावट के बहुपक्षीय आधार पर प्रवेश की सुविधाएं दी गई।
3. सैलानियों के लिए प्रयोजन व्यवस्था की समाप्ति की गई।
4. परमिट धारकों को वर्ष दर वर्ष वीजा देने की व्यवस्था किए जाने का निर्णय लिया गया।

यह भी निर्णय लिया गया कि एक देश के नागरिक जब हवाई जहाज के मार्ग से दूसरे देश में प्रवेश करेंगे तो वे अपनी वापसी में किसी जमीनी मार्ग का प्रयोग कर सकेगें। परन्तु ऐसा करने के लिए उन्हें अपने प्रवेश स्थान पर पूर्व सूचना देनी होगी। एक बार फिर भारत ने बांग्लादेश के ध्यान में यह तथ्य प्रकट किया कि उसकी धरती से कुछ भारत विरोधी तत्व अपनी गतिविधियों का संचालन कर रहे थे, परन्तु बांग्लादेश ने इस बात से इनकार कर दिया और कहा कि उसने ऐसे तत्वों पर रोक लगाई हुई थी।

पूर्वी सीमा पर तनाव तथा सीमा झड़पे-सीमा रेखा को चिन्हित करने के सम्बन्ध में नई दिल्ली तथा ढ़ाका में मतभेद थे तथा इस मुद्दे पर सीमा विवाद समय-समय पर पैदा होते रहते थे। अप्रैल, 2001 में इस क्षेत्र में एक बड़ा तनाव या कहें कि एक झगड़ा पैदा हो गया। पहले बांग्ला देश ने पिरदीवा क्षेत्र में जो भारत के पास था उस पर कब्जा जमा लिया तो इसके विरूद्ध जबावी कार्यवाही में भारत ने अपने सीमा सुरक्षा बल को बुरामैमारी क्षेत्र मे भेज दिया। भारतीय बार्डर सिक्योरिटी फोर्स के 20 सैनिकों को बांग्लादेश राइफल्स के 700 सैनिकों ने घेर लिया तथा कत्ल कर दिया। इस घटना ने भारत-बांग्लादेश सीमा पर तनाव पैदा कर दिया तथा दोनों देशों के सम्बन्धों भी कड़वाहट पैदा हो गई परन्तु इस तनाव को कम करने के लिए दोनों देशों की सरकारों ने संयम से काम करने का निर्णय लिया तथा सीमा को चिन्हित करने के कार्य को पहल के आधार पर पूर्ण करने के लिए वार्तालाप करने का निर्णय लिया।

भारत तथा बांग्लादेश के नेताओं ने जनवरी, 2002 में काठमाण्डू शिखर सम्मेलन के समय आपसी वार्तालाप भी की तथा द्विपक्षीय आर्थिक-व्यापारिक सहयोग को बढ़ाने की नीति में दोबारा विश्वास प्रकट किया। लेकिन फरवरी-मार्च, 2002 में जब भारत के गुजरात प्रांत में साम्प्रदायिक हिंसा फैली तो बांग्लादेश के कुछ संगठनों ने भारत विरोधी प्रचार को अपनाया। इसी समय बांग्लादेश ने यह घोषित किया कि अब उसने चीन के साथ अधिक अच्छे और विकसित सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयास किए हैं। इन दोनों तत्वों ने भारत-बांग्लादेश सम्बन्धों की प्रक्रिया को धीमा बनाए रखने का कार्य किया। मार्च, 2002 में भारतीय बी0एस0एफ0 तथा बांग्लादेश की बी0डी0आर0 के अधिकारियों की एक बैठक ढ़ाका में हुई तथा दोनों देशों ने अप्रैल, 2001 की दुर्भाग्यपूर्ण घटना को पीछे छोड़ते हुए यह निर्णय

लिया कि भविष्य में ऐसी घटना को नही होन दिया जायेगा तथा दोनों देश सीमा पार अपराधों पर नियंत्रण लगाने के लिए कदम उठाएंगे।

अप्रैल, 2002 में दोनों देशों ने आपसी व्यापार को बढ़ावा देने पर बातचीत की तथा भारत ने इस बात को उठाया कि उसे बांग्लादेश के मार्ग से अपने उत्तर-पूर्वी राज्यों को सामान की आपूर्ति करने की सुविधा की आवश्यकता थी और इसके बदले में भारत बांग्लादेश को व्यापार सुविधाएं देने के लिए तैयार था। इस सम्बन्ध में बांग्लादेश ने यह कहा कि इस विषय पर साझे आर्थिक आयोग के मंच पर वार्तालाप होना चाहिए। बांग्लादेश इस मुद्दे पर समय चाहता था। इसी कारण भारत-बांग्लादेश व्यापार वार्तालाप सफल न हो सका। जून, 2002 में बांग्लादेश के विदेशमंत्री ने भारत की तथा अगस्त, 2002 में भारतीय विदेशमंत्री ने बांग्लादेश की यात्रा की।

बांग्लादेश के विदेशमंत्री ने अपनी यात्रा के दौरान भारत के साथ राजनीतिक समझ तथा आपसी आर्थिक सम्बन्धों तथा व्यापार सहयोग को बढ़ाने के सम्बन्ध में बातचीत की। भारत-पाक सीमा पर विद्यमान सैनिक तनाव पर चिन्ता प्रकट की, परन्तु यह स्वीकार किया कि सार्क मंच पर द्विपक्षीय मुद्दों को नहीं उठाया जा सकता। भारतीय विदेश मंत्री ने अपनी यात्रा के समय बांग्लादेश के नेताओं को यह विश्वास दिलाया कि भारत अपने पड़ोसियों से अच्छे और विकसित सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था, परन्तु इसके साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि पाकिस्तान के साथ विद्यमान सैनिक तनाव भारतीय राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के हित में विद्यमान था। दोनों देशों के विदेश मन्त्रियों की यात्राओं के आदान-प्रदान से द्विपक्षीय सम्बन्धों के वातावरण को सुखद बनाने का प्रयास किया परन्तु कुछ एक नकारात्मक तत्वों जैसे बांग्लादेश में भारत-विरोधी गुटों का अस्तित्व, भारत विरोधी प्रचार की घटनाएं और सीमा पार अपराधों की विद्यमानता के कारण दोनों देशों के सम्बन्ध अधिक प्रगति करने में असफल ही रहे।

जनवरी, 2003 में भारत-बांग्लादेश साझे कार्य समूह की एक बैठक ढ़ाका में हुई जिसमें भारत ने यह मांग की कि बांग्लादेश को उन 83 भारतीय विद्रोहियों को भारत को सौंप देना चाहिए था जो कि बांग्लादेश में निवास कर रहे थे। भारत ने यह तर्क दिया कि विद्रोहियों तथा उग्रवादियों को चेतावनी देने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। ऐसी भारत के मांग के उत्तर में बांग्लादेश के अधिकारियों ने केवल यही कहा कि उनकी सरकार अपनी धरती पर किसी भी भारत विरोधी तत्व को कार्य न करने

देने के प्रति वचनबद्ध थी और अगर कोई ऐसा व्यक्ति बांग्लादेश में पकड़ा जाएगा तो उसके विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही की जाएगी।

फरवरी, 2003 में यह समस्या उभरकर सामने आई जब भारत-बांग्लादेश सीमा की जीरों लाइन पर 212 व्यक्तियों को विद्यमान पाया गया। भारत ने इन्हें बांग्लादेशी नागरिक कहा जबकि बांग्लादेश ने इन्हें भारतीय नागरिक घोषित किया। इस स्थिति में भारतीय बी०एस०एफ० तथा बांग्लादेश राइफल्स में गोलाबारी भी होने लगी तथा भारत-बांग्लादेश सम्बन्धों में कुछ तनाव आने लगे। परन्तु यह मुद्दा उस समय हल हो गया जब भारतीय विदेश मंत्री ने बांग्लादेश के विदेशमंत्री के साथ टेलीफोन पर बात की और यंह स्पष्ट किया कि जीरो लाइन पर बैठे लोग बांग्लादेशी ही थे तथा भारत किसी भी स्थिति में इन्हें अपने क्षेत्र में घुसने नहीं देगा।

13 फरवरी, 2003 को बांग्लादेश के विदेशमंत्री ने भारत की यात्रा की तथा गैरकानूनी रूप में सीमा पार करने वालों के मुद्दों पर उच्चस्तरीय वार्तालाप किया। दोनों देशों ने निर्णय लिया कि 1992 के समझ के स्मरण पत्र के आधार पर कार्य किया जाए तथा बल प्रयोग से दूर रहा जाए। इसके बाद भारत-बांग्लादेश साझे नदी कमीशन की एक बैठक दिल्ली में हुई जिसमें बांग्लादेश के अधिकारियों ने भारत की नदियों को जोड़ने की नई नीति के बारे में कुछ चिंताएं प्रकट की। भारत ने यह कहा कि ऐसी योजना अभी अपने प्रारम्भिक स्तर पर थी। दोनों देशों ने नदियों के पानी के सम्बन्ध में आपस में विचारों का खुला आदान-प्रदान किया तथा आपसी मतभेदों को सुलझाने का प्रयास किया।

दिसम्बर, 2003 से जनवरी 2004 तक सभी राष्ट्रीयताओं के आतंकवादियों के विरूद्ध एक अभियान कुछ सीमा क्षेत्रों में चलाया गया विशेषकर सिल्हट, बन्दरवन तथा कोकस बाजार के क्षेत्रों में किया गया। यह सोचा गया कि बांग्लादेश ने यह अभियान भारतीय मांग के अधीन किया था, परन्तु बांग्लादेश के गृहराज्य मंत्री ने यह कहा कि यह अभियान बांग्लादेश की सरकार की अपनी उस नीति का भाग था जिसके अधीन वह अपराध-विरोधी कार्यवाहियां निरन्तर चलाती रही थी तथा इसके उद्देश्य हिंसक तथा राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को समाप्त करना था।

जनवरी, 2004 में भारत-बांग्लादेश विशेषज्ञों की संयुक्त समिति की एक बैठक तीस्ता के पानी की भागीदारी के सम्बन्ध में हुई परन्तु तकनीकी विशेषज्ञों के मध्य विद्यमान मतभेदों के कारण कोई निर्णय

न हो सका। लेकिन यह सहमति बनी कि दोनों देशों में तीस्ता नदी के पानी की भागीदारी के लिए एक अस्थायी समझौता करने के लिए एवं सिफारिश प्रस्तुत करने के लिए एक संयुक्त तकनीकी समूह का गठन किया जाएगा। 2003-04 में दोनों देशों के सम्बन्ध विकसित तो होते रहे, परन्तु इनमें वह गति तथा स्वरूप न आ सका जो कि आ सकता था अथवा आना चाहिए था। ऐसा प्रतीत हुआ कि बांग्लादेश की बी०एन०पी० सरकार भारत के साथ सम्बन्धों के विकास के उद्देश्य के प्रति जागरूक तो थी परन्तु चीन के साथ सम्बन्धों के विकास को विशेष प्राथमिकता मान रही थी। भारत और बांग्लादेश साप्टा से साफ्टा की ओर प्रगति के लिए वचनबद्ध तो रहे, दोनों में आपसी व्यापार को बढ़ाने के सम्बन्ध में सहमति भी बनी रही, दोनों के आपसी व्यापारिक तथा अन्य क्षेत्रों में सम्बन्ध विकसित तो होते रहे, लेकिन वास्तविक प्रगति सीमित ही बनी रही।

बांग्लादेश में बेगम खालिदा जिया की सरकार अर्थात बी०एन०पी० जमात की साझी सरकार की स्थापना के बाद दोनों देशों के सम्बन्धों में वैसी गर्मजोशी दिखाई नहीं दी जैसा कि शेख हसीना वाजेद की सरकार में उभरकर सामने आयी थी। अवामी लीग को भारत की ओर झुका हुआ एक दल माना जाता है जिसकी गहरी और प्रत्यक्ष प्रतिद्वन्दी बी०एन०पी० है। "भारत बांग्लादेश के साथ सदैव सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करता रहता है। भारत के सभी राजनीतिक दलों को संकीर्ण दलीय दृष्टिकोण से ऊपर उठकर बांग्लादेश के राष्ट्रीय हितों के आधार पर भारत के साथ सम्बन्धों का सदैव संचालन करना चाहिए।"[37]

भारत और बांग्लादेश दो पड़ोसी देश हैं जिनमें गहरे सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों का लम्बा इतिहास है। बांग्लादेश की स्वतन्त्रता में भारत ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी तथा उसके बाद उसने सदैव ऐसा प्रयास किया कि बांग्लादेश के साथ सम्बन्धों को उच्चस्तरीय रूप में सहयोगी तथा लाभकारी बनाया जाए। दोनों देश आपसी आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बन्धों का विकास करके अपने-अपने हितों को पूरा कर सकते हैं। दोनों देश फरक्का तथा तीन बीघा की समस्याओं को हल करने में सफल रहे हैं तथा दोनों देश सार्क मंच पर सहयोग करते रहे हैं। सार्क सम्मेलन में (2004) दोनों देशों ने आपसी रिश्तों को दृढ़ बनाने पर जोर दिया। प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा पड़ोसियों के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने की नीति के तहत बांग्लादेश के साथ भी नजदीकी बढ़ाने की कोशिश की जिसके

तहत कलकत्ता से ढ़ाका तक बस प्रारम्भ कर एक दूसरे को समीप लाने की कोशिश किया तथा बांग्लादेश को समय-समय पर आर्थिक सहायता देकर उसके विकास में निरन्तर गति प्रदान की।

एक-दूसरे देशों के यहां राजनीतिज्ञों को भेजकर समस्या का हल करने का त्वरित प्रयास किया। वीजा, पासपोर्ट आदि नियमों को सरल किया गया, तथा सीमा को चिन्हित करने के कार्य को पहल के आधार पर सम्पूर्ण करने के लिए वार्तालाप बल विशेष बल दिया गया। सीमा पर होने वाली घटनाओं को बातचीत के माध्यम से हल करने का प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा प्रयास किए गए तथा बांग्लादेश के विकास में वाजपेयी द्वारा हर सम्भव प्रयास करने की कोशिश पूर्ण मनोवेग के साथ की गई तथा आंशिक सफलता भी प्राप्त की।

प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी के प्रयासों से दोनों देशों के बीच नजदीकी आई है। जिसके कारण दोनों देशों की सीमाओं पर व्यापारिक गतिविधियां बढ़ी है। बांग्लादेश को भारत से होने वाले निर्यातों में बढ़ोत्तरी हो रही है जिससे बांग्लादेश भारत की सबसे गतिशील मण्डियों में से एक मण्डी बन गया है। दोनों देशों के बीच अधिक सम्पर्क साधने की दिशा में उठाए गए महत्वपूर्ण कदम के बतौर 19 सितम्बर,, 2003 को अगरतला तथा ढ़ाका के बीच एक बस सेवा को उद्घाटन किया गया। कोलकाता तथा ढ़ाका के बीच मौजूद बस सेवा के बाद अगरतला-ढ़ाका बस सम्पर्क सबसे सफल बस सम्पर्क है।''[38]

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भारत ने बांग्ला देश के साथ मधुर संबंध बनाने का भरसक तथा अर्न्तमन से प्रयास किया तथा कुछ एक घटनाओं को छोडकर दोनों देशों के सम्बन्ध सहयोगपूर्ण तथा समरसतापूर्ण रहे। एक दूसरे देश के प्रतिनिधियों की यात्राओं द्वारा सम्बन्धों को मधुर बनाया गया तथा आतंकवाद की समाप्ति पर विशेष जोर दिया गया जिसमें आंशिक रूप से सफलता भी प्राप्त हुई।

3. भारत एवं श्रीलंका

''संयुक्त मोर्चा सरकार की संसद में पराजय के उपरान्त राष्ट्रपति ने नये चुनावों की घोषणा की। फरवरी-मार्च, 1998 को सम्पन्न हुये मध्यावधि चुनावों में लोक सभा में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त न हो सका। फलस्वरूप राष्ट्रपति ने सबसे बड़े दल के रूप में उभरकर सामने आयी भारतीय जनता पार्टी को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया। मार्च, 1998 में 18 क्षेत्रीय दलों के सहयोग से भारतीय जनता पार्टी ने श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार का गठन किया।''[39] ''सत्ता सम्भालने के उपरान्त प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विदेश नीति को स्पष्ट करते हुए कहा कि हमारी सरकार परमॉणु नीति की समीक्षा करेगी एवम् तत्सम्बन्धी समस्त विकल्प खुले रखेगी।''[40] ''इसके साथ यह सरकार एशियाई राष्ट्रों की एकता और ज्यादा से ज्यादा क्षेत्रीय सहयोग देने की कोशिश करेगी। बिना किसी देश की मध्यस्थता के अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों को सुधारने की दिशा में कदम उठाएगी।''[41]

अपनी कथनी और करनी में अन्तर न रखते हुए वाजपेयी सरकार ने 11 व 13 मई, 1998 को सत्ता प्राप्ति के मात्र 2 माह पश्चात ही पोखरण में परमॉणु परीक्षण कर दक्षिण एशिया क्षेत्र में भारत को परमॉणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। अपने इस कदम से भारत परम्परागत छबि को तोड़ते हुए राष्ट्रीय हितों के लिये ठोस पहल करने में सक्षम राष्ट्र के रूप में उभरकर सामने आया। इस संदर्भ में सरकार की नयी नीति के नियन्ता श्री जसवंत सिंह ने कहा कि ''यह नैतिकवाद से यथार्थवाद में रूपान्तरण है।''[42]

''परमॉणु परीक्षणों के उपरान्त विश्व की अनेक महाशक्तियों यथा इग्लैण्ड, अमरीका, जापान इत्यादि ने भारत पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये।''[43] दक्षिण एशिया में भी जहाँ पड़ोसियों द्वारा (पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल) तीव्र आलोचना की गई वही दूसरी ओर आरम्भ से ही श्रीलंका ने इस सम्बन्ध में संतुलित प्रतिक्रिया व्यक्त की। यद्यपि श्रीलंका के विदेशमंत्री ने आरम्भ में इस घटना पर अपना मौखिक समर्थन प्रदान किया, किन्तु इसके कुछ ही समय पश्चात श्रीलंका विदेश मंत्रालय ने ''दक्षिण एशिया में परीक्षण, एक चिन्ता का विषय'' कहकर विचार व्यक्त किये। श्रीलंका की राष्ट्रपति चन्द्रिका

कुमारतुंगे ने भी परीक्षणों पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि इस घटना से दक्षिण एशिया में विश्वास का वातावरण प्रभावित होगा।

"29–30 जुलाई, 1998 को कोलम्बों में सम्पन्न 10वें सार्क सम्मेलन में भारत के प्रधानमंत्री वाजपेयी तथा श्रीलंका की राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमारतुंगे ने द्विपक्षीय मुद्दों पर विस्तृत विचार-विमर्श किया तथा दोनों ही पक्षों में इस बात की सहमति हुयी कि वह परस्पर व्यापारिक सम्बन्धों को और भी अधिक मजबूत बनाएंगें।"[44]

सार्क सम्मेलन में मिलने के पश्चात चन्द्रिका कुमारतुंगे 27 दिसम्बर, 1998 को तीन दिवसीय भारत यात्रा पर आयी तथा भारत और श्रीलंका के मध्य मुक्त व्यापार क्षेत्र की स्थापना के लिये एक ऐतिहासिक समझौते पर हस्ताक्षर हुए। श्रीलंका दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ में पहला ऐसा देश है जिसके साथ भारत ने मुक्त व्यापार समझौता किया है। दोनों राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों ने इस समझौते पर अपने हस्ताक्षर के साथ ही भारत-श्रीलंका सम्बन्धों को एक नया आयाम दिया। इस समझौते के अनुसार भारत 3 वर्ष श्रीलंका 8 वर्षो में सभी आयात शुल्कों को हटा लेगा तथा दोनों देशों ने भारत-श्रीलंका फाउण्डेशन की स्थापना की सहमति पर भी हस्ताक्षर किये। "भारत की ओर से वित्त मंत्री यशवन्त सिन्हा तथा श्रीलंका के वित्तमंत्री श्री लक्ष्मण कादिरगमर ने इस करार पर हस्ताक्षर किए। यह फाउण्डेशन कला,संस्कृति, व्यापार, वाणिज्य और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में दोनों देशों के बीच सहयोग बढ़ाने में मदद देगा। फाउण्डेशन का आरम्भिक कोष 4 करोड रु0 होगा जिसमें दोनों देशों का बराबर का योगदान होगा। इसके साथ ही भारत सरकार ने राष्ट्रपति तुंगे को यह भी विश्वास दिलाया कि भारत श्रीलंका के आन्तरिक मामलों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा।"[45]

18-19 मार्च, 1999 को नुवारा में आयोजित सार्क राष्ट्रों के विदेशमन्त्रियों की इक्कीसवीं बैठक में भाग लेने के लिए भारत के विदेश मंत्री श्री जसवंत सिंह श्रीलंका गये। इस यात्रा में भी भारत-श्रीलंका के मध्य चर्चा का मुख्य विषय व्यापारिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने पर आधारित रहा। "भारत ने श्रीलंका को व्यापार में रियायत प्रदान करते हुए मुक्त व्यापार समझौते के अन्तर्गत 1000 वस्तुओं पर छूट प्रदान की।"[46] वाजपेयी सरकार के नेतृत्व में इन्हे एक नयी दिशा प्राप्त हुई जिसने परस्पर विश्वास के वातावरण को सृजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में गठित ''लोकतान्त्रिक गठबन्धन सरकार'' को 17 अप्रैल, 1999 को संसद में हार का सामना करना पड़ा किन्तु विपक्ष वैकल्पिक सरकार का गठन न कर सका, फलस्वरूप नये चुनावों की घोषणा की गयी। सितम्बर-अक्टूबर, 1999 में सम्पन्न हुए लोकसभा चुनावों में सभी दलों की स्थिति कमोवेश समान ही रही। तब पुनः वाजपेयी जी को सदन का नेता चुना गया तथा 13 अक्टूबर, 1999 को उन्होनें प्रधानमंत्री पद की शपथ ग्रहण कर नयी सरकार का गठन किया। सत्ता में राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठनबन्धन सरकार की पुनः वापसी से राष्ट्र की आन्तरिक तथा वैदेशिक नीतियों में कोई बदलाव नहीं आया। वाजपेयी की ही भाँति श्रीलंका में भी कुमारतुंगे ने 1999 में सम्पन्न दूसरे दौर के राष्ट्रपति चुनावों में विजय प्राप्त कर पुनः सत्ता प्राप्त की। इस प्रकार दोनों ही राष्ट्रों के परस्पर सम्बन्ध, दृष्टिकोण तथा नीतियां यथावत रही।

''यद्यपि आर्थिक और व्यापारिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने की दिशा में दोनों ही राष्ट्रों ने मुक्त व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर कर इसके प्रति अपनी गम्भीरता को सिद्ध कर दिया था किन्तु इसका क्रियान्वयन एक स्वप्न मात्र था। समझौते के क्रियान्वयन को लेकर आगे की वार्ता के लिए भारतीय वाणिज्य सचिव पी०पी० प्रभु श्रीलंका की यात्रा पर गये।''[47] जहाँ एक ओर भारत की प्रमुख चिन्ता श्रीलंका चाय के लिये अपने बाजारों को खोलने को लेकर थी वहीं दूसरी ओर श्रीलंका आटो मोबाइल आयात पर अपना राजस्व लाभ छोड़ने को तैयार नहीं था। यद्यपि भारत श्रीलंका सम्बन्धों के लिए यह समझौता ऐतिहासिक सिद्ध हो सकता था किन्तु विभिन्न राजनीतिक कारणों से दोनों ही पक्ष इसका क्रियान्वयन न कर सके। अन्ततः इसे ठण्डे बस्ते में डाल दिया गया।

''लिट्टे ने भी 1998 से भारत में राष्ट्रीय जनतांत्रिक सरकार के सत्ता में आने के बाद से ही भारत के साथ मित्रवत् सम्बन्धों को पुनर्जीवित करनेका प्रयास शुरू कर दिया।''[48] उन्हें ऐसी आशा थी कि भारत की यह सरकार लिट्टे के प्रति अपनी नीतियों में बदलाव ला सकती है। भारत को लेकर लिट्टे ने अपनी स्थिति स्पष्ट की तथा कहा ''हमारा भारत की आन्तरिक राजनीति में हस्तक्षेप करने का कोई इरादा नहीं है और न ही ऐसा कोई कार्य हम करने जा रहे है जो भारत के राष्ट्रीय हितों के लिए हानिकारक हो।

"जब भारत में 'कारगिल-प्रकरण' घटित हुआ तब भी लिट्टे ने अपनी पूर्व की घोषण के अनुरूप ही कहा कि वह भारत के हितों के पक्ष में ही रहेगा तथा भारत को अपने समर्थन की घोषणा प्रत्यक्ष रूप से की। इतना ही नहीं उस समय 'जनरल्स' में प्रकाशित खबरों के अनुसार जहां एक ओर लिट्टे ने भारत को अपना समर्थन प्रदान किया वहीं दूसरी ओर श्रीलंका सरकार न सिर्फ सम्पूर्ण प्रकरण को लेकर भारत के प्रति उदासीन रही, बल्कि अन्दर से पाकिस्तान के प्रति समर्थित दिखायी पड़ी।"[49]

"इधर भारत में वाजपेयी सरकार में भी लिट्टे के प्रति सहानुभूति के भाव देखे जा सकते थे। 29 जुलाई, 1999 को तमिल यूनाइटेड लिबरेशन फ्रण्ट 'तुल्फ' के प्रमुख नेता नीलम तिस्वरचेल्वम् की लिट्टे के एक आत्मघाती मानव बम द्वारा हत्या कर दी गयी।"[50] वह एक विद्वान व्यक्ति तथा भारत के अच्छे मित्र थे। एक तरफ जहां उनकी हत्या पर श्रीलंका में तीखी आलोचना की जा रही थी, वही भारत सरकार ने इस पर काफी सन्तुलित प्रतिक्रिया व्यक्त की। इतना ही नहीं घटना के पीछे लिट्टे का हाथ होने के सम्बन्ध में भी भारतीय विदेश मंत्रालय द्वारा कोई टिप्पणी नहीं की गई। भारत की राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार के संयोजक तथा समता पार्टी के अध्यक्ष श्री जार्ज फर्नांडिज लिट्टे के समर्थक होने के साथ-साथ उसके प्रति सहानुभूति का भाव भी रखते थे।

यद्यपि यह वह दौर था, जब लिट्टे के प्रति भारतीय रूख में बदलाव देखा जा सकता था किन्तु जहां तक भारत-श्रीलंका सम्बन्धों का प्रश्न है तो वह इस काल में भी पूर्णतः सामान्य और स्थिर रहे। "दिसम्बर, 1999 को जब श्रीलंका में राष्ट्रपति चुनाव सम्पन्न होने जा रहे थे, तब लिट्टे द्वारा राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमारतुंगे के ऊपर किये गये जान लेवा हलमे की भारत ने भी कड़े शब्दों में निन्दा की। भारत ने इस घटना को 'उग्र आतंकवाद' की संज्ञा दी।"[51] प्रधानमंत्री वाजपेयी ने भी श्रीलंका को हर सम्भव चिकित्सकीय सहायता शीघ्र ही उपलब्ध कराने की भी पेशकश की।

1999 के आरम्भ में भी राष्ट्रपति कुमारतुंगा के प्रयास से नार्वे ने राजनीतिक मध्यस्थता की भूमिका का निर्वाह करना स्वीकार किया था तथा लिट्टे प्रमुख प्रभाकरण को भी इस पर कोई आपत्ति नहीं थी तथा भारत भी इस विषय पर प्रत्यक्ष रूप से कोई कार्यवाही नहीं करना चाहता था मध्यस्थता के प्रश्न पर अमेरिका ने कहा कि "अमेरिका, श्रीलंका की शान्ति प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेगा क्योंकि शायद भारत को यह पसन्द नहीं आये। इससे पूर्व में भी जब कोलम्बों द्वारा इंग्लैण्ड के

उपविदेश सचिव लियाम फाक्स के नेतृत्व में लिट्टे से वार्ता आरम्भ करने का विचार किया जा रहा था, तो भारत ने इस पर कड़ी आपत्ति दर्ज की थी।''[52]

''श्रीलंका सरकार को अंधेरे में भारत को रखने का आरोप लगाया था। इन नवीन प्रयासों के सन्दर्भ में श्रीलंका सरकार की भारत को लेकर दूसरी प्रमुख चिन्ता लिट्टे से की जाने वाली प्रत्यक्ष वार्ता थी क्योंकि भारत में लिट्टे को प्रतिबन्धित संगठन घोषित कर दिया था तथा पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की हत्या में लिप्त होने के कारण लिट्टे प्रमुख प्रभाकरण के प्रत्यर्पण की मांग भी श्रीलंका सरकार से की जा रही थी। अतः ऐसी परिस्थिति में श्रीलंका की दृष्टि में लिट्टे से वार्ता भारत को नाराज करने जैसा था जो श्रीलंका सरकार नहीं चाहती थी। इसीलिए भारत के पचासवें गणतन्त्र दिवस के अवसर पर भारत आये श्रीलंका के विदेशमंत्री लक्ष्मण कादिरगमर ने श्रीलंका के पक्ष को भारत के समक्ष रखने का पूरा प्रयास किया था।''[53]

भारत के सम्बन्ध में श्रीलंका की एक अन्य प्रमुख चिन्ता नार्वे की भूमिका को लेकर थी क्योंकि ऐसा माना जा रहा था कि भारत कहीं इसे अमेरिका के प्रतिनिधि तथा पश्चिम के हितों के संरक्षक के रूप में न देखे। दूसरी ओर यह भी समझा जा रहा था कि यदि श्रीलंका आन्तरिक आतंकवाद की समस्या के समाधान के लिये किसी वाह्य तीसरे पक्ष की भूमिका स्वीकार सकता है तो भरत पर भी कश्मीर समस्या के सम्बन्ध में ऐसा दबाव पड़ सकता है। जो कि भारत के लिए अत्यधिक संवेदनशील मुद्दा है। निश्चित रूपसे श्रीलंका की आशंकाये अपनी जगह सही हो सकती थी, किन्तु अब तक की परिस्थितियों के अवलोकन से इतना अवश्य स्पष्ट था कि भारत-श्रीलंका सम्बन्धों की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए श्रीलंका सरकार ने शान्ति प्रक्रिया की दिशा में किये जा रहे समस्त प्रयासों से भारत को अवगत कराने का कार्य किया था, जिससे पारस्परिक विश्वास को कोई क्षति न पहुंचे।

अभी शान्ति के लिए प्रयास शुरू ही हुये थे कि अप्रैल, 2000 में घटित एक भीषण घटना में उस समय समस्त परिदृश्य को ही बदल कर रख दिया जब 21 अप्रैल, 2000 को लिट्टे ने अत्यधिक रणनीतिक महत्व के तथा अभेद्य माने जाने वाले ऐलीफैण्ट पास स्थिति श्रीलंका सरकार के सैन्य ठिकाने पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया जिसमें श्रीलंका सेना के 20000 से 40000 सैनिकों के फंसे होने की आशंका व्यक्त की जा रही थी। श्रीलंका के इतिहास में लिट्टे द्वारा की गयी यह अब तक की सबसे

बड़ी कार्यवाही थी जिसने श्रीलंका की समूची सुरक्षा व्यवस्था पर ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया था।

''जाफना में युद्ध के बादल छाये हुए थे उससे निबटने के लिए श्रीलंका सरकार ने अपने मित्र राष्ट्रों से सहायता की अपील की, जिसमें सर्वप्रथम यह अनुरोध भारत से किया गया।''[54] 1980 के दशक में भारत को श्रीलंका की सहायता करने की भारी कीमत चुकानी पड़ी थी। आज जब कि फिर परिस्थितियां उसी मोड़ पर आकर खड़ी थी तो भारत सरकार ने अपनी अहस्तक्षेप की नीति का अनुशरण करते हुए किसी भी प्रकार की सैन्य सहायता देना अस्वीकार कर दिया।

''बदली हुई परिस्थिति में श्रीलंका सरकार ने आन्तरिक तथा वाह्य क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। सर्वप्रथम मंत्रिमण्डलीय बैठक में राष्ट्र को युद्ध जैसी स्थिति में रखने की घोषणा हुयी।''[55] नागरिक सुरक्षा अध्यादेश लाकर सुरक्षा बलों को अतिरिक्त शक्तियां प्रदान की गयीं। श्रीलंका के सिंहली तथा तमिल दोनों ही समुदाय भारत की नीति को लेकर अत्यधिक उत्सुक थे। सिंहलियों के एक वर्ग का यह मानना था कि 1980 के दशक से शक्ति सम्पन्न हुये तमिल उग्रवाद को सशक्त करने का कार्य पाक जल सन्धि के उस पार से किया गया था। अतः भारत का यह नैतिक दायित्व है कि वह वर्तमान में उपस्थित विषम परिस्थितियों में श्रीलंका की सहायता करें, जबकि तमिलों के एक वर्ग का यह मानना था कि यदि भारत इस समस्या में हस्तक्षेप नहीं करता तो उन तमिलों की जान खतरे में पड़ सकती हैजो लिट्टे का समर्थन नहीं करते हैं।

भारतीय हस्तक्षेप को लेकर एक तीसरा और महत्वपूर्ण पक्ष वाह्य शक्तियों को लेकर था। यदि भारत श्रीलंका की सहायता नहीं करता तो निश्चित रूप से दक्षिण एशिया के आन्तरिक मामलों में बाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप की सम्भावना बढ़ जाती है। जो कि इस क्षेत्र में भारत के हितों को तथा सम्पूर्ण क्षेत्र की सुरक्षा व्यवस्था को भी प्रभावित करता है क्योंकि ऐसी परिस्थिति में श्रीलंका के पास किसी अन्य राष्ट्र से सहायता लेने के अतिरिक्त कोई विकल्प न बचा था। यह वह कारण थे जो भारत से किसी सक्रिय भूमिका की अपेक्षा कर रहे थे।

दूसरी तरफ भारत सरकार की भी अपनी कुछ मजबूरियां थी जो किसी भी प्रकार के सक्रिय हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं थी जिसमें सर्वप्रथम तो भारत के अपने अनुभव थे। 1980 के दशक में भारत

ने श्रीलंका की सहायता करने के प्रयास में ही अपने युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी को खो दिया। इस प्रयास में भारत को राष्ट्रीय क्षति के साथ-साथ कूटनीतिक पराजय का भी सामना करना पड़ा था। दूसरा एक प्रमुख प्रश्न यह भी है कि अगर भारत श्रीलंका के सैनिकों की सुरक्षित वापसी के लिये किसी प्रकार का सैन्य हस्तक्षेप करता है तो एक बार पुनः लिट्टे तथा भारतीय सेना के मध्य युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिसके दुष्परिणामों का सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है। भारत-श्रीलंका सम्बन्धों के निर्धारण में तीसरा एक अन्य प्रमुख कारक, भारतीय राज्य तमिलनाडु रहा है और इस बार तो स्थिति भी कुछ अलग थी। केन्द्र की एन०डी०ए० सरकार में एक प्रमुख घटक दल के रूप में तमिलनाडु की डी०एम०के० पार्टी भी थी जिसने श्रीलंका की वर्तमान तमिल समस्या के सम्बन्ध में भारत सरकार पर सैन्य हस्तक्षेप न करने का दबाव बनाए रखा।

सम्पूर्ण परिस्थितियों का गम्भीरता से अवलोकन करने के पश्चात भारत सरकार ने श्रीलंका में किसी भी प्रकार के सैन्य हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया जो उचित था। विदेश मंत्री श्री जसवन्त सिंह ने कहा कि "भारत श्रीलंका की समस्या का समाधान उसकी एकता और अखण्डता को बनाए रखते हुए ही देखना चाहता है। हम श्रीलंका में शन्ति स्थापना के लिये अपना हर सम्भव योगदान देने के लिए भी तैयार है किन्तु जहाँ तक सैन्य सहायता का प्रश्न है तो हम ऐसा नहीं कर सकते हैं।"[56] यद्यपि भारत ने दूरदृष्टि से देखते हुए श्रीलंका में सेना न भेजने का निर्णय किया, किन्तु वह समस्या से विमुख नहीं था। ठीक इसी समय प्रधानमंत्री वाजपेयी ने यह भी घोषणा की कि हम श्रीलंका में मानवीयता के आधार पर अन्य किसी भी तरह की सहायता करने के लिये तैयार है।

भारत-श्रीलंका सम्बन्धों के निर्धारण में तमिलनाडु की भूमिका सदैव से ही महत्वपूर्ण रही है। वहाँ के प्रमुख क्षेत्रीय दल डी०एम०के० के प्रमुख श्री करुणानिधि ने श्री राजीव गांधी की हत्या के उपरान्त दिये गये अपने बयानों से एक प्रकार की भ्रमपूर्ण स्थिति उत्पन्न करने का प्रयास किया। 1991 में राजीव गांधी की हत्या के उपरान्त दिये वक्तव्य में उन्होनें कहा "हमें प्रसन्नता होगी यदि लिट्टे तमिल ईलम को प्राप्त करने में सफल हो जाता है या तो वार्ता द्वारा अथवा अपने संघर्ष द्वारा।"[57] 12 मई, 2000 को भी राज्य विधानसभा में दिये अपने भाषण में जहां एक ओर उन्होनें लिट्टे का समर्थन किया वहीं दूसरी ओर उन्होनें यह भी कहा कि "इसका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि भारत की भूमि से लिट्टे को अपनी गतिविधियां संचालित करने के लिए डी०एम०के० से कोई समर्थन मिलेगा।"[58]

स्थिति तब गम्भीर हो गई जब उन्होनें 3 जून, 2000 को अपने 77वें जन्म दिन पर तमिल समस्या के समाधान हेतु श्रीलंका के विभाजन का "चेक मॉडल" प्रस्तुत कर दिया।"[59] अपने इस फार्मूले में उन्होनें सुझाव दिया कि चेकोस्लोवाकिया के दो स्वतन्त्र राष्ट्रों चैक एवं स्लोवाकिया के रूप में शान्तिपूर्ण विघटन की भॉंति श्रीलंका को भी शान्तिपूर्ण तरीके से दो राष्ट्रों में विघटन किया जाना चाहिए ताकि श्रीलंकाई तमिलों को पृथक राष्ट्र प्राप्त हो सके।

करूणानिधि द्वारा प्रस्तुत इस चेक मॉडल के सुझाव की श्रीलंका सरकार ने कड़े शब्दों में निन्दा की तथा प्रतिक्रिया में श्रीलंका सरकार के प्रवक्ता तथा मीडिया मंत्री मंगला समवीरा ने कहा "श्रीलंका के विभाजन का अर्थ भारत के विभाजन की शुरूआत होगा। करुणानिधि के इस बयान से द्विपक्षीय सम्बन्धों को बड़ा आघात पहुंचा, इसके पहले ही प्रधानमंत्री वाजपेयी ने इसे करुणानिधि के निजी विचार या अधिक से अधिक उनकी पार्टी के विचार बताते हुए स्पष्ट किया कि उनकी सरकार या एन०डी०ए० का दृष्टिकोण ऐसा नहीं है।

करुणानिधि का विवादास्पद सुझाव द्विपक्षीय सम्बन्धों के लिए हानिकारक साबित हो सकता था, किन्तु इसका एक सकारात्मक परिणाम विदेशमंत्री जसवंत सिंह की श्रीलंका यात्रा के रूप में देखा जा सकता है। 11 जुलाई, 2000 को विदेशमंत्री जसवन्त सिंह श्रीलंका की दो दिवसीय यात्रा पर गये तथा कहा कि "भारत आज भी पूर्व की ही भॉंति श्रीलंका की क्षेत्रीय अखण्डता का समर्थक है।" इतना ही नहीं उन्होनें भारत सरकार की तरफ से श्रीलंका के समक्ष 100 मिलियन डॉलर की आर्थिक सहायता का प्रस्ताव भी रखा तथा दाल, चावल, चीनी के क्षेत्र में द्विपक्षीय व्यापार को लेकर भी विस्तृत चर्चा की। इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य श्रीलंका सरकार को पुनः यह विश्वास दिलाना था कि भारत उसकी सम्प्रभुता तथा अखण्डता के प्रति पहले की भॉंति ही प्रतिबद्ध है। जसवन्त सिंह ने कहा कि हम तमिल समस्या के शान्तिपूर्ण समाधान के पक्षधर हैं।

22 फरवरी, 2001 को श्रीलंका की राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमारतुंगे चार दिवसीय भारत यात्रा पर आयी। द्विपक्षीय सम्बन्धों को मजबूत बनाने की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण यात्रा थी जिसमें दोनों राष्ट्रों ने परस्पर सांस्कृतिक तथा आर्थिक सहयोग बढ़ाने पर जोर दिया। "भारत और श्रीलंका के मध्य मुक्त व्यापार समझौते के कार्यान्वयन पर सन्तोष व्यक्त किया गया तथा दोनों के मध्य मछुआरों की समस्या

पर भी चर्चा हुई।"[60] प्रधानमंत्री वाजपेयी ने श्रीमती कुमारतुंगा को गुजरात में भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए धन्यवाद दिया तथा दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) की स्थायी समिति की आगामी बैठक मई माह में करने का निर्णय लिया गया। वाजपेयी ने श्रीलंका की एकता और अखण्डता के प्रति अपनी वचनबद्धता ठुकराते हुए कहा कि वार्ता के माध्यम से ही इस समस्या का कोई स्थायी समाधान निकाला जा सकता है।

लिट्टे ने शान्ति स्थापना के प्रति गम्भीरता दिखाते हुये एक महीने के लिये एक तरफा संघर्ष की घोषणा कर दी, जो कि 24 दिसम्बर, 2001 से प्रभावी होगी तथा 24 जनवरी, 2002 तक रहेगी। लिट्टे ने यह भी कहा कि यदि श्रीलंका सरकार सकारात्मक रूख अपनाते हुए लिट्टे की फौजों के खिलाफ लड़ाई रोक देती है और आपसी विश्वास कायम करने के लिए नार्वे के प्रस्तावों पर अमल करती है, तो संघर्ष विराम की अवधि बढ़ायी जा सकती है। भारत ने संघर्ष विराम का स्वागत करते हुए यह आशा व्यक्त की कि इससे शान्ति की प्रक्रिया और आगे बढेगी। "24 दिसम्बर, 2001 को भारत की यात्रा पर आये श्रीलंका के प्रधानमंत्री रानिल विक्रम सिंघे ने कहा कि हमने अपने देश में शान्ति प्रयासों के लिए भारत सरकार से समर्थन मांगा है।"[61] दोनों पक्षों द्वारा जारी संयुक्त बयान में भी इस आशय की घोषणा की गयी कि नई दिल्ली शान्ति स्थापना के लिये किये जा रहे श्रीलंका सरकार के प्रयासों का पूरा समर्थन करती है।

"नार्वे के प्रयासों से एक बार पुनः श्रीलंका में शान्ति स्थापना के प्रयास जोरो पर थे। भारत ने भी श्रीलंका सरकार को शान्ति वार्ताओं के प्रति अपना पूर्ण समर्थन देने का आश्वासन दिया। इस बात का लाभ उठाकर लिट्टे ने भी भारत सरकार से वार्ता में सहयोग करने तथा अपनी दो बाते मनवाने के लिये भारत के समक्ष प्रस्ताव रखा सुरक्षा चिन्ताओं तथा सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए अपनी प्रथम मांग में लिट्टे ने शान्ति वार्ताओं को भारत में आयोजित करने का आग्रह किया।"[62] यह आयोजन स्थल दक्षिण भारत का कोई भी शहर चेन्नई, बंगलौर अथवा तिरूवन्तपुरम् हो सकता था। "अपनी दूसरी मांग में लिट्टे ने अनुरोध किया कि वार्ता के दौरान उनके राजनीतिक सलाहकार एण्टन बालासिंहम को भारत में रहने की अनुमति प्रदान की जाए, जिससे लिट्टे प्रमुख प्रभाकरण से उनके विचार-विमर्श की प्रक्रिया सरल हो जाय, किन्तु भारत सरकार ने इन दोनों ही मांगों पर कोई विशेष ध्यान न दिया। इतना ही नहीं भारत में विभिन्न क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय दलों ने भी इन मांगों का कड़ा विरोध किया।"[63]

एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम में 10 अप्रैल, 2002 को लिट्टे प्रमुख प्रभाकरण ने इस एक प्रेस कान्फ्रेंस का आयोजन किया, जिसमें उन्होनें भारत के साथ पुराने रिश्ते स्थापित करने की इच्छा जताते हुए लिट्टे पर लगे 11 साल पुराने प्रतिबन्ध को समाप्त करने का आग्रह किया। 12 वर्ष बाद प्रभाकरण की यह पहली प्रेस कांफ्रेस थी। उन्होनें भारत से श्रीलंका के साथ शान्ति वार्ता में मध्यस्थता करने का अनुरोध किया। प्रभाकरण ने एक बार पुनः कहा कि वह भारत के साथ निकट के सम्बन्ध बनाए रखने के प्रति इच्छुक है। उन्होनें राजीव गांधी की हत्या को त्रासदी बताया और इसमें शामिल होने या न होने के प्रश्न को टालते हुए कहा कि अब इस पर वह कोई टिप्पणी नहीं करना चाहते।

प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी ने लिट्टे पर लगा प्रतिबन्ध हटाने की मांग (प्रभाकरण की) को सिरे से नकार दिया तथा स्पष्ट कर दिया कि भारत लिट्टे तथा श्रीलंका सरकार के बीच प्रस्तावित वार्ता में कोई भूमिका नहीं निभाएगा लेकिन सरकार लिट्टे के प्रवक्ता एण्टन बालासिंहम को चिकित्सा सुविधाएं जारी रखने की मांग पर मानवीय आधार पर विचार कर सकती है।

काफी समय पश्चात 10 अप्रैल, 2002 को प्रभाकरण अपने संवाददाता सम्मेलन के माध्यम से दुनिया के समक्ष उपस्थित हुआ, तब एक बार फिर राजीव गांधी हत्याकाण्ड की याद तरोताजा हो गई। कांग्रेस पार्टी तथा अन्नाद्रमुक ने तत्काल ही सरकार से प्रभाकरण के प्रत्यर्पण की मांग कर डाली। "30 नवम्बर, 2000 को गृहमंत्री आडवाणी ने राज्य सभा को बताया था कि भारत सरकार ने श्रीलंका से प्रभाकरण के प्रत्यर्पण की मांग की है।"[64] 31 जनवरी, 1992 को टाडा के तहत जब प्रभाकरण के खिलाफ वारंट जारी किया था तभी से वह अदालत द्वारा फरार अपराधी घोषित है। 3 जुलाई, 1995 को कोलम्बों ने पहली बार स्वीकार किया कि भारत सरकार द्वारा प्रभाकरण के प्रत्यर्पण की मांग की गयी है। लेकिन समस्या यह है कि भारत-श्रीलंका के बीच कोई औपचारिक प्रत्यर्पण संधि नहीं है। सिर्फ 1977 के प्रत्यर्पण कानून के संख्या 8 के तहत एक व्यवस्था है जो कामनवेल्थ देशों पर लागू है। प्रभाकरण को भारत प्रत्यर्पण द्वारा लाना एक पेचीदा कार्य है।

8 जून, 2002 को श्रीलंका के प्रधानमंत्री रानिल विक्रम सिंघे तीन दिवसीय भारत यात्रा पर आये। हाल ही में श्रीलंका सरकार ने त्रिनकोमल्ली आयल टैंक को भारतीय तेल निगम को लीस पर देने का निर्णय किया। इस सम्बन्ध में विक्रमसिंघे ने यह स्पष्ट किया कि वह तेल वितरण के क्षेत्र में

एकाधिकार को समाप्त करना चाहते हैं तथा इससे तेल कीमतों के दबावों में श्रीलंकाई रुपये की कीमत में होने वाले उतार-चढ़ाव के झंझट से भी उन्हें मुक्ति मिलेगी। इसके साथ ही भारत के साथ मजबूत आर्थिक सम्बन्धों की दृष्टि से भी ऐसा करना उचित था।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने भी प्रधानमंत्री विक्रमसिंघे को आश्वस्त किया कि ''वह शान्ति वार्ता को अपना पूर्ण समर्थन प्रदान करते हैं। इस सम्बन्ध में विदेशमंत्री जसवंत सिंह ने कहा कि भारत ने शान्ति प्रक्रिया को हमेशा से प्रोत्साहित किया है और वह न केवल श्रीलंका सरकार के साथ बल्कि नार्वे की सरकार के साथ भी बराबर सम्पर्क में है।''[65] इसके साथ ही भारत ने यह स्पष्ट किया कि राजीव गॉध ी हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में वह लिट्टे प्रमुख प्रभाकरण के प्रत्यर्पण की मांग पर अभी भी कायम है तथा यह आशा करता है कि श्रीलंका सरकार द्वारा उसकी यह मांग अवश्य पूरी की जाएगी।

इधर एक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाक्रम में प्रतिबन्धित आतंकी संगठन लिट्टे का खुला समर्थन करने के आरोप में एम०डी०एम०के० नेता वाइकों को तमिलनाडु की सरकार (जयललिता) ने 11 जुलाई, 2002 को पोटा के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया। वहीं गिरफ्तारी से पूर्व वाइको ने लिट्टे के पक्ष में बयान देते हुए कहा कि लिट्टे को शामिल किये बिना इस समस्या का हल सम्भव नहीं है। उन्होनें कहा कि जिस प्रकार फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन की भागीदारी के बिना फिलिस्तीन की समस्या नहीं सुलझ सकती, उत्तरी आयरलैण्ड की समस्या का समाधान छापा मारों को शामिल किये बिना सम्भव नहीं, उसी तरह श्रीलंका में तमिलों की समस्या का हल भी लिट्टे से बातचीत के बिना नहीं हो सकती। यद्यपि यह उचित है कि एम०डी०एम०के० के नेताओं द्वारा श्रीलंका के उग्रवादी संगठन लिट्टे की तरफदारी करना सही नहीं है और किसी को भी भारत में प्रतिबन्धित इस उग्रवादी संगठन का समर्थन नहीं करना चाहिए। लेकिन यदि कोई राजनीतिक दल नैतिक रूप से तमिल चीतों को अपना समर्थन देने की चेष्टा करता है तो उसका यह अर्थ भी नहीं हो सकता कि उस दल को आतंकवादी गतिविधियों में लिप्त समझा जाए और उसके खिलाफ पोटा के तहत कार्यवाही की जाय।

भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के अन्तर्गत प्रदान की जा रही सहायता योजना के अन्तर्गत श्रीलंका को 51 मिलियन डॉलर की आर्थिक सहायता रियायती ब्याज दर पर देना स्वीकार किया। ''अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ मजबूत आर्थिक सम्बन्धों की स्थापना की नीति का अनुसरण करते हुए भारत के

विदेशमन्त्री यशवन्त सिन्हा 11-12 जुलाई, 2002 को दो दिवसीय श्रीलंका यात्रा पर गये।''[66] दोनों राष्ट्रों के मध्य व्यापारिक सम्बन्धों को मजबूत बनाना तथा व्यापार के नये क्षेत्रों का निर्धारण करना इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य था। एक महत्वपूर्ण घोषणा में कोलम्बो में खुलने जा रहे भारतीय कैन्सर सेण्टर की स्थापना में भारत ने 7.5 मिलियन डॉलर का योगदान करने की घोषणा की। प्रभाकरण के प्रत्यर्पण पर भारत अपनी बात पर कायम रहा।

''एक राजनीतिक घटनाक्रम में रानिल विक्रमसिंघे सरकार व लिट्टे के प्रतिनिधियों के बीच थाइलैण्ड में 16-18 सितम्बर, 2002 को होने वाली महत्वपूर्ण शान्ति वार्ता के दौरान लिट्टे ने यह कहकर सभी को हैरत में डाल दिया कि उसका संघर्ष पृथक तमिल ईलम राज्य के लिए नहीं बल्कि क्षेत्रीय स्वायत्ता एवं स्वशासन के लिए है।''[67] इन मांगों के पूरा न होने पर स्वतन्त्र ईलम अन्तिम ध्येय होगा। बैंकांक से 160 किमी0 दूर सत्ताहिप नौ सैनिक ठिकाने पर सम्पन्न यह वार्ता नार्वे की सरकार द्वारा कई महीनों से की जा रही मध्यस्थता का परिणाम थी। लिट्टे और श्रीलंका की सरकार के बीच हुए वार्तालाप में लिट्टे के मुख्य वार्ताकार बालासिंहम ने स्वीकार किया कि भारत दोनों पक्षों के बीच वार्ता को पूरा समर्थन दे रहा है तथा इसके स्थायी समाधान पर सर्वप्रथम स्वागत करने वाला देश भारत ही होगा।

31 अक्टूबर से 2 नवम्बर, 2002 को होने वाली दूसरे दौर की वार्ता में लिट्टे ने कहा कि उसने अतंरिम प्रशासन की अपनी मांग त्याग दी है और वह राजनीति की मुख्य धारा में शामिल होना चाहता है तथा उत्तर एवं पूर्व के अपने गढ़ों में अन्य राजनीतिक दलों की गतिविधियां चलाने की इजाजत देने के लिए भी तैयार है। यह सकारात्मक दिशा में उठाया गया कदम था जिससे भविष्य में शीघ्र शान्ति स्थापित होने की उम्मीदें और भी प्रबल हो जाती है।

इधर एक महत्वपूर्ण परिवर्तन उस वक्त देखने को मिला जब 2-5 दिसम्बर, 2003 को सम्पन्न तीसरे दौर की शान्ति वार्ता में श्रीलंका सरकार तथा लिट्टे सरकार के संघीय स्वरूप को अपनाने के लिये सहमत हो गये। इसके साथ ही तमिल उग्रवादियों की लम्बे समय से की जा रही क्षेत्रीय स्वायत्तता तथा आत्म निर्णय के अधिकार की मांग को स्वीकार कर लिया गया। वार्ता के दौरान दोनों ही पक्ष इस बात पर सहमत हुये कि एकीकृत श्रीलंका के अन्तर्गत संघीय ढांचे वाली सरकार का निर्माण किया जायेगा अर्थात संविधान में परिवर्तन कर सरकार के संघीय ढांचे को अपनाया जायेगा।

"6 से 9 जनवरी, 2003 को थाईलैण्ड में आयोजित चौथे दौर की वार्ता यद्यपि शान्तिपूर्ण रही, किन्तु श्रीलंका सरकार की लिट्टे से की गयी हथियार डालने की मांग को लिट्टे ने अस्वीकार कर दिया।"[68] बालसिंहम ने कहा कि "इस समय हथियार डालना लिट्टे के लिए आत्मघाती होगा। यही तो हमारे लोगों की मोल-तोल की क्षमता है। हम शक्तिशाली रहकर ही मोल-तोल कर सकते है। उन्होनें स्पष्ट करते हुए कहा कि इसका अर्थ यह नहीं है कि फिर से हिंसा पर उतर आयेंगे। यद्यपि इस वार्ता में मुख्य सैनिक मसलों पर कोई सहमति नहीं बन पायी, लेकिन दोनों ही पक्षों ने सेना द्वारा अधिकृत अत्यधिक सुरक्षा वाले क्षेत्र के बाहर के इलाकों से विस्थापित लोगों के पुनर्वास का काम तेज गति से करने पर सहमति जताई। इस मसले की समीक्षा भारत के अवकाश प्राप्त जनरल सतीश नाम्बियार की रिपोर्ट पर आधारित होगी।

6 से 8 फरवरी, 2003 को बर्लिन में आयोजित पांचवी दौर की शान्ति वार्ता मुख्यरूप से मानवाधिकारों तथा उत्तर पूर्वी प्रान्तों में पुनर्वास सम्बन्धी आवश्यकताओं पर केन्द्रित रही। वार्ता का छठा दौर 18 से 21 मार्च, 2003 को जापान में आयोजित हुआ जिसका मुख्य विषय संघवाद से जुड़ी वित्तीय समस्याओं से थी। इसके अतिरिक्त उत्तरी-पूर्वी प्रान्तों में पुनर्निर्माण तथा मानवाधिकार सम्बन्धी मुद्‌दों पर भी विस्तृत चर्चा हुई। तीन दिवसीय वार्ता मुख्य रूप से राजनीतिक मुद्‌दों तथा शक्तियों के बंटवारे से सम्बन्धित रही।

जहाँ तक भारत-श्रीलंका के द्विपक्षीय सम्बन्धों का प्रश्न है, तो यह वह समय था जब दोनों ही पक्ष सिर्फ राजनीतिक सम्बन्धों तक केन्द्रित न रहकर सहयोग के अन्य नये क्षेत्रों में भी आगे बढ़ रहे थे। 27 फरवरी, 2003 को श्रीलंका के प्रधानमंत्री रानिल विक्रम सिंघे तीन दिवसीय भारत यात्रा पर आये। दोनों पक्षों ने सूचना प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित समझौते पर अपने हस्ताक्षर किये। इस अवसर पर विक्रमसिंघे ने प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी तथा विपक्ष की नेता श्रीमती सोनिया गाँधी से मुलाकात कर श्रीलंका तथा लिट्टे के मध्य चल रही शान्ति वार्ता में अब तक हुई प्रगति से उन्हें अवगत कराया।

21 अप्रैल, 2003 को एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम के अन्तर्गत श्रीलंका में चल रही शान्ति प्रक्रिया को उस समय गहरा आघात लगा जब लिट्टे द्वारा एक निश्चित समय के लिए शान्ति वार्ता के एक तरफा निलम्बन की घोषणा की गई। लिट्टे ने इसके साथ ही यह घोषणा की कि वह जून माह में जापान में

आयोजित होने वाले अनुदान सम्मेलन में भाग नहीं लेगा। इस सम्बन्ध में जहाँ राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमारतुंगे ने लिट्टे के तर्क को कमजोर बताते हुए उन्हें पुनः वार्ता की मेज पर आने के लिए कहा। वहीं विक्रमसिंघे सरकार ने भी इस घटना को शान्ति प्रक्रिया के लिए कोई विशेष हानिकारक नहीं माना।''[69] वार्ता के निलम्बन का कारण बताते हुए लिट्टे ने कहा कि श्रीलंका सरकार पिछले छः दौर की वार्ता तथा इस दौरान किये गये समझौतों के प्रति गम्भीर नहीं रही है।

''भारत की यात्रा पर आये श्रीलंका के प्रधानमंत्री रानिल विक्रमसिंघे ने प्रधानमंत्री वाजपेयी से व्यापक विचार विमर्श कर श्रीलंका में चल रही शान्ति प्रक्रिया की वर्तमान स्थिति से उन्हें अवगत कराया। यद्यपि वार्ता मुख्य रूप से इसी विषय पर केंद्रित रही, तथापि दोनों नेताओं ने प्रस्तावित व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौते 'सेपा' पर भी चर्चा की।''[70]

भारत सरकार ने भी पुनः शान्ति वार्ता को अपना समर्थन प्रदान करते हुए समस्या के शीघ्र समाधान होने की आशा व्यक्त की। लम्बे समय से श्रीलंका में चल रहे आन्तरिक जातीय संघर्ष के कारण भारत ने श्रीलंका को की जाने वाली सैन्य सम्बन्धी आपूर्ति को ठण्डे बस्ते में डाल दिया था। इस वार्ता में दोनों ही प्रधानमन्त्रियों ने रक्षा क्षेत्र में सहयोग पर चर्चा करने में अपनी सहमति व्यक्त की। सहयोग के यह क्षेत्र मुख्य रूप से सैनिकों के प्रशिक्षण, परिवहन सम्बन्धी सैन्य उपकरण तथा अन्य आवश्यक जीवन सम्बन्धी सुरक्षा उपकरणों से सम्बन्धित थे।

''31 अक्टूबर, 2003 को श्रीलंका में तमिल विद्रोहियों ने शान्ति की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ाते हुए मध्यस्थता कर रहे नार्वे को पहली बार सत्ता में भागीदारी का खाका प्रस्तुत किया।''[71] जिसका उद्देश्य दशकों पुराने जातीय संघर्ष को समाप्त करना है। मुख्य विपक्षी दल श्रीलंका-फ्रीडम पार्टी (एस०एल०एफ०पी०) लिट्टे द्वारा प्रस्तुत अन्तरिम प्रशासन से सम्बन्धित प्रस्तावों के पूर्णतः विरुद्ध थी तथा इन्हें असंवैधानिक मान रही थी। श्रीलंका फ्रीडम पार्टी का कहना था कि इन प्रस्तावों को स्वीकार करने का अर्थ होगा लिट्टे को उत्तर पूर्व में अप्रत्यक्ष रूप से सम्प्रभुता प्रदान करना जो कि श्रीलंका की एकता और अखण्डता के लिए घातक होगा।

श्रीलंका फ्रीडम पार्टी का नेतृत्व कर रही राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमारतुंगे ने अपने 14 पृष्ठ लम्बे वक्तव्य में लिट्टे द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के सन्दर्भ में कहा कि यह ''भविष्य में एक पृथक सम्प्रभु राष्ट्र की

स्थापना की दिशा में उठाया गया कदम है जो कि श्रीलंका गणराज्य की सम्प्रभुता को खण्डित करने वाला तथा संविधान का खुला उल्लंघन है।" राष्ट्रपति द्वारा संसद के स्थगन तथा मंत्रियों के अधिकार छीनने के पीछे जहां एक प्रमुख कारण लिट्टे के अन्तरिम प्रशासन से सम्बन्धित प्रस्ताव रहे दूसरी ओर अन्य प्रमुख कारण प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के मध्य चल रहा आपसी संघर्ष था तथा दोनों व्यक्ति अलग-अलग दलों का नेतृत्व कर रहे थे।

5 नवम्बर, 2003 को एक अन्य महत्वपूर्ण निर्णय लेते हुए राष्ट्रपति कुमारतुंगा ने देश में आपातकाल की घोषणा करते हुए सेना को व्यापक अधिकार प्रदान कर दिए। इसके साथ ही उन्होनें राष्ट्र को आश्वस्त करते हुए कहा कि सरकार और तमिल छापामारों के बीच हुआ युद्ध विराम समझौता लागू रहेगा। सम्पूर्ण घटनाक्रम पर अपनी दृष्टि रखते हुए भारत सरकार ने समस्या के शीघ्र समाधान होने की उम्मीद जतायी विदेशमंत्री यशवन्त सिन्हा ने कहा कि इस घटना से भारत-श्रीलंका के द्विपक्षीय सम्बन्धों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि यह अब किसी एक क्षेत्र तक सीमित न रहकर काफी अर्थपूर्ण हो चुके हैं।

"नवीन घटनाक्रम पर अब तक खामोश रहे लिट्टे प्रमुख प्रभाकरण ने 13 नवम्बर, 2003 को चुप्पी तोड़ते हुए कहा कि दक्षिण में उत्पन्न राजनीतिक गतिरोध ने शान्ति वार्ता के प्रति तमिलों के विश्वास को ठेस पहुंचायी है।"[72] अब तक की राजनीतिक घटनाक्रम का सूक्ष्मता से अवलोकन करने के पश्चात श्रीलंका की शान्ति प्रक्रिया में सहायक की भूमिका निभा रहे नार्वे ने 14 नवम्बर, 2003 को श्रीलंका में राजनीतिक स्थिरता का वातावरण पुनः उत्पन्न होने तक, अपनी भूमिका को निलम्बित करने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया। नार्वे के उपविदेश मंत्री विदार हेल्जसिन ने पत्रकारों को सम्बोधित करते हुए कहा कि "अपने प्रयास फिर से शुरू करने के पहले हम इस बात का स्पष्टीकरण चाहते हैं कि सरकार की ओर से शान्ति प्रक्रिया के लिये वास्तविक रूप से कौन जिम्मेदार है। वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों में वार्ता को आगे बढ़ाना सम्भव नहीं है। अतः हम प्रतीक्षा के लिए स्वदेश वापस लौट रहे हैं।

जहाँ तक भारत-श्रीलंका सम्बन्धों का प्रश्न है, यह वह दौर था जब दोनों ही पक्ष परस्पर मजबूत आर्थिक-व्यापारिक सम्बन्धों को स्थापित करने पर जोर दे रहे थे। इसी उद्देश्य से दोनों देश व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौते (Comprehensive Economic Partnership agreement 'CEPA') पर

हस्ताक्षर करने को सहमत हो गये थे। ''उन्नसीवें भारतीय-आर्थिक सम्मेलन में भाग लेने आये श्रीलंका के वाणिज्य मंत्री रवि करुणानायके ने इस सम्बन्ध में कहा कि यह समझौता भारत और श्रीलंका के बीच 1998 में सम्पन्न हुए मुक्त व्यापार समझौते का स्थान लेगा तथा द्विपक्षीय आर्थिक सम्बन्धों को एक नई ऊँचाई प्रदान करेगा।''[73] इसकी मुख्य विशेषता यह होगी कि इसमें आर्थिक सहयोग के कुछ पुराने क्षेत्रों के साथ-साथ 'सेपा' तथा 'निवेश' जैसे उद्योग के नये क्षेत्रों का भी समावेश किया जाएगा। करुणानायके ने कहा कि ''हम अपने भारतीय मित्रों को श्रीलंका में निवेश के लिए आमन्त्रित करते हैं तथा इसके लिए हम वहाँ पर उपयुक्त वातावरण के निर्माण के प्रति प्रतिबद्ध है।

जिस प्रकार टाटा के स्वामित्व वाली विदेश संचार निगम लिमिटेड (वी०एस०एन०एल०) टेलीकॉम क्षेत्र में, भारतीय तेल लिगम (आई०ओ०सी०) पेट्रोलियम क्षेत्र में तथा भारतीय जीवन बीमा निगम (एल०आई०सी०) बीमा क्षेत्र में श्रीलंका में आकर अपनी सेवाएं प्रदान कर रही हैं, उसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी हम भारत से इसी प्रकार की भागीदारी की आशा करते है जो हमारी अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा। ''श्रीलंका के केन्द्रीय बैंक के अनुसार ही भारत को श्रीलंका से किया जाने वाला निर्यात 1998 में जहां 2434 मिलियन रुपया था वहीं 2002 में यह बढ़कर 16,318 मिलियन रुपया का हो गया।''[74] ''इतना ही नहीं श्रीलंका से भारत को निर्यात सम्वर्द्धन के लिए श्रीलंका सरकार द्वारा चेन्नई के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र में स्थायी निर्यात केन्द्र खोलने की प्रस्तावित योजना को 26 फरवरी, 2004 को उद्घाटन कर क्रियान्वित कर दिया गया तथा तमिलनाडु सरकार ने भी इस अवसर पर श्रीलंका सरकार व्यापारं तथा पर्यटन के क्षेत्र में संचालित की जाने वाली गतिविधियों को अपना पूर्ण समर्थन प्रदान करने का आश्वासन दिया।''[75]

वाजपेयी सरकार के कार्यकाल में भारत और श्रीलंका के सम्बन्ध शान्तिपूर्ण रहे। यह वह दौर था जब भारतीय विदेशनीति अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों को राजनीतिक मुद्दों तक सीमित न रखकर व्यापारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा रक्षा जैसे अन्य क्षेत्रों की ओर भी विस्तार दे रही थी। भारत और श्रीलंका सम्बन्ध भी ऐसे में जिस नयी दिशा की ओर बढ़ रहे थे वह था रक्षा क्षेत्र। ''द्विपक्षीय रक्षा समझौते के लिए क्षेत्र को तलाशने के तथा व्यापक विचार-विमर्श की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से श्रीलंका से 4 सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल रक्षा सचिव साइरिल हर्थ की अध्यक्षता में 14 जनवरी, 2004 को भारत आया।''[76]यह यात्रा पूर्व में प्रधानमंत्री वाजेपयी तथा प्रधानमंत्री रानिल विक्रमसिंघे के

मध्य इस दिशा में सम्पन्न हुई वार्ता को आगे बढ़ाने का एक प्रयास था। श्रीलंका में चल रहे आन्तरिक संघर्ष को देखते हुए भारत सरकार ने लम्बे समय से दोनों देशों के मध्य रक्षा क्षेत्र में सहयोग को ठण्डे बस्ते में डाल रखा था। दोनों सरकारों द्वारा किये जा रहे यह प्रयास मुख्यतः कार्मिकों को प्रशिक्षण, जीवनरक्षक उपकरणों की खरीददारी तथा सूचना जैसे क्षेत्रों तक ही सीमित थे।

जहां भारत में चौदहवीं लोकसभा की चुनावों की तैयारियां चल रही थीं, वहीं श्रीलंका में तेरहवी संसदीय चुनाव होने जा रहे थे। 2 अप्रैल को सम्पन्न चुनावों में चन्द्रिका-जे०वी०पी० (जनाविमुक्ति पैरानुमा) गठबन्धन, यूनाइटेड पीपुल्स फ्रीडम एलायन्स (यू०पी०एफ०ए०) ने 225 सदस्यीय संसद में 105 सीटों पर भारी विजय प्राप्त कर सरकार बनाने का मार्ग प्रशस्त किया तथा दूसरी ओर प्रधानमंत्री विक्रमसिंघे की पार्टी यू०एन०पी० को मात्र 82 सीटें ही प्राप्त हो सकीं। "6 अप्रैल, 2004 को राष्ट्रपति कुमारतुंगे पूर्व विपक्ष के नेता महिन्दा राजपक्षे को श्रीलंका का नया प्रधानमंत्री नियुक्त किया।"[77] नवगठित सरकार को अपनी शुभकामनाएं देने के साथ ही भारत सरकार ने पुनः शान्ति वार्ता को आगे बढ़ाए जाने की इच्छा व्यक्त की। श्रीलंका के 18 वे प्रधानमंत्री राजपक्षे ने भी भारत से शान्ति प्रक्रिया में अधिक से अधिक सक्रिय भागीदारी करने का अनुरोध किया।

भारत में सम्पन्न 14वें लोकसभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी सबसे बड़े दल (145) के रूप में उभरकर सामने आयी। भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले गठबन्धन को मात्र 187 सीटे प्राप्त कर भारी हार का सामना करना पड़ा जबकि कांग्रेस तथा उसकी सहयोगी पार्टियों को 220 सीटें प्राप्त हुई। कांग्रेस के नेतृत्व में 12 दलों को गठजोड़ "संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन" (यू०पी०ए०) 17 मई, 2004 को सर्वसम्मति से सोनिया गाँधी को अपना नेता चुना, किन्तु उनके द्वारा प्रधानमंत्री पद अस्वीकार कर दिये जाने के उपरान्त 19 मई, 2004 को प्रख्यात अर्थशास्त्री तथा वरिष्ठ कांग्रेसी नेता डॉ० मनमोहन सिंह को नेता चुना गया। "22 मई, 2004 को डॉ० मनमोहन सिंह ने भारत के चौदहवें प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण किया।"[78]

वाजपेयी के प्रधानमन्त्रित्व काल में दोनों राष्ट्रों के सम्बन्ध काफी सन्तुलित और सौहार्दपूर्ण रहे। आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप और असंलग्नता की वैदेशिक नीति का अनुसरण करते हुए द्विपक्षीय सम्बन्धों को एक नई दिशा और ऊँचाई प्रदान की गई। नई विचारधारा और नई विदेश नीति के साथ

जहां भारत–श्रीलंका सम्बन्धों के इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ होने जा रहा है, वहीं पांच वर्ष से लम्बे समय तक सत्ता में रही एन०डी०ए० सरकार के पतन के साथ ही दोनों राष्ट्रों के सम्बन्धों के एक युग का समापन हो गया। जहाँ तक भारत–श्रीलंका सम्बन्धों का प्रश्न है, तो इस सम्पूर्ण अध्ययन से एक बात सहज ही स्पष्ट होती है, भले ही दोनों राष्ट्रों में सरकारें बदलती रही हों, किन्तु द्विपक्षीय सम्बन्ध सदैव शान्त और स्थिर रहे है न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि अनेक वैश्विक मंचों पर भी दोनों राष्ट्रों ने एक दूसरे को सहयोग प्रदान किया है। चाहे बात 'सार्क' की हो या 'नाम' का विषय चाहे आतंकवाद का हो या सुरक्षा परिषद में भारत की सदस्यता का जहां श्रीलंका प्रत्येक मुद्दे पर अच्छे मित्र की भॉति भारत के साथ खड़ा नजर आया वहीं भारत ने भी हमेशा श्रीलंका की एकता और अखण्डता का समर्थन किया। यही वह सकारात्मक आधार है जिन पर चलकर भविष्य में भी भारत और श्रीलंका के द्विपक्षीय सम्बन्धों को और भी मजबूत बनाया जा सकता है।

4. भारत एवं नेपाल

भारत एवं नेपाल के सम्बन्ध प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। ऐसी अवधारणा है कि त्रेता युग में नेपाल का राजा सुबन्धा सीता जी के स्वयंबर में शामिल होने जनकपुरी आया था। पौराणिक श्रोतों से ज्ञात होता है कि भगवान श्रीकृष्ण वाणासुर का पीछा करते हुए नेपाल गए थे। ''महाभारत के वन पर्व में भीम द्रोपदी के लिए कमल पुष्प की खोज में नेपाल के हिमालय की उपत्यकाओं में घूमे थे।''[79] ''भारत एवं नेपाल इतिहास, भूगोल, रिश्ते, धर्म, विश्वॉस, सांस्कृतिक और भाषाई तौर पर एक दूसरे के साथ रहने को बाध्य हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से काफी छोटा होते हुए भी नेपाल, भारत के लिए काफी महत्वपूर्ण है तथा भारत एवं चीन के बीच मध्यवर्ती देश की भूमिका में होने के कारण इसका सामरिक महत्व भी है।''[80]

जब अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मार्च, 1998 में सरकार बनी तो भारत-नेपाल सम्बन्धों को तेजी से विकसित करने की नीति अपनाई तथा अक्टूबर, 1999 में गठित वाजपेयी के नेतृत्व में एन0डी0ए0 की सरकार में नेपाल के साथ-परस्पर सहयोग और विश्वास की नीति को अपनाया तथा आज भी यही नीति जारी है। मई ,1998 में जब भारत ने 5 परमॉणु परीक्षण किए तो नेपाल ने इस सम्बन्ध में एक सुलझा दृष्टिकोण अपनाया। 5 जनवरी, 1999 को भारत तथा नेपाल ने एक नई पारगमन सन्धि पर हस्ताक्षर किए। यह सन्धि 5 जनवरी, 2006 तक के लिए थी तथा आगे बढ़ाकर इसे 2013 तक करने का प्रस्ताव था, जिसके तहत सीमा शुल्क कानून सरल बनाया गया तथा नेपाली माल के कलकत्ता बन्दरगाह के रास्ते पारगमन की प्रक्रिया को और उदार बनाया गया। इस सन्धि ने 1991 की सन्धि का स्थान लिया।

भारत के विदेशमंत्री जसवन्त सिंह ने नेपाल का चार दिवसीय दौरा किया तथा दोनों देशों ने आपसी सहयोग को विकसित करने के लिए एक महत्वपूर्ण निर्णय लिए। दिसम्बर, 1999 में भारतीय नागरिक हवाई सेवा का एक जहाज आई0सी0-814 जो कि काठमाण्डू से दिल्ली आ रहा था, का अपहरण कर लिया गया। इसके बाद नेपाल जाने वाली अपनी हवाई सेवा भारत ने बन्द कर दिया। फरवरी, 2000 में भारत तथा नेपाल के साझे सीमा कार्यकारी समूह की तीसरी बैठक काठमाण्डू में हुई जिसमें यह स्वीकार किया गया कि कोई भी देश अपने-अपने भू-क्षेत्र का दूसरे के विरूध्द प्रयोग नहीं करने

देगा सीमा क्षेत्रों में होने वाले अपराधों आतंकवादी तथा उग्रवादी गतिविधियों तथा तस्करी को रोकने के लिए दोनों देश सहयोग करेंगे। मई, 2000 में दोनों देशों के प्रधानमन्त्रियों ने हवाई सेवाओं को पुनः चालू करने का समझौता किया तथा जून, 2000 में दोनों देशों के मध्य हवाई सेवा ने फिर से कार्य करना प्रारम्भ किया।''[81]

जुलाई, 2000 में नेपाली प्रधानमंत्री श्री गिरिजा प्रसाद कोइराला ने भारत की यात्रा की तथा प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी से विभिन्न मुद्दों पर विचार-विमर्श किया। भारत-नेपाल सीमा, अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद तथा पार-सीमा आतंकवाद पर वार्तालाप हुआ तथा दोनों देशों की सीमा के सम्बन्ध में स्थापित 1980 के आयोग को यह निर्देश दिया गया कि सन् 2000 के अंत तक सीमा सम्बन्धी कार्य पूर्ण हो जाना चाहिए। भारत-नेपाल सीमा का निर्धारण (1700 किमी०) 1980 में किया गया था, परन्तु कुछ क्षेत्रों के सम्बन्ध में पूर्ण रेखांकन अभी भी किया जाना था।

जनवरी, 2001 में ''नेपाल के विदेश सचिव श्री ए०एस० थापा ने भारत की यात्रा की तथा भारतीय विदेश सचिव ललितमान सिंह के साथ विचार-विमर्श किया। 1950 की शांति एवं मित्रता सन्धि पर व्यापक वार्तालाप हुआ। नवम्बर, 2001 में भारत तथा नेपाल ने सीमा पर अपनी गतिविधियों में अधिक ताल-मेल लाने का निर्णय लिया ताकि नेपाल के माओवादी विद्रोहियों को शस्त्र न पहुंच सके। दोनों देशों ने स्वीकार किया कि माओवादी गतिविधियां इस उपमहाद्वीप तथा दोनों देशों की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर सकती थीं। इस कारण इसकी समाप्ति एक साझा उद्देश्य था। नेपाल में माओवादी विद्रोहियों की गतिविधियां भारत के आंध्र प्रदेश में पी०डब्लू०जी० की गतिविधियों को प्रोत्साहित कर रही थी। इस कारण भारत का नेपाल के साथ सहयोग करना एक आवश्यकता थी। वाजपेयी ने नेपाल को यह विश्वास दिलाया कि भारत की धरती को किसी भी रूप में नेपाल के विरुद्ध प्रयोग नहीं होने दिया जाएगा।

भारत और नेपाल के नेताओं ने जनवरी, 2002 में सार्क सम्मेलन के दौरान काठमाण्डू में आपसी सम्बन्धों की समीक्षा की तथा आपसी सम्बन्धों को अधिक व्यापक और गतिशील बनाने के निर्णय को दोहराया। भारत-नेपाल सम्बन्धों के सभी पहलुओं पर मार्च, 2002 में दोनों क्षेत्रों के नेताओं के मध्य व्यापक विचार विमर्श हुआ। जब नेपाल के प्रधानमंत्री शेर सिंह ने 6 दिवसीय भारत यात्रा की तो दोनों

देशों के प्रधानमंत्रियों ने यह निश्चय प्रकट किया कि आतंकवाद की बुराई के खिलाफ दृढ़ कार्यवाही की जाएगी तथा राजनीतिक और विचारात्मक उद्देश्यों के लिए प्रयोग की जाने वाली हिंसा का विरोध किया जाएगा और 1953 से विद्यमान प्रत्यर्पण सन्धि को समयानुकूल बनाने पर सहमति बनाई।

मई, 2002 में भारतीय सेना प्रमुख जनरल एस0 पद्मनाभन ने नेपाल की यात्रा की तथा नेपाल के राजा ने उन्हें एक उपाधि से विभूषित किया। मध्य 2002 में नेपाल नरेश ज्ञानेन्द्र ने भारत की यात्रा की तथा भारतीय राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री से उच्च स्तरीय वार्ता की। भारत ने नेपाल को यह विश्वास दिलाया कि वह माओंवादियों के विरूद्ध नेपाली प्रशासन द्वारा चलाई जा रही कार्यवाही में सहयोग करेगा। नेपाल के सैनिकों और अधिकारियों को आतंकवाद विरोधी प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान करेगा। द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ाने के लिए सीमा पर नई व्यापार चौकियां स्थापित करने पर सहमति बनाई गई। दिसम्बर, 2002 में भारत-नेपाल ने ऊर्जा-विनिमय प्रोग्राम को अन्तिम स्वरूप प्रदान किया।

मार्च, 2003 में भारत तथा नेपाल ने आपसी प्रत्यर्पण संधि पर विचार-विमर्श किया तथा इसका उद्देश्य था विद्यमान संधि को अधिक व्यापक बनाकर आतंकवादी अपराधों और वित्तीय अपराधों को रोकने की एक दृढ़ व्यवस्था की स्थापना करना। अगस्त, 2003 में भारत ने नेपाल के ध्यान में यह तथ्य प्रकट किया कि काठमाण्डू में पाकिस्तान के दूतावास में कर्मचारियों की संख्या अधिक थी तथा नेपाल की धरती पर कुछ भारत विरोधी तत्व सक्रिय थे जिन पर अंकुश लगाने की आवश्यकता थी। 31 जनवरी, 2004 को भारत और नेपाल ने अपने द्विपक्षीय सहयोग के आर्थिक क्षेत्र को उन्नत बनाते हुए भारत और नेपाल के मध्य रसोई गैस का एक संयत्र स्थापित करने पर सहमति बनी। ''23 फरवरी, 2004 को भारत और नेपाल के विदेश सचिवों की उपस्थिति में काठमाण्डू में दोनों शहरों के राजदूतों ने दोनों देशों की राजधानियों को जोड़ने के साथ ही दोनों देशों के प्रमुख शहरों को जोड़ने वाले 14 प्रमुख मार्गो पर बस सेवा प्रारम्भ करने का समझौता किया।''[82]

भारत-नेपाल सम्बन्ध 2003 में नियमित रूप में विकसित होते रहे, परन्तु नेपाल में विद्यमान माओवादी आतंकवादियों तथा विद्रोहियों की गतिविधियों के कारण द्विपक्षीय सम्बन्धों का वातावरण कुछ बोझिल ही बना रहा। भारत-नेपाल आर्थिक-व्यापारिक सम्बन्ध विकसित होते रहे तथा दोनों देशों ने आपसी व्यापार को बढ़ाने के लिए प्रयास जारी रखे।

भारत और नेपाल के विकास उद्देश्य एक-दूसरे के पूरक हैं। भारतीय विकास नेपाल के विकास के लिए एक सकारात्मक तत्व है तथा नेपाल के आधारभूत ढांचे के विकास में भारतीय सहयोग की आवश्यकता को नेपाल स्वीकार करता है। नेपाल के संसाधनों और ऊर्जा उत्पादन क्षमताओं का विकास भारत तथा नेपाल के आर्थिक हित में है। महाकाली सन्धि के बाद द्विपक्षीय सम्बन्धों के विकास की प्रक्रिया में निरन्तर प्रगति हुई। भारत अपनी उत्तरी सीमा पर स्थित नेपाल की सामरिक स्थिति के महत्व को समझता है। भारत अपने इस पड़ोसी के साथ सम्बन्धों को दृढ़ता से विकसित करना आवयश्क मानता है। चीन की उपस्थिति और भूमिका भारत को नेपाल के साथ मित्रता तथा सहयोग बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है। नेपाल भी भारत की स्थिति तथा विकास स्तर के महत्व को स्वीकार करता है।

भारत के साथ सम्बन्धों का विकास करना नेपाल की भौगोलिक, व्यापारिक तथा सामाजिक आवश्यकता है। ये तत्व भारत-नेपाल सम्बन्धों में सकारात्मक आधार, उचित दिशा और आवश्यक व्यापकता प्रदान कर रहे हैं, परन्तु नेपाल में बढ़ती माओवादी तथा उग्रवादियों की हिंसक कार्यवाहियां भारत-नेपाल सम्बन्धों के विकास की प्रक्रिया को शिथिल बना रही हैं। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने नेपाल की प्रभुसत्ता, भू-क्षेत्रीय अखण्डता तथा प्रभुसत्तात्मक समानता का पूर्ण समर्थन किया तथा नेपाल की राजनीतिक गतिविधियों को उसका आंतरिक मुद्दा स्वीकार किया। नेपाल में जारी माओवादी हिंसा की समाप्ति की भारत कामना करता है तथा इस संकट की घड़ी में नेपाल की सहायता करने के लिए बचनबद्ध है, परन्तु भारत किसी भी प्रकार से इस वातावरण में प्रत्यक्ष रूप में शामिल नहीं होना चाहता।

प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा नेपाल के साथ सम्बन्धों पर विशेष प्राथमिकता प्रदान की गई लेकिन कुछ मुद्दों के कारण सम्बन्धों में पारदर्शिता तथा खुलापन का अभाव सा महसूस हुआ जैसे दोनों देशों के सुरक्षा सम्बन्धी हित समान होने पर भी उनके सम्बन्धों में अत्यधिक उतार चढ़ाव रहा है। अनेक बार भारतीय हितों की उपेक्षा करते हुए नेपाल ने साम्यवादी चीन के साथ समझौते किए। नेपाल में चीन की गतिविधियां भारत-विरोधी और ध्वंसात्मक रही हैं। नेपाल द्वारा काठमाण्डू-ल्हासा सड़क मार्ग बनाने के सम्बन्ध में चीन के साथ समझौता भारत विरोधी कदम था। एवरेस्ट पर्वत के सम्बन्ध में नेपाल-चीन में प्रारम्भिक समझौता भारत के प्रति विश्वासघात था।

नेपाल का आग्रह कि नेपाल को शान्ति क्षेत्र घोषित किया जाये जबकि भारत का दृष्टिकोण यह

है कि केवल नेपाल ही क्यों सम्पूर्ण उपमहाद्वीप को 'शान्ति क्षेत्र' घोषित किया जाये। चीन, पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश ने नेपाल के दृष्टिकोण का समर्थन किया है। 1983 में राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने भी नेपाल को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की मांग का समर्थन किया था। आलोचक इसे भारत विरोधी प्रस्ताव मानते हैं। उनके अनुसार यह अप्रत्यक्ष रूप से भारत पर एक दोषारोपण है कि नेपाल के लिए भारत एक खतरा है। नेपाल को शान्ति क्षेत्र घोषित कराने के पीछे नेपाल का प्रधान उद्देश्य भारत के प्रभाव और विशिष्ट स्थिति को नकारना है जिसे वह अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व की खोज में बाधक मानता है। यह उसकी भारत और चीन के मध्य ऐतिहासिक सन्तुलनकारी भूमिका का एक रूप भी हो सकता है, नेपाल इस प्रस्ताव को भारत से अधिकाधिक आर्थिक सहायता पाने के लिए एक सौदे बाजी के आधार के रूप में भी उपयोग करना चाहता है।

नेपाल-भारत के सन्दर्भ में जूनियर भागीदार के मनोविज्ञान से ग्रसित है। नेपाल, भारत और चीन के साथ समदूरी सिद्धांत के आधार पर सम्बन्ध विकसित करना चाहता है जिससे चीन को भी सन्तुष्ट किया जा सके किन्तु भारत समदूरी सिद्धांत को नहीं मानता, वह तो नेपाल के साथ विशिष्ट सम्बन्ध चाहता है, उसका कहना है कि नेपाल एक आन्तरिक देश है अतः उसके साथ भारत के विशिष्ट सम्बन्ध रहना स्वाभाविक है। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने अपने पड़ोसियों के साथ मित्रता को सुदृढ़ बनाने की नीति के तहत नेपाल के साथ भी सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने की पुरजोर कोशिश की। नेपाल के साथ व्यापारिक रिश्तों को सुधारा और भरपूर आर्थिक सहायता प्रदान कर उसके विकास को बढ़ाने में आन्तरिक रुचि ली।

वाजपेयी की सत्ता समाप्त होने के बाद प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने भी उसी नीति को आगे बढ़ाया लेकिन वर्तमान में माओवादियों के नेपाल में बढ़ते प्रभाव के कारण कोई स्पष्ट नीति नहीं बन पा रही है। भारत एवं नेपाल के बीच सम्बन्ध प्रधानमंत्री वाजपेयी के शासनकाल में कुछ एक घटनाओं को छोड़ दिया जाये तो सामान्य ही रहे तथा प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा मित्रता को घनिष्ठ बनाने का भरसक प्रयास किया गया।

(5) भारत एवं भूटान

स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय सरकार ने 8 अगस्त, 1949 को भूटान के साथ एक नई संधि की। संधि के अन्तर्गत भूटान सरकार ने अपने विदेशी मामलों में भारत की सलाह के अनुसार चलने की स्वीकृति दी तथा भारत की सरकार ने यह निश्चय किया कि वह भूटान के आतंरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी। भूटान के प्रति सद्‌भावना के प्रतीक के रूप में भारत ने देवनागरी नाम के स्थान में से 32 वर्ग मील का वह क्षेत्र भूटान को वापस देने का निर्णय लिया जो 1865 में भारत में मिला लिया गया था। भूटान एक सम्प्रभुता सम्पन्न देश है। भारत ने भूटान को पूर्णयता यह आश्वासन दिया है कि वह भूटान की प्रभुसत्ता तथा आन्तरिक स्वायत्तता का पूरी तरह सम्मान करता है।

1971 में भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता के लिए भूटान का नाम प्रयोजित किया तथा इसने इन सभी धारणाओं को झुठला दिया जिसके आधार पर यह सोचा जाता था कि भारत भूटान पर आँख रखता है। इस घटना के बाद से भारत तथा भूटान के सम्बन्ध अधिक गहन और प्रौढ़ होते गए। ''भूटान भारत के साथ अपने सम्बन्धों से पूर्णतया संतुष्ट है। इसने दूसरे देशों के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना करने से परहेज किया है। यह विशेषतया 'चीन की टोह' से दूर ही रहा है।''[83]

मार्च, 1998 से सत्तारूढ़ प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने भारत-भूटान सम्बन्धों को और अधिक दृढ़ बना दिया। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने भूटान के सम्बन्ध में स्पष्ट किया कि भूटान एक राजतंत्र है तथा स्वाभाविक रूप में यह लोकतन्त्र की स्थापना की मांग को अच्छा नहीं मानता। भूटान में भी लोकतंत्र की स्थापना की मांग विद्यमान है। भारत एक लोकतंत्रीय राज्य है। नेपाल भी संवैधानिक राजतंत्र के साथ लोकतंत्रीय देश बन चुका है। भूटान के राजतंत्र को भी यह आशंका है कि इस देश में भी लोकतंत्रीय आन्दोलन जोर पकड़ सकता है।

अगस्त, 1998 में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने यह आश्वासन दिया कि भारत भूटान के हितों को ध्यान में रखते हुए सदैव विभिन्न सहायताएं देता रहेगा। भूटान में पन बिजली संभावनाओं तथा इसके कृषि औद्योगिक आधार भूत ढांचे को विकसित करके इस हिमालई क्षेत्र की समृद्धि को विश्वसनीय बनाया जा सकता है। भूटान ऐसा चाहता है तथा भारत इस सम्बन्ध में भूटान की सहायता करने तथा इसे

सहयोग देने के लिए वचनबद्ध है। दोनों देशों के सम्बन्धों को अधिक विकसित करने के लिए दिसम्बर, 1999 में 'भारत-भूटान' मित्रता समाज' का गठन किया।

भारत तथा भूटान अपनी मित्रता, सहयोग तथा सम्बन्धों को और भी अधिक विकसित तथा दृढ़ बनाने के संकल्प के साथ लगातार कार्य कर रहे हैं। ऐसा करना दोनों देशों के राष्ट्रीय हितों तथा क्षेत्रीय भौगोलिक-राजनैतिक वास्तविकताओं के कारण आवश्यक भी है। पिछले कुछ समय से चीन भूटान पर अपना प्रभाव फैलाने का इच्छुक बना हुआ है और भूटान नस्ली, घुसपैठ, नेपाल के नागरिकों की भूटान में घुसपैठ की समस्या का सामना कर रहा है। भारतीय प्रांत सिक्किम में विदेशी नागरिकों की उपस्थिति की समस्या भी एक सन्देह का मुद्दा बना हुआ है। भारत तथा भूटान दोनों देश इन समस्याओं के प्रति सजग हैं तथा दोनों मिलकर इसका समाधान ढूंढ़ने के लिए अच्छे पड़ोसियों की तरह सहयोग भी कर रहे हैं। पंचशील के सिद्धॉत में दोनों का विश्वास है तथा दोनों इसी आधार पर सम्बन्धों को संचालित कर रहे हैं।

मई, 1999 में भूटान नरेश ने भारत की यात्रा की तथा दोनों देशों के बीच सम्बन्धों को और दृढ़ विस्तृत करने का प्रयास किया गया। आने वाले समय में सम्बन्धों में सुदृढ़ता के लिए अतीत के इतिहास को आधार बनाया जाना चाहिए। टी०एन०कौल ने कहा- ''हमने नेपाल में जो गलती की थी उससे अब बचना चाहिए तथा यह नहीं समझना चाहिए कि छोटे देश हमेशा उसके मित्र बने रहेंगे तथा भारत को बड़े भाई जैसा व्यवहार करना चाहिए। ऐसे देश छोटी-छोटी बातों को महसूस कर लेते है, वे बड़े गर्वीले है, संवेदनशील है तथा उन्हें जल्दी ही दुख पहुंच जाता है। हमें उनकी संवेदनाओं का आदर करना चाहिए तथा उनका विश्वास जीतना चाहिए। उन पर कई प्रकार के दबाव होते हैं, कई प्रकार के आंतरिक तनाव होते हैं जिन्हें वे भारत जैसे अच्छे पड़ोसी की अनुभूति तथा सम्मान के अभाव में सहन नहीं कर सकते।''[84]

भूटान नरेश जिग्में सिंघे वांगचुक ने 14 सितम्बर, 2003 से पांच दिवसीय भारत यात्रा की। यह यात्रा दोनों देशों के संबंधों को और अधिक मजबूती प्रदान कराने में सहायक सिद्ध हुई। भारत और भूटान सीमा पर उग्रवादी एवं आतंकवादी गतिविधियाँ दोनों ही देशों के लिए चिंता का विषय रहा है। वांगचुक ने भारत को विश्वास दिलाया कि उनकी सरकार भूटान में आतंकवादियों का नाश करने में कोई कसर

नहीं छोड़ेगी और भूटान की जमीन से दूसरे राष्ट्रों के खिलाफ कोई भी गतिविधि संचालित नहीं होने देगा।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने भूटान की प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर संतोष व्यक्त किया। भूटान में प्रतिनिधि प्रजातंत्र की जड़े मजबूत होती जा रही हैं। एक लिखित संविधान का मसौदा तैयार किया जा रहा है। प्रधानमंत्री वाजपेयी के प्रयासों का फल है कि 19 सितम्बर, 2003 को भारत और भूटान ने एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया जिसमें असम की उल्फा तथा बोड़ो उग्रवादियों जो कि भूटान की धरती में शरण लिए थे, की समस्या का समाधान करने का निर्णय दर्ज किया गया। इस मौके पर वाजपेयी द्वारा भूटान की नौंवी पंचवर्षीय योजना के लिए 1614 करोड़ रुपए का आर्थिक अनुदान देने की घोषणा की गयी।

दिसम्बर, 2003 में भूटान की साही सेना ने ULFA, NDFB तथा KLOC के भूटान की धरती पर विद्यमान प्रशिक्षण शिविरों के विरूद्ध एक सैनिक अभियान आरम्भ किया। भूटान की कार्यवाही की प्रधानमंत्री वाजपेयी ने प्रशंसा की तथा भारतीय सेना ने इस अभियान के समय भूटान की शाही सेना को सूचना और सहायता दी तथा सीमा की दृढ़ घेराबन्दी के द्वारा उग्रवादियों के भागने के प्रयासों को असफल बनाने में सहयोग दिया। भूटान की इस साहसिक कार्यवाही ने निश्चय ही भारत-भूटान सम्बन्धों को काफी अधिक उत्साह और शक्ति प्रदान की।

प्रधानमंत्री वाजपेयी के नेतृत्व में भारत के द्वारा भूटान को आर्थिक सहायता प्रदान की गई तथा संरचनात्मक विकास हेतु समय-समय पर हर प्रकार का सहयोग प्रदान किया गया ताकि भूटान को लगे कि भारत की स्थिति दक्षिण एशिया में भूटान के बड़े भाई की है। नेपाल द्वारा लोकतन्त्रात्मक स्वरूप को अपनाने के बाद भूटान में भी लोकतन्त्रीय जड़ों को मजबूत करने का प्रयास किया गया तथा 31 दिसम्बर, 2007 को ऊपरी सदन के लिए मतदान भी हुआ जो भारत के लिए सकारात्मक कदम है क्योंकि दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्रवादी भारत चाहता है कि उसके सभी पड़ोसी देशों में लोकतन्त्र का मजबूती के साथ विकास हो।

भारत के पड़ोसी देशों में भूटान ही एक ऐसा देश बचा रह गया था, जो लोकतंत्र की बयार से वंचित था। वह बात अलग है कि अब तक जिन देशों में लोकतंत्र आया है, आधा-अधूरा ही आया है। क्या पाकिस्तान क्या बांग्लादेश, क्या श्रीलंका क्या नेपाल, सब तरफ अराजकता का आलम है। भूटान

में वह देर से आ रहा है, लेकिन संकेत बताते हैं कि दुरुस्त आ रहा है। वहां लोकतंत्र के लिए अपेक्षाकृत कम खून-खराबा हुआ। वहां के नरेश जिग्मे सिंग्ये वांगचूक ने हवाओं के रुख को समय रहते भांप लिया और शासन में जनता की हिस्सेदारी के लिए दरवाजे खोल दिए। हालांकि इस काम में सौ साल लग गए।

पूरे दक्षिण एशिया के लिए यह सुकूनदेह एहसास है कि आज भूटान में 47 संसदीय सीटों के लिए चुनाव शांतिपूर्वक सम्पन्न हुए हैं। हालांकि राजतंत्र के अवशेषों की तरह नरेश की उपस्थिति फिर भी बनी रहेगी, लेकिन चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा हुकूमत चलाना एक नया एहसास होगा। इस पूरी प्रक्रिया का सबसे अच्छा पहलू यह है कि भूटान नरेश ने स्वयं यह घोषणा की कि अब देश को राजतंत्रीय व्यवस्था के तहत नहीं रखा जा सकता। वैसे वहां भी पिछले दस वर्षो से लोकतंत्र के लिए आन्दोलन चल रहा था, लेकिन वहां नेपाल की तरह खून खराबा नहीं हुआ। शायद इसकी एक वजह यह भी रही कि भूटान को लंबे समय तक बाहरी दुनिया से अलग रखा गया था। वर्ष 1999 में जाकर वहां सीमित संख्या में टीवी रखने की अनुमति दी गई और वर्ष 2000 में राजधानी थिंफू में पहला इंटरनेट कैफे खुला। विदेशी पर्यटकों के लिए भी लंबे समय तक उसके दरवाजे बंद रहे। यदि 1959 में चीन तिब्बत पर कब्जा न करता और बड़ी संख्या में तिब्बती भूटान में न आए होते, तो शायद उसकी आंखे न खुलतीं।

भूटान भारत से ज्यादा करीब भी रहा है। उसकी विदेश नीति भारत-प्रभावित रही है। उसे पता है कि चीन किसी क्षण उसे भी तिब्बत की तरह हड़प सकता है। एक तरफ हजारों वर्षो से साथ रहा भारत है, दूसरी तरफ साम्यवादी चीन, जो तिब्बत में सांस्कृतिक दमनचक्र चलाए हुए है। इसलिए बीच का यह बफर जोन बहुत समय तक राजतंत्र में नही रह सकता था। तीन साल पहले जब नरेश ने यह घोषणा की कि वह 2008 में राजगद्दी छोड़ देंगे और उनका बेटा उनकी जगह लेगा और नए संविधान के तहत देश में लोकतंत्र की स्थापना होगी, तब सहसा यह विश्वास नहीं हुआ कि कैसे बाहरी दुनिया से कटे और आदिम जैसे दिखने वाले समाज में इतना बड़ा परिवर्तन संभव होगा ? लेकिन न सिर्फ नरेश ने दो साल पहले ही गद्दी छोड़ दी, बल्कि अपने बेटे जिग्मे खेसर नामग्याल वांगचूक को राजगद्दी सौंप दी, और नए नरेश ने भी लोकतंत्र के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी। अच्छा हुआ कि वहां लोकतंत्र आ रहा है। इससे भारत की स्थिति और मजबूत होगी। हमारे आसपास लोकतंत्र जितना मजबूत हो, उतनी ही भारत की ताकत बढ़ती है।

(6) भारत एवं मालद्वीव

मालद्वीव दक्षिण एशिया का एक बहुत ही छोटा देश है तथा यह दक्षिण एशिया के अन्य देशों से काफी दूर स्थित है। मालद्वीव दक्षिणी भाग में स्थित एक छोटा सा द्वीपीय देश है जिसकी अन्तर्राष्ट्रीय या क्षेत्रीय सक्रियता दक्षिण एशिया के अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही कम है। लेकिन हिन्द महासागर में स्थित होने के कारण तथा सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण डियागो गार्सिया के नजदीक होने के कारण क्षेत्रीय देशों के लिए इसका महत्व काफी बढ़ जाता है। 'सार्क' नामक संगठन का सदस्य होने के कारण दक्षिण एशिया के देशों के साथ इसके सम्बन्धों की सक्रियता बढ़ जाती है। 'सार्क' के सभी सम्मेलनों में राष्ट्रपति अब्दुल गयूम की उपस्थित भी इस देश को दक्षिण एशिया के साथ सम्बन्धों की गर्मजोशी को बेहद रूप से प्रभावित करती है।

प्रधानमंत्री अटल विहारी वाजपेयी ने अपने छोटे पड़ोसियों को दिये जाने वाले आर्थिक सहायता के क्रम में मालद्वीव को भी प्राथमिकता की श्रेणी में रखा तथा उसके विकास के लिए उसे हर प्रकार से सहायता पहुँचाने की नीति अपनाई। मालद्वीव के विकास के लिए आर्थिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक, अन्तरिक्षीय तथा औद्योगिक आदि विभिन्न प्रकार की सहायताओं के माध्यम से उसके विकास में भारत ने प्रभावी भूमिका निभाई है। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने हिन्द महासागर में बड़ी शक्तियों की उपस्थित को देखते हुए मालद्वीव को सामरिक रूप से मजबूत बनाने का प्रयास किया है जिससे क्षेत्र में बड़ी शक्तियों के हस्तक्षेप को रोका जा सके।

दशवें सार्क शिखर सम्मेलन कोलम्बो (1998), 11वें सार्क शिखर सम्मेलन काठमाण्डू (2002), 12वें सार्क शिखर सम्मेलन इस्लामाबाद (2004) में मालद्वीव के राष्ट्रपति अब्दुल गयूम के साथ प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विभिन्न स्तरों की बातचीत की तथा दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों को और मजबूत बनाने का सिलसिला प्रभावी ढंग से जारी रखने का प्रयास करने की आवश्यकता बताई। दोनों देशों के राजनायिकों, शिष्टमण्डलों, राजनीतिक प्रतिनिधियों द्वारा एक दूसरे देशों की यात्राओं द्वारा द्विपक्षीय बातचीत के माध्यम से समस्याओं को दूर कर विकास को बढ़ाने की नीति अपनाते हुए सम्बन्धों को आगे बढ़ाने का भरसक प्रयास किया गया।

मालद्वीव को ध्यान में रखते हुए भारत के प्रयासों से सार्क नेताओं ने दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार व्यवस्था को वर्ष-2001 तक अन्तिम रूप देने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। दशवें सार्क शिखर सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इस मुद्दे पर बल दिया जिसमें मालद्वीव जैसे छोटे एवं विकसित देश आर्थिक उदारीकरण से लाभान्वित हो सके। भारत ने दक्षिण एशिया में बाल कल्याण कोष को प्रोत्साहन देने के लिए क्षेत्रीय व्यवस्था पर आधारित एक समझौते के प्रारूप पर बल दिया। जिससे मालद्वीवियन बच्चों पर विशेष ध्यान दिया जा सके। मालद्वीव के राष्ट्रपति मैमून अब्दुल गयूम से अनौपचारिक बातचीत में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने गरीबी उन्मूलन, जनसंख्या स्थरीकरण, महिलाओं के सशक्तीकरण, मानव-संसाधन विकास, स्वास्थ्य एवं पोषण तथा शिशुओं की सुरक्षा पर जोर देते हुए मालद्वीव को हर प्रकार से सहयोग देने की अपील की।

11वें शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने मालद्वीव के राष्ट्रपति अब्दुल गयूम से गरीबी उन्मूलन पर वार्तालाप किया तथा आतंकवाद के उन्मूलन में सहयोग की मालद्वीव से अपेक्षा की। आतंकवाद पर करारा प्रहार करते हुए प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कहा कि दक्षिण एशिया में जो देश आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा दे रहे है उन्हें यह तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। राष्ट्रपति अब्दुल गयूम ने भी आतंकवाद को जड़ से खत्म कर देने पर बल देते हुए भारतीय प्रधानमंत्री वाजपेयी के आतंकवाद उन्मूलन बात का समर्थन किया।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मालद्वीव के प्रति भारत की विदेश नीति सहयोगपूर्ण तथा समानता पर आधारित रही। भारत मालद्वीव के विकास में हर तरह की सहायता उपलब्ध करवाकर उसके चहुमुखी विकास में सहयोगी की भूमिका निभाया तथा सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने के लिए हर संभव प्रयास किया।

दक्षिण एशिया के प्रति प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की विदेश नीति की प्रासंगिकता

अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा की सरकार लगभग 13 दिन के लिए मई, 1996 में 11वीं लोकसभा के चुनावों के पश्चात सत्तारूढ़ हुई। वाजपेयी सरकार की विदेश नीति का परिचय हमें 24 मई, 1996 को संसद के दोनों सदनों में संयुक्त अधिवेशन में प्रस्तुत अभिभाषण से मिलता है। विदेश नीति के तहत वाजपेयी ने पाकिस्तान सहित दक्षिण-एशिया के अपने सभी पड़ोसियों के साथ द्विपक्षीय रूप में तथा सार्क के मंच पर सम्बन्ध सुधारने पर विशेष जोर दिया। परमॉणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपभोग की प्रतिबद्धता पर जोर देते हुए राष्ट्रीय हितों के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक होने पर हमारी परमॉणु नीति के पुनर्मूल्यांकन पर जोर दिया गया।

मार्च, 1998 में 'राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन' सरकार वाजपेयी के नेतृत्व में सत्तारूढ़ हुई। अतः उस समय भारतीय विदेश नीति के सामने अनेक चुनौतियां उपस्थित थीं, जिसमें भारत को परमॉणु शक्ति सम्पन्न बनाने की समस्या प्रमुख थी। अतः 11 से 13 मई, 1998 में वाजपेयी सरकार द्वारा परमॉणु परीक्षणों को अंजाम देने से भारतीय विदेशनीति में आमूलचूल परिवर्तन का संकेत मिला तथा इन सबके बाद जो समस्या उभरकर सामने आयी वह यह थी कि पाकिस्तान जो छिपकर परमॉणु कार्यक्रम अपने यहॉ चला रहा था वह उभरकर सामने आ गया और उसने भी अपने परमॉणु परीक्षण 1998 में करके भारतीय चुनौती को नकार दिया तथा उसके साथ शस्त्रों की होड़ शुरू कर दी जो एक विकट समस्या थी।

चूंकि भारत पहले से ही निरस्त्रीकरण का समर्थक रहा है। अतः उसके द्वारा किए गए परमॉणु परीक्षण से विश्व परिदृश्य में यह धारणा उत्पन्न हो गई कि भारत का निःशस्त्रीकरण का ढ़िंढोरा पीटना कोरा बकवास है लेकिन इस समस्या का हल ढूंढते हुए भारत ने 12 अक्टूबर से 13 नवम्बर, 1998 तक न्यूयार्क में आयोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा में आयोजित 53वें सत्र में निरस्त्रीकरण और सम्बद्ध मामलों पर प्रथम समिति में भाग लिया तथा नाभिकीय निरस्त्रीकरण पर सक्रिय रूप से अपनी राष्ट्रीय नीति का खुलासा किया। "नाभिकीय हथियारों के प्रयोग पर रोक से सम्बन्धित अभिसमय" पर भारत का पारम्परिक प्रस्ताव महासभा द्वारा 39 के विरूद्ध 111 मतों से स्वीकार कर लिया गया। अतः प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने विश्व परिदृश्य के सामने अपनी धारणा से सम्बन्धित भ्रम समाप्त कर दिया।

भारत ने नवम्बर, 1998 में दक्षिणी लेबनान में भारतीय इन्फेन्ट्री बटालियन के शामिल हो जाने से भारत संयुक्त राष्ट्र शान्ति स्थापना में दूसरा सबसे बड़ा सैनिक सहायता देने वाला देश बन गया है। "मार्च, 2000 में उपद्रवग्रस्त पश्चिमी अफ्रीकी राष्ट्र सिएरा लियोन में शांति स्थापना के लिए तैनात संयुक्त राष्ट्र शांति सेना के कार्य में सहयोग के लिए भारतीय वायुसेना सिएरा लियोन गई। भारत ने शान्ति अभियानों में पहल करके शांति भंग करने जैसे आरोपों को नाकाम कर दिया।"[85] अटल बिहारी वाजपेयी के शब्दों में "हम पड़ोसी राष्ट्रो के साथ अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध कायम रखने के लिए कृत संकल्प हैं। "यह सत्य है कि 20 वीं सदी में सम्बन्ध कटुता भरे रहे लेकिन अब हमें समीप आने की जरूरत है। दूरी जरा कम करनी चाहिए, सहयोग का मार्ग प्रारम्भ होना चाहिए।"[86]

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के शासनकाल में भारत के साथ पड़ोसियों के सम्बन्धों में निरन्तर प्रगति हुई है तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भारत की छबि में लगातार सुधार हुआ है। परमॉणु परीक्षणों के बाद विश्व के कुछ देशों ने नाराजगी जरूर जताई तथा कई प्रकार के भारत के खिलाफ प्रतिबन्ध भी लगा दिए, लेकिन वाजपेयी की कुशल विदेश नीति ने दुनिया को अपना लोहा मनवा लिया तथा राष्ट्रीय हित एवं सम्प्रभुता पर किसी तरह की आँच नहीं आने दिया। वैश्विक स्तर में अपनी नीति के माध्यम से भारत की जो छबि प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा बनाई गयी उसी नीति को आगे प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह ने भी अपनाने का प्रयास किया।

अपने पड़ोसियों के साथ मित्रता कायम रखने तथा कटु सम्बन्धों में सुधार लाने हेतु प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा बहुकोणीय प्रयास किए गए। चाहे लाहौर बस यात्रा की ऐतिहासिक पहल हो या बांग्लादेश के साथ संचार सम्बन्धों को बढ़ाने की कवायद या कलकत्ता-ढाका तथा अगरतला-ढाका बस यात्रा के माध्यम से सम्बन्धों को उष्ण करने की पहल, नेपाल तथा भूटान को आर्थिक-व्यापारिक-सांस्कृतिक-शैक्षणिक रूप से मजबूत करने की पहल जिससे उनके अन्दर ग्रसित छोटे देश की मनोवैज्ञानिक भावना दूर हो सके। श्रीलंका के साथ मुक्त व्यापार संरचना स्थापित करने तथा मालद्वीव के साथ आर्थिक सहयोग मजबूत करने के जरिए भारत अपने पड़ोसियों के साथ बेहतर सहयोग विकसित करने में अग्रणी भूमिका निभाता रहा है।

प्रधानमंत्री वाजपेयी के प्रयासों द्वारा पाकिस्तान के साथ लम्बे समय से चली आ रही कडुवाहट

को दूर करने का प्रयास किया गया तथा उसमें आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई। बांग्लादेश के साथ सम्बन्धों में, शेख हसीना वाजेद के बाद बनीं प्रधानमंत्री खालिदा जिया द्वारा भारत के साथ पूर्ण सहयोग की नीति को न अपनाने के बावजूद भी वाजपेयी द्वारा रचनात्मक सहयोग जारी रखा गया। इसी प्रकार अन्य पड़ोसियों के साथ भी वाजपेयी द्वारा हमेशा सहयोगात्मक, रचनात्मक तथा सृजनात्मक रवैया अपनाने पर बल दिया गया जिससे अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भारत को एक शांतिपूर्ण, अच्छा पड़ोसी तथा लोकतन्त्रात्मक देश कहने में गुरुता का भाव प्रकट हो तथा भारत की प्रारम्भिक विदेश नीति को सही ठहराया जा सके जिसके अन्तर्गत भारत ने घोषित किया था कि भारत हमेशा तटस्थता की नीति का पालन करेगा, शान्ति की विदेश नीति अपनाएगा, मैत्री तथा सह अस्तित्व को बढ़ावा देगा, विरोधी गुटों के बीच सेतुबन्ध बनाने की नीति अपनाएगा, साधनों की पवित्रता, साम्राज्यवाद और प्रजातीय विभेद का विरोध करेगा तथा सबके साथ समानता की नीति अपनाएगा।

आज दक्षिण एशिया के हालात चिंताजनक हैं। भारत के इर्द-गिर्द स्थितियों के ठीक न होने के कारण केवल राष्ट्र ही चिन्तित नहीं हैं बल्कि उससे आम आदमी का भी चिंतित होना स्वाभाविक है। निश्चित रूप से भारत के लिए अब केवल पाकिस्तान ही समस्या नहीं है। बांग्लादेश, श्रीलंका और नेपाल तथा अफगानिस्तान में जो कुछ हो रहा है वह भी भारत की चिंताओं को बढ़ाने वाला है। इन पड़ोसी देशों में जारी उथल-पुथल को उनका आंतरिक मामला इसलिए नहीं माना जा सकता क्योंकि उनकी गतिविधियां परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप से भारत को प्रभावित कर रही हैं। यदि पाकिस्तान का लोकतंत्र महज एक धोखा है तथा सभी पड़ोसी राष्ट्रों में विफल राष्ट्र के कारक उभरते दिख रहे हैं तो फिर यह उचित नहीं कि भारत हांथ पर हांथ धरे बैठा हुआ दिखाई दे। यद्यपि भारत पड़ोसी देशों पर निगाह रखे हुए है, लेकिन केवल इतना पर्याप्त नहीं है। भारत को अपनी विदेश नीति में एक बदलाव लाना होगा जिससे दक्षिण एशिया में भारत की प्रभाविता स्पष्ट रूप से कायम हो सके।

यह कम चिंताजनक नहीं कि भारत जिस प्रकार पाकिस्तान के घटनाक्रम पर नजर रखे हुए है उसी तरह का रवैया वह नेपाल और श्रीलंका के संदर्भ में भी अपनाए हुए है। यह संभव है कि भारत पाकिस्तान में अपने प्रभाव का इस्तेमाल करने में समर्थ न हो या फिर कूटनीतिक दृष्टि से ऐसा करना उचित न हो, लेकिन क्या ऐसा ही नेपाल और श्रीलंका के मामले में भी है। यदि नेपाल के हालात

अनुकूल न हुए तो क्या होगा ? इसी तरह श्रीलंका से दूरी बनाये रखना भी समझदारी नहीं होगी। यह सही है कि विगत में श्रीलंका में भारत के हाथ जल चुके हैं, लेकिन क्या उस अनुभव से सीख लेकर नए सिरे से किसी भी तरह की पहल नहीं की जा सकती।

भारत को यह समझना होगा कि एशिया और विश्व में उसकी हैसियत तभी बन सकेगी जब वह दक्षिण एशिया में प्रभावी हो सकेगा। भारत हर दृष्टि से दक्षिण एशिया का अग्रणी राष्ट्र अवश्य है लेकिन वह इस क्षेत्र की अगुवाई करते हुए नहीं दिखता। निःसन्देह भारत यह चाहता है कि सभी पड़ोसी देशों से उसके रिश्ते मधुर रहें लेकिन तब क्या किया जाएगा जब कोई पड़ोसी ऐसे रिश्तों का इच्छुक न हो ? इसी प्रकार इस पर भी विचार होना चाहिए कि कुछ पड़ोसी देशों में भारत विरोधी गतिविधियाँ क्यों बढ़ती चली जा रही हैं ? इन सब बातों पर विचार करते हुए हमें विदेश नीति को प्रभावी ढंग से कार्यान्वित करना होगा। तभी पड़ोसियों के प्रति भारत की विदेश नीति की प्रासंगिकता को बनाये रखा जा सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० एन०के० श्रीवास्तव : भारत और विश्व राजनीति, साहित्य भवन, आगरा, 1987, पृ0.-134.
2. वी०पी० दत्त : भारतीय विदेश नीति : विकास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ0.-146.
3. यू०आर० घई : भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक कम्पनी, जालन्धर, पृ0.-242.
4. Narman D. Palmer : International relations, P.242
5. Keith kalard : Indian foreign policy in changing world, P-243.
6. अमर उजाला, 25 नवम्बर, 2003।
7. The Hindu and Indian express. 11 May. 1998.
8. The Hindustan times, 14 May, 1998.
9. वी०पी० दत्त : बदलती दुनिया में भारत की विदेश नीति, पृ0-496.
10. Times of India, 18 May, 1998.
11. के० सुब्रमण्यम : परमॉणु नीति, पृ0-305.
12. यू०आर०घई : भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक कम्पनी जालन्धर, पृ0-305.
13. जे०एन० दीक्षित : भारतीय विदेश नीति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2004 पृ0-406.
14. The Times of India 15 Sep. 1998.
15. जे०एन० दीक्षित, भारत-पाक सम्बन्ध : शांति एवं युद्धकाल में, पृ0-306.
16. The Times of India, 21 Feb. 1999.
17. दैनिक जागरण, 23 फरवरी, 1999.
18. जे०एन० दीक्षित, भारत-पाक सम्बन्ध : शांति एवं युद्धकाल में, पृ0-306.
19. असगर अली इंजीनियर : भारत-पाक सम्बन्ध : शांति एवं युद्धकाल में, पृ0-306.
20. इण्डिया टुडे, 15 फरवरी, 1999, पृ0-14.
21. इंडिया टुडे, 28 फरवरी, 1999.

22. अटल बिहारी वाजपेयी, शक्ति से शांति की ओर, पृ0-43.

23. यू0आर0घईः भारतीय विदेश नीति, पृ0-311.

24. The Hindu, 3 June. 1999.

25. हिन्दुस्तान, 25 फरवरी, 1999.

26. इण्डिया टुडे, 27 मई, 1999.

27. इण्डिया टुडे, 24 मई, 1999.

28. जे0एन0 दीक्षित, भारत-पाक सम्बन्ध : शांति एवं युद्धकाल में, पृ0-308-309.

29. वी0एन0 खन्ना एवं लिपाक्षी अरोडा : भारत की विदेश नीति, पृ0-133-134.

30. यू0आर0 घई, : भारतीय विदेश नीति, पृ0-309.

31. जे0एन0 दीक्षित, भारत पाक सम्बन्ध, शांति एवं युद्धकाल में, पृ0-39.40.

32. इण्डिया टुडे, 7 अक्टूबर, 2001, पृ0-28.

33. इण्डिया टुडे, 12 जून, 2002, पृ0-24.

34. आउटलुक, साप्ताहिक, 19 जनवरी, 2004, पृ0-25.

35. यू0आर0 घई : भारतीय विदेश नीति, पृ0-380.

36. डॉ0 रामदेव भारद्वाज : भारत और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी भोपाल 2005, पृ0-340-41।

37. वी0एन0खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ाः भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग नई दिल्ली पृ0-365।

38. भारत सरकार, विदेश मन्त्रालय-वार्षिक रिर्पोट, 2003-04, पृ0-14।

39. Vikram singh nain : International relations and Ethnicity, R.B.S.A. Publishers Pvt. Ltd, 2000, Page-135.

40. 1990 के दशक में भारतीय विदेश नीति : एक अध्ययन, शीला ओझा, प्रिन्टवैल पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर 2000, पृ0-80

41. भारतीय विदेश नीति : शीला ओझा, पृ0-80

42. राजचेंगप्पा और मनोज जोशी : ताल ठोकता भारत (लेख), इण्डिया टुडे 3 जून 1998 पृ0-14।

43. भारतीय विदेश नीति : शीला ओझा, पूर्ववत, पृ०.-125

44. India today 12 Aug 1998, Page-13

45. V.S. Nain: op. Cit, P-135 and India today, 6 Jan, 1999, Page-14

46. India Today, 31 Jan. 1999, Page-44

47. Frontline. 30 July, 1999, Page-104

48. Frontline. 30 July, 1999, Page-124

49. D.B.S. Jairaj "A Reproachment move" Published in Frontline, 30 July 1999, Page-124

50. Praful Bidwai "A Set back for Ethnic Conciliation" In Frontline, 27 Aug, 1999, Page-107

51. Frontline. 7 January, 2000

52. Frontline, 17 March, 2000

53. Hindustan times, 17 March, 2000

54. Times of India, 12 May, 2000

55. The Hindu, 26 May, 2000

56. Frontline, 26 May, 2000

57. Frontline, 7 July, 2000

58. Times of India, 13 May, 2000

59. The Hindu, 4 June, 2000

60. Hindustan times, 23 February, 2001

61. Times of India, 25 December, 2001

62. The Hindu, 8 January, 2002

63. Frontline 15 Feb, 2002

64. प्रवक्ता, मई द्वितीय, 2002

65. Times of India 9 june, 2002

66. The Hindu, 14 july, 2002

67. Indian express, 19 sep, 2002

68. Indian Express. 10 Jan, 2003

69. V.S. Sambandan. "The India factor" Published in Frontline 21 Nov, 2003 P-17

70. The Hindu 23 oct, 2003

71. The Hindu 1 Nov, 2003

72. Hindustan Times. 14 Nov, 2003

73. Hindustan Times. 24 Nov, 2003

74. The Hindu. 19 Dec, 2003

75. Hindustan Times. 27 Feb, 2004

76. Indian Express. 15 Jan, 2004

77. Times of India, 7 April, 2004

78. Hindustan Times. 23 May, 2004

79. डॉ० रामदेव भारद्वाजः भारत और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 2005, पृ०-344।

80. सिविल सर्विसेज क्रानिकल, फरवरी 2007, पृ-23

81. यू०आर० घई : भारतीय विदेश नीति, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी जालन्धर 2004 पृ०-457।

82. डॉ० रामदेव भारद्वाज : भारत और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 2005, पृ०-358-59।

83. यू०आर घई : भारतीय विदेश नीति, पृ०-445।

84. टी०एन०कोल : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, पृ०-447।

85. वी०पी० दत्त : बदलती दुनिया में भारतीय विदेश नीति, पृ०-852.

86. अटल बिहारी वाजपेयी : शक्ति से शांति की ओर, पृ०-78.

अध्याय-सप्तम

(अ) उपसंहार

(ब) परिकल्पनाओं का परीक्षण

(स) सुझाव

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

उपसंहार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध शीर्षक ''दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति (प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के विशेष सन्दर्भ में)'' में अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्री के रूप में उनके राजनैतिक व्यक्तित्व के एक पहलू भारतीय विदेश नीति में उनकी रूचि और विचारों का गहन अध्ययन है। प्रस्तुत शोध में एक विशेष क्षेत्र (दक्षिण एशिया) के प्रति प्रधानमंत्री वाजपेयी की नीतियों को रेखाकिंत किया गया है।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में मैने अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन किया है। साहित्य सृजन, ओजस्विता, निर्भीकता, वाणी एवं व्यक्तित्व का सम्मोहन तथा विनोद प्रियता उनके व्यक्तित्व की अत्यन्त स्वाभाविक किन्तु महान विशेषताएं है। अटल जी की वाणी में जो सम्मोहन क्षमता है तथा वह गद्य का जो पद्यात्मक स्वरूप प्रदान करते हैं, उसने उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व को ही काव्यमय बना दिया है। वे अपने देश पूर्वजों व महापुरूषों के प्रति निष्ठावान और विनम्र हैं तथा इनके लिए सब कुछ त्याग करने वाले और सादा जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तित्व के रूप में उभरे हैं। आदर्शो का पालन करते-करते आज वह स्वयं आदर्श बन गए हैं और राष्ट्र के लिए वास्तव में एक 'गौरव' हैं।

अटल जी के व्यक्तित्व में अद्‌भुत जीवट और विनम्रता है। पारिवारिक जीवन से लेकर वर्तमान राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय जीवन तक के परिदृश्य में उनके परिवार, उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों, संस्थाओं और स्वयं उन पर कई बार संकट के बादल गहराए, परन्तु इन सबसे उनकी राष्ट्र के प्रति भक्ति तथा गुरुजनों के प्रति आस्थाओं में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, जहां इन संकटों के कारण अनेक उज्ज्वल और श्रेष्ठ-चरित्र के लोगों की आस्थाएं डगमगाती दिख रहीं थीं, तब वाजपेयी पूर्ण रूप से अपने नाम को अपने व्यवहार से सही अर्थ प्रदान कर रहे थे और गीता के आदर्श के समान प्रसन्नता और आपत्तियों में समान रूप से अनासक्त रहते हुए कर्मयोगी के समान 'विहार' कर रहे थे, शायद प्रकृति ने ही उनके माता-पिता को इनका नाम अटल बिहारी रखने की प्रेरणा दी थी।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने प्राइमरी तथा मिडिल तक की शिक्षा बड़नगर तथा गोरखी स्कूल ग्वालियर से हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट तत्कालीन विक्टोरिया कोलेजिएट तथा बी०ए० विक्टोरिया कॉलेज

ग्वालियर और एम०ए० डी०ए०वी० कॉलेज कानपुर से किया। श्री अटल जी छात्र गतिविधियों में सदैव सक्रिय रहे, वे विक्टोरिया कॉलेज में छात्र संघ के सेक्रेटरी तथा उपाध्यक्ष भी रहे, साथ ही वह अपने समय के अद्वितीय वक्ता भी रहे। डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन', हरिवंश राय बच्चन के अत्यन्त निकट रहे। सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में भी वह सक्रिय थे और छात्र जीवन में ही वे जेल गये। अटल जी संघ कार्यकर्ता के रूप में संघ के विस्तारक, प्रचारक और मासिक, पाक्षिक तथा दैनिक पत्रों के सम्पादक के रूप में भी कार्य किया, जिसमें मातृभूमि विभाजन की वेदना और तत्कालीन राजनीति, विदेशनीति और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दर्शन होते हैं।

23 जून, 1953 को कश्मीर में मात्रभूमि की बलिवेदी पर डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के बलिदान ने उन्हें अपने स्वप्नों को पूरा करने की प्रेरणा दी और वह पूरी तरफ सक्रिय राजनीति में आ गए। सन् 1957 से 1977 तक जनसंघ सदस्य के रूप में लोकसभा व राज्य सभा में अनेक बार प्रतिनिधित्व किया। सन् 1977 से 1979 तक जनता पार्टी सरकार में विदेश मन्त्री रहे। 1980 से 1996 तक वह कई बार भाजपा सांसद चुने गए। ग्यारहवीं लोकसभा के चुनाव के बाद उन्होनें पहली बार भारतीय जनता पार्टी की सरकार में प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ली लेकिन लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त न होने के कारण मात्र 13 दिन प्रधानमंत्री रहने के बाद त्यागपत्र दे दिया। 1998 में 12वीं लोकसभा में पुनः 'राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन' के मुखिया के रूप में प्रधानमंत्री की शपथ ली तथा 13 महीने तक प्रधानमंत्री पद को सुशोभित किया तथा शक्ति परीक्षण में मात्र एक मत से सत्ता से विरत होना पड़ा। 13वीं लोकसभा में जीतकर तीसरी बार प्रधानमंत्री पद को देदीप्तिमान किया तथा मई, 2004 तक प्रधानमंत्री रहे।

शोध-प्रबन्ध के अध्ययन के दौरान मैने पाया कि श्री अटल बिहारी वाजपेयी का जन्म और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का जन्म लगभग एक साथ हुआ था। वाजपेयी जी का जन्म उस समय हुआ था जब भारत एक राष्ट्र के रूप में विकसित हो चुका था तथा उस समय समकालीन विश्व में राष्ट्रवाद एवं अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के बीच एक अन्तर्राष्ट्रीय द्वन्द चल रहा था। वाजपेयी जी राजनीति के विद्यार्थी थे और इस रूप में उन्होनें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का अध्ययन किया था, इसलिए विद्यार्थी जीवन से ही उनकी रूचि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में रही है। अपने छात्र जीवन में वह रूसी साम्यवाद और उसके भविष्य पर प्रकाश डाला करते थे। अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर उनका ज्ञान सूक्ष्म और व्यापक रहा, इसकी पुष्टि वाजपेयी जी ने अपने भाषण में किया कि विदेश नीति उनका लोकप्रिय विषय रहा है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अटल जी की प्रारम्भ से ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गहरी रूचि रही है। उनके इस गुण को उनके समय में पं० नेहरू, शास्त्री, श्रीमती इन्दिरा गांधी, मोरार जी देसाई, श्री पी०वी० नरसिंहराव ने भी पहचाना और प्रोत्साहित किया। अपने शोध अध्ययन के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि श्री अटल बिहारी वाजपेयी का भारतीय विदेश नीति की ओर रूझान सर्वप्रथम एक पत्रकार के रूप में हुआ। दूसरी ओर सन् 1947 में भारत-विभाजन तथा डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी की मृत्यु ने भी उन्हें भारतीय विदेश नीति की ओर सोचने के लिए प्रेरित किया और फिर क्रमशः इसका विकास होता चला गया।

प्रधानमंत्री वाजपेयी का दक्षिण एशिया के देशों के अलावा विश्व के अन्य देशों के साथ सम्बन्धों का विस्तृत वर्णन द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत किया गया है। परमॉणु परीक्षणों के बाद ब्रिटेन ने भी अमरीका की तरह भारत पर पाबन्दी लगाई तथा परमॉणु परीक्षणों को मान्यता नहीं दी लेकिन बाद में मान्यता प्रदान कर दी। कारगिल युद्ध में ब्रिटेन ने भारत के साथ सहानुभूति दर्शायी। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने ब्रिटेन की यात्रा की तथा 12 नवम्बर, 2001 को प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर से मुलाकात की जिसमें दोनों नेताओं ने आतंकवाद रोकने पर विस्तृत चर्चा किया तथा गरीबी उन्मूलन, शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने की कोशिश किया। ब्रिटेन ने भारत को सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के दावे का समर्थन भी किया। वाजपेयी की ब्रिटेन यात्रा इस दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण रही।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने फ्रांस के साथ रिश्तों को मजबूत बनाने पर ध्यान केन्द्रित किया जिसके तहत 27 मई से 3 जून, 2003 के बीच अपनी विदेश यात्रा में (जी-8 शिखर सम्मेलन में) भाग लेने फ्रांस के एक शहर इवियां पहुंचें। वाजपेयी की फ्रांस यात्रा कूटनीतिक दृष्टि से सफल रही। फ्रांस ने भारत द्वारा किए गए परमॉणु परीक्षणों के बाद किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया अपितु भारत को सहायता देने का खुला ऐलान भी किया तथा आतंकवाद रोकने के लिए भारत का साथ देने का वादा भी किया।

परमॉणु परीक्षणों के बाद जर्मनी भारत पर क्रोधित हुआ लेकिन कारगिल युद्ध के दौरान भारत की तरफदारी की तथा पकिस्तान को नियन्त्रण रेखा पार न करने की हिदायत दी। वाजपेयी की जर्मनी

यात्रा (27-30 मई 2003) के दौरान यह निर्णय किया कि 10 साल में होने वाली शिखर बैठक को प्रत्येक वर्ष किया जाए तथा व्यापार बढ़ाने पर सहमति बनी। कश्मीर मुद्दे पर किसी अन्य देश की मध्यस्थता का जर्मनी ने विरोध किया। जर्मनी के साथ सम्बन्धों को वाजपेयी द्वारा प्रगाढ़ बनाया गया तथा आपसी विश्वास को बढ़ाया गया।

भारत ने जब परमॉणु परीक्षण किए तब अमेरिका ने आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए तथा सी0टी0बी0टी0 पर हस्ताक्षर के लिए दबाव बनाया। परन्तु प्रधानमंत्री वाजपेयी ने हस्ताक्षर न करने की नीति अपनायी तथा अमरीका के साथ सम्बन्धों के महत्व तथा आवश्यकता को देखते हुए उच्च्व स्तरीय वार्तालाप आरम्भ करने का निर्णय लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि अमरीका द्वारा लगाया गया आर्थिक प्रतिबन्ध ढीला कर दिया गया। कारगिल युद्ध के समय अमेरिका ने दोनों देशों से नियन्त्रण रेखा का सम्मान करने को कहा तथा पाकिस्तान पर घुसपैठिए वापस करने का दबाव बनाया।

अब ऐसा स्पष्ट दिखाई देने लगा कि चिर परिचित भारत-विरोधी अमरीकी रवैया अब परिवर्तित हो रहा था तथा अमेरिका भारत को महत्व देने लगा था। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति पर अमेरिका ने जोर दिया। मार्च, 2000 में भारत-अमेरिका सम्बन्धों में एक बड़ी प्रगति तब हुई जब राष्ट्रपति क्लिंटन ने 5 दिवसीय भारत यात्रा की तथा विभिन्न प्रकार के समझौतों पर राजी हुए दोनों देशों ने आतंकवाद, नशीले पदार्थो की तस्करी से जुड़े आतंकवाद के विरूद्ध सहयोगपूर्ण तथा संयुक्त रूप से कार्य करने का निर्णय लिया।

भारत-अमरीकी सम्बन्धों में उत्पन्न हुई सकारात्मक सहयोग की प्रक्रिया को दृढ़ता तब मिली जब प्रधानमंत्री वाजपेयी ने 5 दिन की अमेरिकी यात्रा की (सितम्बर, 2000) तथा आतंकवाद की समाप्ति, सुरक्षा तथा अप्रसार के मुद्दों पर विद्यमान मतभेदों को सीमित करने के लिए वार्तालाप पर बल दिया। अमेरिका ने कश्मीर समस्या पर मध्यस्थता करने से इन्कार कर दिया तथा द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ाने पर जोर दिया।

सन् 2001 में भारत-अमेरिकी सम्बन्धों का बहुत अच्छा प्रोत्साहन उस समय मिला जब नए राष्ट्रपति जार्ज डब्लू बुश के प्रशासन ने विदेशी सम्बन्धों में भारत को अधिक महत्व दिए जाने का निर्णय लिया। वाजपेयी के प्रयासों का नतीजा ही था कि अमेरिका ने पाकिस्तान को आतंकवाद समर्थक देश तो

घोषित न करने का निर्णय लिया यद्यपि इसने कश्मीर के मुद्दे पर भारतीय सकारात्मक दृष्टिकोण की महत्ता को स्वीकार करना आरम्भ कर दिया।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने अपनी विदेश यात्रा के दौरान एक बार पुनः नवम्बर, 2001 में अमरीका की यात्रा की जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को समूल रूप से नष्ट करने की बात कही गई तथा सहयोग के एक अध्याय की शुरूआत की गई। 13 दिसम्बर, 2001 के दिन भारतीय संसद में हुए आतंकी हमले की अमेरिका ने निन्दा की तथा लश्करे तोएबा, जैश-ए-मोहम्मद जैसे आतंकवादी संगठनों पर अमेरिका द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अप्रैल, 2002 में भारत की सुरक्षा आवश्यकताओं को देखते हुए अमेरिका ने उच्च-टेक्नोलॉजी रड़ार बेंचना स्वीकार किया। इस प्रकार भारत-अमेरिका के बीच सम्बन्धों में सुधार हुआ तथा सभी क्षेत्रों में सम्बन्ध अनवरत् विकसित होते रहे।

प्रधानमंत्री वाजपेयी तथा राष्ट्रपति बुश ने एक साथ 13 जनवरी, 2004 के दिन एक समान वक्तव्य जारी किया जिसमें कहा गया कि भारत और अमरीका गैर सैनिक परमॉणु कार्यक्षेत्र, नागरिक अतंरिक्ष प्रोग्रामों, उच्च तकनीक व्यापार तथा मिसाइल सुरक्षा प्रोग्रामों के सम्बन्ध में आपसी सहयोग का विकास करेंगे। इस वक्तव्य ने यह भी दिखाया कि दोनों देश अब पोखरण द्वितीय के समय तथा सी०टी०बी०टी० के मुद्दे की पीछे छोड़कर आपसी सम्बन्धों का विकास करने के लिए कार्य कर रहे थे। इस प्रकार प्रधानमंत्री वाजपेयी की नीतियों से अमेरिका के साथ सम्बन्धों में प्रगाढ़ता प्राप्त हुई तथा दोनों देश नजदीक आए।

एशिया महाद्वीप के देशों में चीन के साथ भारत के सम्बन्ध शुरूआती दौर में (1998 के अंत तक) सीमित रहे तथा चीन पाकिस्तान का पक्षपाती बना रहा तथा सी०टी०बी०टी० के मुद्दे पर भारत पर दबाव डालने के लिए अमरीका से हाथ मिलाता रहा लेकिन वाजपेयी की पड़ोसियों के प्रति मित्रता की भावना से चीन भी अछूता न रहा और जल्द ही मधुर सम्बन्धों का दौर प्रारम्भ हो गया। कारगिल युद्ध के दौरान चीन ने पाकिस्तान का पक्ष नहीं लिया तथा नियन्त्रण रेखा के सम्मान की बात कही। जून 1999 में विदेशमंत्री जसवंत सिंह ने चीन की यात्रा की। फरवरी, 2000 में भारत तथा चीन में सुरक्षा वार्तालाप का पहला दौर बीजिंग में सम्पन्न हुआ जो 2 दिवसीय वार्ता सचिव स्तरीय थी। जुलाई, 2000 में चीनी विदेशमंत्री ने भारत यात्रा की। 8 फरवरी, 2001 के दिन भारत तथा चीन के मध्य सुरक्षा वार्तालाप का दूसरा दौर दिल्ली में हुआ।

मार्च, 2002 में भारतीय विदेशमंत्री श्री जसवंत सिंह ने चीन की यात्रा की। यात्राओं के कई दौरों ने समीपता बढ़ाई। अप्रैल, 2003 में पहली बार रक्षामंत्री जार्ज फर्नाडीज ने चीन की यात्रा की। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने स्वयं जून, 2003 में चीन की यात्रा की। यह यात्रा 10 वर्ष के बाद किसी भारतीय प्रधानमंत्री की थी। जहाँ भारत ने तिब्बत को चीन का स्वायत्त क्षेत्र स्वीकार किया वहाँ चीन ने सिक्किम के भारत में विलय को स्वीकार किया। दोनों देशों ने उत्तर-पूर्वी राज्यों के मार्ग से व्यापार करने तथा सिक्किम तिब्बत सीमा की व्यापार चौकियों को खोलने के निर्णय लिए। वार्तालाप का दूसरा दौर जनवरी, 2004 में हुआ। इस प्रकार प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा चीन के साथ सम्बन्धों को निरन्तर सुधारने की कोशिश की गई तथा आंशिक सफलता भी प्राप्त की गई।

परमॉणु परीक्षणों के बाद भारत के विरुद्ध जापान में तीव्र तथा उग्र प्रतिक्रिया हुई तथा जापान ने भारत पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए। प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा सम्बन्धों को सुधारने पर जोर दिया जाने लगा। नवम्बर 1999 में जसवंत सिंह ने जापान की यात्रा की तथा बाद में जार्ज फर्नाडीज भी जापान गए तथा विभिन्न मुद्दों के समाधान हेतु सकारात्मक बातचीत किया। फरवरी, 2000 में भारत-जापान वार्तालापों का दौर प्रारम्भ किया गया। पोखरण-द्वितीय के बाद प्रधानमंत्री वाजपेयी की सक्रियता के परिणामस्वरूप, 2000 में जापान के प्रधानमंत्री श्री मोरी ने भारत की यात्रा की तथा घोषणा की कि भारत और जापान एक विश्वस्तरीय भागीदारी स्थापित करेंगे जो कि राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों से सम्बन्धित होगी। फरवरी, 2001 में जापान ने भारतीय सूचना तकनीकी विशेषज्ञों को जापान में आने के लिए बहुमुखी प्रवेश वीजा देने का निर्णय लिया तथा अक्टूबर, 2001 में अफगानिस्तान में आतंकवाद के विरूद्ध आरम्भ हुए युद्ध द्वारा उत्पन्न वातावरण में भारत तथा पाकिस्तान पर मई, 1998 में लगाए गए आर्थिक प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया। एक बार पुनः दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों में समीपता आई।

जनवरी, 2002 में जापान की विदेश मंत्री ने भारत की यात्रा की। अप्रैल, 2003 में दोनों देशों में वार्तालाप प्रक्रिया आरम्भ हुई तथा वर्ष के अन्त तक सम्बन्धों में मधुरता आने लगी। 3 फरवरी, 2004 को भारत तथा जापान के अधिकारियों ने व्यापार वार्तालाप की 15वीं बैठक में भाग लिया तथा विभिन्न मुद्दों पर सकारात्मक वार्तालाप की। वाजपेयी द्वारा निरन्तर किए गए प्रयासों से पोखरण-द्वितीय के बाद आए गतिरोध को समाप्त कर एक नई दिशा का सफल संचालन कर विकास को एक गति प्रदान की।

शोध-प्रबन्ध के तीसरे अध्याय में दक्षिण एशिया का स्वरूप तथा राज्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन किया गया है। इस क्षेत्र को अध्ययन में शामिल करने का उद्देश्य अपने शोध के दायरे को बताना है जिससे अटल बिहारी वाजपेयी की विदेश नीति में भूमिका को एक क्षेत्र विशेष के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सके। सम्पूर्ण एशिया में इस क्षेत्र की भू-राजनीतिक एवं सैनिक दृष्टि से स्वतः ही स्थिति महत्वपूर्ण बन गयी है। दक्षिण एशिया के समस्त देश भारत को छोड़कर राजनीतिक अस्थिरता के शिकार हैं। यही कारण है कि इस क्षेत्र के देशों को इसी अस्थिरता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मोहरा बनाने की निरन्तर कोशिशें होती रहती हैं जिनका दूरगामी प्रभाव पड़ता है।

यदि हम भू राजनीतिक वास्तविकताओं की दृष्टि से विचार करें तो भारत की स्थिति 'केन्द्रीयोन्मुखी' होने के कारण भारत इस क्षेत्र के सभी देशों की सुरक्षा की दृष्टि से साथ ले चलने को बाध्य है। विदेशी दासता से मुक्त हुए राष्ट्र अपने जन्म के साथ अनेकानेक समस्याओं विविध संभावनाओं तथा बहुआयामी कुंठाओं से ग्रसित एवं सुखद 'परिकल्पनाओं से मंडित' होकर आविर्भूत होते हैं। दक्षिण-एशिया के समस्त देश भी इसके अपवाद नहीं हैं। वस्तुतः भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश एवं श्रीलंका पर अंग्रेजो का सीधा नियन्त्रण होने के कारण इन देशों पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

राजनीतिक स्थिति के विषय में अत्यधिक शोषण एवं उत्पीड़न के कारण इन देशों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अपनी अनेकों राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं से जूझना पड़ा जो आज तक भी है। नेपाल, भूटान एवं मालद्वीव को अंग्रेजी राज्य में संरक्षित राज्य का दर्जा प्राप्त था अतः वहाँ भी स्थिति लगभग एक जैसी ही थी। दक्षिण एशियाई देशों ने द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कई प्रकार के सरकारों के स्वरूप को अपनाया। नेपाल, भूटान ने संवैधानिक राजतंत्र अपनाया तो भारत, श्रीलंका, मालद्वीव ने प्रजातांत्रिक व्यवस्था तथा पाकिस्तान एवं बांग्लादेश ने सैन्यवादी व्यवस्था को अपनाया। पाकिस्तान में लोकप्रिय सरकारों का पतन एक आम बात हो गई है। श्रीलंका भी सर्वसम्मत संविधान देने में असमर्थ रहा। क्षेत्रीय दल, जातीय संघर्ष, राजनीतिज्ञों के निहितस्वार्थ एवं हत्याओं ने प्रशासनिक अस्थिरता को बढ़ावा ही दिया है। तमिल समस्या ने आज देश को विभाजन के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है।

अतः देश को रचनात्मक नेतृत्व की महती आवश्यकता है। जहॉ तक नेपाल का प्रश्न है तो वहॉ यद्यपि संवैधानिक राजतंत्र की घोषणा अवश्य की गयी, लेकिन व्यवहार में राजा ही सर्वाधिकारवादी हो गया, जहाँ नागरिक अधिकार राजा की दया तक ही सीमित हो गये, जिसका परिणाम राजनीतिक व्यवस्था का क्षरण एवं अर्थव्यवस्था में गिरावट आयी। भूटान में भारतीय प्रभाव होने के कारण नेपाल की अपेक्षा प्रशासनिक एवं राजनीतिक स्थिरता ज्यादा है। मालद्वीव में समस्त सत्ता राष्ट्रपति के हॉथ में होने के कारण राजनीतिक स्थिरता जरूर प्रतीत होती है, लेकिन यह तभी संभव है जब तक नागरिकों में राजनीतिक चेतना का अभाव है।

भारत एवं भूटान को छोड़कर बाकी सभी देशों पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका एवं मालद्वीव में राजनीतिक एंव प्रशासनिक स्थिरता का अभाव है, जिसका प्रमुख कारण गरीबी, सरकारी पूर्वाग्रह, राजनीतिक नेतृत्व का अभाव तथा राजनीतिक दलों की अवसरवादिता है। इनसे तभी मुक्ति मिल सकती है, यदि जनता की प्रशासन में अत्यधिक भागीदारी हो, देशहित में राजनीतिक सोच, रचनात्मक नेतृत्व तथा प्रबुद्ध वर्ग सक्रिय हो तभी प्रशासनिक स्थिरता कायम की जा सकती है।

आर्थिक विकास की दिशा में दक्षिण एशियाई देशों की स्थिति काफी निराशाजनक है, लगभग सभी देश गरीबी, अशिक्षा, घनी आबादी के शिकार कृषि प्रधान देश हैं, जहाँ वैज्ञानिक एवं तकनीकी विशेषज्ञता का अभाव तो है ही, आपसी सद्भाव की भी भारी कमी है। हालांकि सार्क का गठन इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम अवश्य कहा जा सकता है, वस्तुतः इस क्षेत्र को क्षेत्रीय आर्थिक समूह में बदलना निहायत जरूरी है। यदि ऐसा संभव हो सके तो दक्षिण एशिया विकसित देशों के लिए चुनौती बन सकता है। शक्ति का प्रमुख आधार आर्थिक ही होता है। किसी देश का राष्ट्रीय उत्पादन, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं बाजार में साख तथा अन्य देशों की सहायता वे बुनियादी तत्व हैं जिनसे कोई देश आत्मनिर्भर होकर महाशक्ति बनता है।

भारत में इन तत्वों की मौजूदगी पर्याप्त है लेकिन बाकी देशों में इनका पर्याप्त अभाव है। विदेशों से ऋण लेकर बिना स्वयं की अद्यः संरचना के विकास के उद्योगों एवं योजनाओं की पूर्ति करना घातक है। यदि पाकिस्तान में कपास एवं बांग्लादेश में जूट, श्रीलंका में चाय, रबर, रत्न, नेपाल, भूटान एवं मालद्वीव में पर्यटन सुविधाएं मुख्य आर्थिक स्रोत हैं तो इन्हें औद्योगिक रूप देकर व्यावसायिक बनाया जा

सकता है जिससे विदेशी मुद्रा के साथ-साथ आर्थिक निर्भरता में काफी सुधार हो सकता है।

दक्षिण एशिया के लगभग सभी देशों में एक सीमा तक सामान्यतः आम असंतोष है। वर्तमान व्यवस्था का जो रूप है, चाहे वह राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक हो तथा चाहे भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका या बांग्लादेश हों शासित एवं शासक वर्ग विकसित हो गये हैं या अमीर-गरीब या फिर वर्गीय भेद पनप गये हैं जिसके कारण सर्वत्र अव्यवस्था एवं असंतोष व्याप्त हो गया जिसकी परिणति आगे चलकर शासकों के द्वारा एक दूसरे देश में परस्पर कटुता एवं एक दूसरे पर दोषारोपण के रूप में हुयी है। सामान्यतः दक्षिण एशिया के समस्त देश एक ही विरासत के विभिन्न अंग है जिनमें एक विशिष्ट प्रकार के सम्बन्धों को होना चाहिए था, लेकिन संभवतः ऐसा कई कारणों से संभव नहीं हो सका है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत दक्षिण एशिया के देशों (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, मालद्वीव) पर विश्व के प्रमुख देशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रभाव का अध्ययन करना है। संयुक्त राष्ट्र संघ एवं भारत के सम्बन्धों पर चर्चा की गई है तथा पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका तथा मालद्वीव के साथ भी संयुक्त राष्ट्र संघ की नीतियों का अध्ययन किया गया है। अमरीका के साथ भारत के सम्बन्धों पर नेहरू काल से लेकर प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी तक के शासनकाल की चर्चा की गई है तथा दक्षिण एशिया के अन्य देशों के साथ भी अमरीका के साथ सम्बन्धों पर चर्चा की गई है। रूस, चीन की नीतियों का दक्षिण एशिया के देशों पर प्रभाव का भी अध्ययन किया गया है। दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों पर प्रभाव का भी अध्ययन किया गया है। दक्षिण-पूर्व एशिया के 10 देशों के संगठन 'आसियान' के दक्षिण एशिया पर प्रभाव को रेखांकित किया गया है एवं सार्क संगठन की इन देशों के साथ प्रांसगिकता को दर्शाया गया है। दक्षिण एशिया के सभी सात (अब 2007 से देशों की संख्या 8) देशों पर विश्व राजनीति के प्रभाव को इस अध्याय के अन्तर्गत बताया गया है।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत भारत के विभिन्न प्रधानमन्त्रियों की विदेश नीतियों को दक्षिण एशिया के देशों के साथ प्रदर्शित किया गया है। विदेश नीति के संस्थापक पं० जवाहरलाल नेहरू की विदेश नीति साम्राज्यवाद विरोधी, प्रजाति विरोधी, असंलग्नता के समर्थन पर आधारित तथा तटस्थता पर आधारित रही। पुर्तगाली अत्याचारों से गोवा मुक्ति तथा पाकिस्तान सहित अन्य दक्षिण एशियाई देशों के साथ

हमेशा सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने का प्रयास प्रधानमंत्री नेहरू द्वारा किया गया। प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की नीति पड़ोसियों के प्रति मधुर व्यवहार पर आधारित रही।

1965 के युद्ध (भारत-पाक) का सफल संचालन शास्त्री द्वारा किया गया तथा पाकिस्तान को पराजय का मुँह देखना पड़ा था। 10 जनवरी, 1966 को ताशकन्द समझौता हुआ जिसमें भारत को काफी नुकशान हुआ। उसे न सिर्फ उन प्रदेशों को छोड़ना पड़ा जो युद्ध के मैदान में उसने जीते थे बल्कि कश्मीरी प्रदेशों को भी छोड़ना पड़ा जिस पर वैधानिक दृष्टि से भारत का अधिकार था। लेकिन पाकिस्तान के साथ शान्ति तथा मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के विकास के लिए यह समझौता स्वीकार किया गया।

प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने एशिया में अपनी बड़ी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण नेताओं के एक दूसरे देशों के दौरों द्वारा पारस्परिक हितों के मामलों पर विचार-विमर्श करके और द्विपक्षीय बातचीत द्वारा आपसी समस्याओं को सुलझाकर घनिष्ठ और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए।

पाकिस्तान के साथ 1971 में हुए युद्ध में विजय प्राप्त कर बांग्लादेश का निर्माण किया। इस सैनिक विजय ने भी भारत को विचलित नहीं किया और भारत ने स्वयं युद्ध विराम की घोषणा कर दी और 1971 के संघर्ष के दौरान विजित क्षेत्रों से अपनी सेनाएं लौटाने को तैयार हो गया। जुलाई, 1972 में शिमला समझौता हुआ। यह शान्ति के प्रति भारत की प्रतिबद्धता का दूसरा प्रमाण था।

श्रीमती गांधी ने पड़ोसियों के साथ सम्बन्ध मधुर करने में क्षेत्रीय दृष्टिकोण का प्रयोग किया। फिर भी बांग्लादेश की मुक्ति तथा सिक्किम का भारत में विलय छोटे देशों के लिए चिन्ता के विषय बने। विदेश नीति के संचालन में कम खुलापन होने से इन देशों ने भूमि एवं जनसंख्या की दृष्टि से विशाल भारत को सदैव शंका की दृष्टि से देखा। जनता सरकार की विदेश नीति में अपेक्षाकृत अधिक खुलापन होने से अब वे देश अपने रूख को बदलने लगे। जनता सरकार ने उदारतापूर्वक नेपाल के साथ तीन नयी सन्धियाँ कीं, बांग्लादेश के साथ फरक्का विवाद को सुलझाया, विदेश मंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने पाकिस्तान की यात्रा की, जिससे एक बड़ा परिवर्तन विदेश नीति में हुआ। विगत कांग्रेस सरकारों के प्रधानमंत्री विदेशमन्त्रालय की नौकरशाही से परामर्श कर हावी रहते थे तथा विदेशमंत्री सदैव उनका मुँह ताका करते थे। जनता सरकार के अधीन प्रधानमंत्री देसाई ने विदेशमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी को देश के वैदेशिक मामलों का नेतृत्व करने का पूर्ण अवसर दिया जिससे एक स्वस्थ परम्परा का विकास हुआ

और विदेश मंत्री के द्वारा नीतिगत निर्णय बिना प्रशासकीय पूर्ण निर्भरता के लिया जाने लगा।

प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने निःशस्त्रीकरण, उपनिवेशवाद उन्मूलन, विकास तथा शान्ति की कूटनीति पर जोर दिया। पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल जिया से मुलाकात की तथा विभिन्न विषयों पर सद्‌भावना पूर्वक वार्तालाप किया। बांग्लादेश में आये भीषण तूफान के दौरान वे मई, 1985 में ढाका गये तथा गंगा नदी के पानी के बंटवारें को लेकर नसाऊ में समझौता किया। 16 दिसम्बर, 1985 को पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल जिया भारत आए और दोनों के मध्य एक सूत्री समझौता हुआ जिसमें तय किंया गया कि वे एक दूसरे के परमॉणु ठिकानों पर हमला नहीं करेंगे। 29 जुलाई, 1987 को कोलम्बों में राजीव-जयवद्धने समझौता हुआ। समझौते के तहत श्रीलंका में शान्ति सेना भेजी गयी।

प्रधानमंत्री पी०वी० नरसिंहराव ने अक्टूबर, 1992 में नेपाल की यात्रा की। भारत तथा भूटान के बीच परम्परागत घनिष्ठ सम्बन्ध अधिक दृढ़ हुए तथा अगस्त, 1993 को पी०वी० नरसिंहराव भूटान की सद्‌भावना यात्रा की। बांग्लादेश के साथ सम्बन्धों में सुधार हुआ तथा मई, 1992 में प्रधानमंत्री खालिदा जिया ने भारत की यात्रा की। तीन बीघा गलियारे से सम्बन्धित पुरानी समस्या सुलझ गयी और भारत ने एक पट्टे के अन्तर्गत तीन बीघा को बांग्लादेश के नियन्त्रण में दे दिया। 21 जनवरी, 1992 से 6 सितम्बर, 1993 तक 36000 से अधिक श्रीलंकाई शरणार्थी अपने देश वापस गये। भारत ने पाकिस्तान ने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में 1992-93 के दौरान प्रधानमंत्री नवाज शरीफ से पांच बार मुलाकात की। प्रधानमंत्री एच०डी० देवेगौड़ा ने पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों को मधुर बनाने के क्रम में बातचीत की पेशकश की। इसी क्रम में 31 मार्च, से भारत-पाकिस्तान विदेश सचिव वार्ता प्रारम्भ हुई।

प्रधानमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल (वी०पी० सिंह और एच०डी० देवेगौड़ा के प्रधानमन्त्रित्व काल में विदेश मंत्री) ने चार वर्ष के अन्तराल के बाद 12 मई, 1997 को दक्षेस सम्मेलन में बातचीत की जिसमें दोनों प्रधानमन्त्रियों के बीच आपसी सम्पर्क बनाए रखने के लिए हॉट लाइन स्थापित करने का निर्णय लिया गया। माले में सम्पन्न मई, 1997 के नौवें सम्मेलन में 'दक्षिण एशियाई आर्थिक समुदाय' के गठन का भी प्रस्ताव किया गया। जून, 1997 को प्रधानमंत्री गुजराल ने नेपाल की यात्रा की तथा विभिन्न मुद्दों पर वार्तालाप कर समस्या समाधान पर बल दिया।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की दक्षिण एशिया के प्रति विदेश नीति को अध्याय षष्ठ के

अन्तर्गत रेखांकित किया गया है जिसके अन्तर्गत पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान तथा मालद्वीव के साथ सम्बन्धों को वाजपेयी के प्रधानमन्त्रित्व काल में दर्शाया गया है। 12वीं एवं 13वीं लोकसभा चुनावों में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बनी राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन सरकार की नीतियों को दक्षिण एशिया के छः देशों के साथ सम्बन्धों पर अध्ययन किया गया है जो कि शोध अध्ययन का प्रमुख विषय है। वाजपेयी ने सत्ता सम्हालते ही अपन राष्ट्र की सुरक्षा तथा सम्प्रभुता को बनाये रखने के लिए 11 मई तथा 13 मई, 1998 को परमॉणु परीक्षण किए जिससे भारतीय विदेश नीति में एक बदलाव आया। वाजपेयी ने कहा कि इन परीक्षणों से किसी विधिक दायित्व का उल्लंघन नहीं हुआ है तथा ये परीक्षण गम्भीर सुरक्षा आवश्यकताओं तथा तकनीकी अनिवार्यताओं के कारण किए गये। वाजपेयी ने अपने देश को परमॉणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र घोषित कर दिया। प्रधानमंत्री द्वारा किए गए परमॉणु परीक्षणों से 24 वर्षो के उल्लेखनीय स्वैच्छिक नियन्त्रण के पश्चात भारतीय विदेश नीति में यथार्थवाद की स्थापना हुई जो कि नैतिकतावाद से ग्रसित थी।

प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा किये गये परमॉणु परीक्षण का मुख्य मकसद चीन-पाकिस्तान की परमॉणु क्षेत्र में गुटबन्दी तथा पाकिस्तान में छिपे रूप से निर्मित किये जा रहे परमॉणु कार्यक्रम से था। वाजपेयी द्वारा किये गयें परीक्षण राष्ट्र की सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक थे। इसके जवाब में पाकिस्तान ने भी 6 परमॉणु परीक्षण किए तथा जुलाई, 1998 के सार्क सम्मेलन में नवाज शरीफ ने यहां तक कहा कि पाकिस्तान भारत के साथ परमॉणु-युद्ध भी छेड़ सकता है। इन सब बातों के बावजूद वाजपेयी द्वारा किये गये प्रयासों से सम्बन्धों में पुनः सुधार हुआ। 20 फरवरी, 1999 को प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा लाहौर यात्रा सद्भावनापूर्ण रही तथा कई समझौतों पर हस्ताक्षर किये गये जिसमें समय-समय पर दोनों देशों के विदेश मन्त्रियों की बैठकों, परमॉणु मुद्दों, W.T.O. मुद्दा, वीजा यात्रा उदार बनाने पर विचार-विमर्श हुआ।

पाकिस्तान ने प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा बढ़ाए गए मैत्री हाथ को नहीं पकड़ा। प्रधानमंत्री वाजपेयी की लाहौर यात्रा के तुरन्त बाद पाकिस्तान ने कारगिल की पहाड़ियों पर अनधिकृत कब्जा करके भारत के विरूद्ध आक्रामक कार्यवाही कर दी। पाकिस्तान का कारगिल में अतिक्रमण का मुख्यतया उद्देश्य यह था कि कारगिल में युद्ध की स्थिति पैदा करके कश्मीर के मुद्दे का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करना तथा नियन्त्रण रेखा को चुनौती देना। दूसरे देशों को इस झगड़े में शामिल करना तथा लौहार घोषणा की आड़ में अपने

आपको एक शांतिप्रिय राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करना लेकिन भारतीय सेना ने कारगिल युद्ध में विजय प्राप्त किया। भारत द्वारा किये गये शांति के प्रयासों को पाकिस्तान द्वारा न अपनाना उसकी नियति को दर्शाता है कि पाकिस्तान क्षेत्र में शांति, सहयोग का समर्थक नहीं है।

पाकिस्तान में लोकतान्त्रिक ढंग से चुनी गयी नवाज शरीफ की सरकार का जनरल परवेज मुशर्रफ द्वारा 12 अक्टूबर, 1999 को तख्ता पलट दिया गया जिससे दोनों देशों के मध्य भविष्य में शाति की आशा धूमिल लगने लगी। अक्टूबर, 1999 से अप्रैल, 2001 तक पाकिस्तान लगातार भारत विरोधी देश बना रहा तथा आतंकवाद को बढ़ाने में मदद करता रहा। भारतीय प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने पुनः एक बार द्विपक्षीय सम्बन्धों को सकारात्मक मोड़ देने के लिए मई, 2001 में परवेज मुशर्रफ को भारत बुलाया। 14 से 16 जुलाई, 2001 को भारत पधारे मुशर्रफ के साथ बातचीत असफल रही क्योंकि मुशर्रफ ने कश्मीर समस्या को केन्द्रीय विषय माना तथा इसके लिए तीसरे देश की उपस्थिति पर बल दिया, जो भारत के लिए अस्वीकार था। भारत शिमला समझौते के अन्तर्गत ही समस्या का समाधान द्विपक्षीय स्तर पर करना चाहता था किसी की मध्यस्थता में नहीं।

11 सितम्बर, 2001 के दिन अमेरिका में हुए आतंकवादी हमले के बाद अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में तेजी से परिवर्तन हुआ। अमेरिका ने पाकिस्तान के सहयोग से अफगानिस्तान के विरूद्ध सैनिक कार्यवाही 8 अक्टूबर, 2001 को प्रारम्भ कर दिया तथा भारत-पाकिस्तान के विरूद्ध लगाये गये आर्थिक प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया। अब पाकिस्तान ने भारत के साथ बातचीत करना चाहा क्योंकि इस समय वह अमेरिका की सहायता कर रहा था तथा अमेरिका सहायता की आशा थी, लेकिन प्रधानमंत्री वाजपेयी ने स्पष्ट कहा कि बातचीत द्विपक्षीय होगी एवं वो भी आतंकवादी गतिविधियों की समाप्ति के बाद।

पाकिस्तान ने एक बार पुनः 13 दिसम्बर, 2001 को भारतीय संसद पर हुए हमलें को शह दिया जिससे प्रभावित होकर भारत ने कूटनीतिक सम्बन्धों को सीमित कर दिया। 2002 के अन्त तक दोनों देशों के सम्बन्ध तनावपूर्ण बने रहे। वर्ष 2003 में प्रधानमंत्री वाजपेयी के प्रयासों से बातचीत का सिलसिला जारी हुआ, कूटनीतिक सम्बन्ध बहाल हुए, नई दिल्ली-लाहौर बस सेवा प्रारम्भ हुई, सचिव स्तरीय वार्तालाप का क्रम जारी हुआ, सृजनात्मक कार्यो को गति मिली। सार्क शिखर सम्मेलन इस्लामाबाद 2004 में दोनों नेतओं की सकारात्मक पहल ने द्विपक्षीय सम्बन्धों में एक नया मोड़ प्रदान किया जिससे

प्रभावित होकर पाक राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने पत्रकारों से कहा "आज इतिहास रच गया है, यह एक नई शुरूआत है, आगरा के बाद बहुत पानी पुल के नीचे से बह चुका है। आगरा के पश्चात मैं एक निराश व्यक्ति था आज मैं खुश हूँ।"

सार्क शिखर सम्मेलन के बाद दोनों देशों के सम्बन्धों में सुधार की बयार चलने लगी जिसे अगले प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने भी आगे बढ़ाया तथा विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में दोनों देशों के प्रतिनिधियों के मिलने से बातचीत का क्रम जारी रखा। सचिव स्तरीय कई दौरों की वार्ता चली तथा दोनों देशों के मध्य सकारात्मक परिणामों में वृद्धि का क्रम अनवरत रूप से जारी रहा। लेकिन पाकिस्तान में उपस्थित आतंकवादी संगठन समय-समय पर दोनों देशों के मध्य सुधर रहे सम्बन्धों को बिगाड़ने का प्रयास करते रहते हैं तथा जेहाद के नाम पर सीमा पर जुल्म ढहाते रहते हैं जिसमें दोनों देशों के मध्य सुधरते सम्बन्धों पर पानी फिरता नजर आता है। ये आतंकवादी संगठन केवल भारत या दक्षिण एशिया के लिए विकास अवरोधी ही नहीं हैं अपितु स्वयं पाकिस्तान की आन्तरिक राजनीति तथा क्रिया-कलापों को भी प्रभावित करते हैं।

आए दिन पाकिस्तान में बम विस्फोटों तथा भारी जान-माल के खतरे की सूचना मिलती रहती है। स्वयं राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ के ऊपर किए गए वार इसके साक्ष्य है। सबसे दुखद घटना 21वीं शताब्दी की पाकिस्तान में 27 दिसम्बर, 2007 को पूर्व प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टों की हत्या है जिससे स्पष्ट होता है कि ये उग्रवादी जेहादी संगठन व केवल पड़ोसियों के लिए खतरनाक सिद्ध हो रहे हैं अपितु अपने देश में भी मृत्यु का ताण्डव कर वहाँ की राजनीति को निष्प्रभावी बनाने में तुले हैं। हॉल ही में पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल परवेज मुशर्रफ ने अपने सैनिक पद से त्यागपत्र देकर केवल राष्ट्रपति के पद पर रहकर 8 जनवरी, 2008 को चुनाव कराने पर सहमत हुए थे जिससे विश्व को लगे कि चुनाव निष्पक्ष होगें लेकिन 27 दिसम्बर की घटना ने एक बार पुनः पाकिस्तान में अस्थिरता को बढ़ावा दिया तथा वहॉ आतंकवादियों की मजबूती का प्रमाण मिला।

वेनजीर भुट्टों की हत्या पाकिस्तान में आतंकवाद के उफान का ऐसा सबूत है जो दक्षिण एशिया के साथ-साथ समूचे विश्व को भी डराने वाला है। पाकिस्तान के आगे की राह इसलिए और अंधकारमय नजर आने लगी है, क्योंकि लोकतंत्र विरोधी ताकतें लगातार मजबूत होती जा रही हैं। त्रासदी यह है कि

ऐसी ताकतें पाकिस्तान के सत्ता प्रतिष्ठान का हिस्सा है अर्थात् पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी तथा आई०एस०आई० जितनी ताकतवर है उतनी ही लोकतंत्र विरोधी भी। इसी तरह यह भी साफ है कि पाकिस्तान के हर गली मुहल्ले में पल रहे आतंकी पाकिस्तान को तालिबान के जमाने वाला अफगानिस्तान बना देना चाहते हैं जिन्हें कश्मीर और अफगानिस्तान में लड़ने के लिए तैयार किया गया था, यद्यपि अब वे पाकिस्तान के लिए भस्मासुर बन गये हैं। ये सब कारक भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों को प्रभावित कर रहे हैं।

1999 के आखिरी सैन्य विद्रोह के बाद पाकिस्तान जिस तरह कट्टरता, चरमपंथ और सेना की सर्वोच्चता के दल-दल में धंसता जा रहा है उसे देखते हुए पाकिस्तान के भविष्य पर आशंका के बादल मड़राने लगे हैं तथा भारत के साथ सम्बन्धों में सुधार की गुंजाइश क्षीण नजर आने लगी है क्योंकि उस देश के साथ सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाना हितकर नहीं है जहाँ लोकतान्त्रिक नेताओं की हत्या कर लोकतन्त्र को कमजोर बनाने का अनवरत् प्रयास हो रहा हो। वेनजीर की हत्या के पीछे एक कारण उनका अमेरिका के नजदीक होना भी माना जा रहा है। पाकिस्तान की सरकार ने उनकी मौत को एक हादसा ठहराने का प्रयास किया है। उसका यह प्रयास पाकिस्तान की लचर कानून-व्यवस्था और चरमपंथी संगठनों के बढ़ते प्रभाव से विश्व का ध्यान हटाने की कोशिश मात्र है। अस्थिर और अशांत पाकिस्तान से आज सबसे अधिक खतरा भारत को है।

मौजूदा स्थितियों में पाकिस्तान के हालात भारत के लिए अत्यधिक खतरनाक हैं। आई०एस०आई० और पाकिस्तानी सेना कश्मीर पर आधिपत्य जमाने के अपने एजेंडे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। हाल ही में अमेरिकी अखबार न्यूयार्क टाइम्स ने स्पष्ट किया है कि पाकिस्तान को आतंकवाद से लड़ने के लिए अमेरिका से जो अरबों डालर मिले उनका इस्तेमाल भारतीय सेना की बराबरी करने में किया गया। इसका मतलब है कि पाकिस्तानी सेना की दिलचस्पी आतंकियों को खत्म करने में नहीं बल्कि भारत से लड़ने की तैयारियां करते रहने में है। एक तथ्य यह भी है कि पाकिस्तानी सरकार जब कभी अपने भारत विरोधी अभियान को ठंडे बस्तें में डालने का प्रयास करती है तो उसकी जनता का तबका और आई०एस०आई इसे स्वीकार नहीं करती । यही नहीं खुद सेना का एक वर्ग भी यह चाहता है कि कश्मीर को हड़पने की योजना जारी रहे।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पाकिस्तान के प्रति जो नीति अपनायी उसमें सबसे बड़ा अवरोध आतंकवादी संगठन रहे हैं जिसका बाजार पाकिस्तान में फल-फूल रहा है तथा पूर्व प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टों की हत्या भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों में एक अवरोध का रूप ले सकती है। लेकिन दोनों देशों द्वारा किये जा रहे शांतिपूर्ण प्रयासों से सम्बन्धों में क्या प्रभाव पड़ेगा यह तो भविष्य ही बताएगा। भारत पर आंच न आने पाए, इसके लिए सरकार को चाहिए कि वह सेना को और अधिक अधिकार देकर सीमाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करे, ताकि किसी भी सूरत में पाकिस्तान से आतंकवादी भारत में प्रवेश न कर सकें।

चाहे पाकिस्तान से लगी सीमा हो या नेपाल अथवा बांग्लादेश से लगी सीमा, हमारी सेनाओं को उन्हें अभेद्य बनाना ही होगा। तभी भारत, पाकिस्तान की विकट स्थिति से अपने को बचा सकेगा, अन्यथा जलते हुए पाकिस्तान की ऑच भारत में भी आतंवाद को बढ़ावा देगी, जिसके लिए दोषी सिर्फ भारत सरकार ही होगी। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा शुरू की गई पाकिस्तान के प्रति पहल का रूख कैसा होगा यह तो भविष्य के गर्त में छुपा है, हांलाकि भारत की तरफ से शांति के लिए भरसक प्रयास जारी हैं। परमॉणु परीक्षणों के बाद बांग्लादेश की सरकार ने एक संयमपूर्ण नीति अपनाई तथा जून, 1998 में प्रधानमंत्री शेख हसीना वाजेद विस्फोट के बाद भारत की यात्रा करने वाली पहली सरकारी अध्यक्षा थीं।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने बांग्लादेश के साथ सम्बन्धों को सुधारने के लिए 9 अप्रैल 1999 को पहली भारतीय बस कलकत्ता से भेजी गई तथा 19 जून, 1999 को विधिवत बांग्लादेश की यात्रा पर वाजपेयी गए। दोनों नेताओं (वाजपेयी एवं हसीना वाजेद) ने द्विपक्षीय क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर विचार-विमर्श किया। वाजपेयी ने बांग्लादेश को आर्थिक सहायता प्रदान की तथा कुछ वस्तुओं से शुल्क हटा लिया। दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध गहरे हुए तथा आपसी विचार-विमर्श की प्रक्रिया को गति प्राप्त हो सकी।

भारतीय विदेशमंत्री ने जनवरी, 2000 में बांग्लादेश की यात्रा की तथा अगरतला-ढ़ाका बस सेवा आरम्भ करने पर सहमति जताई। फरवरी, 2000 में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने बांग्लादेश को यातायात सुविधाओ के विकास के लिए 400 करोड़ रुपये का सरल कर्ज देना भी स्वीकार किया 4 जुलाई, 2000

के दिन दोनों देशों में रेल द्वारा माल व्यापार को पुनः आरम्भ करने का समझौता किया तथा यह समझौता 21 जनवरी, 2001 से आरम्भ हो गया। अप्रैल, 2001 में इस क्षेत्र में एक बड़ा तनाव या झगड़ा पैदा हो गया। बांगलादेश ने पिरदीवा क्षेत्र में जो भारत के पास था उस पर कब्जा जमा लिया जिससे जवाबी कार्यवाही के लिए भारत ने बी०एस०एफ० को इस क्षेत्र में भेज दिया। भारतीय बी०एस०एफ० के 16 जवानों को बांग्लादेश राइफल्स के 700 जवानों ने घेर लिया तथा हत्या कर दी जिससे दोनों देशों के सम्बन्धों में कड़वाहट पैदा हो गई। लेकिन दोनों सरकारों की सूझ-बूझ से मामला शांत हो गया।

जून, 2002 में बांग्लादेश के विदेश मंत्री ने भारत की तथा अगस्त, 2002 में भारतीय विदेश मंत्री ने बांग्लादेश की यात्रा की। दोनों देशों द्वारा सम्बन्धों को गतिशीलता प्रदान करने के लिए प्रयास जारी रहे परन्तु कुछ तत्वों जैसे भारत विरोधी गुटों की बांग्लादेश में सक्रियता, भारत विरोधी प्रचार के कारण सम्बन्धों में अधिक प्रगति नहीं हो सकी। जनवरी, 2003 में साझे कार्य समूह की एक बैठक ढ़ाका में सम्पादित हुई। फरवरी, 2003 को बांग्लादेश के विदेशमंत्री ने भारत की यात्रा की तथा गैर कानूनी रूप से सीमा पार करने वालों के मुद्दे पर उच्च्य स्तरीय वार्तालाप किया तथा दोनों देशों ने निर्णय लिया कि 1992 के समझ के स्मरण पत्र के आधार पर कार्य किया जाए तथा बल प्रयोग से दूर रहा जाए। दिसम्बर, 2003 से जनवरी, 2004 तक बांग्लादेश द्वारा आतंकवादियों के विरूद्ध एक अभियान चलाया गया जो भारत के लिए एक सकारात्मक कदम था तथा दोनों देशों में विश्वास की बहाली हुई।

दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों में विकास तो निरन्तर होता रहा, परन्तु वह गति नहीं आई जो आनी चाहिए थी। बेगम खालिदा-जिया (बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी) की सरकार ने भारत के साथ उतनी तन्मयता तथा समीपता नहीं दिखाई जितनी कि शेख हसीना (अवामी लीग) की सरकार ने सम्बन्धों को विकसित करने का प्रयास करने के लिए किया था।

उधर खालिदा जिया ने चीन के साथ सम्बन्धों को विशेष प्राथमिकता प्रदान किया जिससे भारत के साथ हो रही सम्बन्धों की प्रगति ने गतिशीलता को कम कर दिया। सार्क सम्मेलन में (2004) प्रधानमंत्री वाजपेयी ने बांग्लादेश के साथ सम्बन्धों को दृढ़ करने की इच्छा को पुनः दोहराया। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा किये गये प्रयासों से बांग्लादेश के साथ बिगड़ रहे भारत के सम्बन्धों में निरन्तर सुधार आया तथा 'बस कूटनीति' एवं रेल कूटनीति' तथा आर्थिक सहायता द्वारा परस्पर

सम्बन्धों को सकारात्मक गति प्रदान करने की कोशिश की जो एक हद तक सफल कही जा सकती है।

भारत के परमॉणु परीक्षाणें के बाद श्रीलंका ने संतुलित प्रतिक्रिया व्यक्त की। 29-30 जुलाई 1998 को कोलम्बों में सम्पन्न 10वें सार्क सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री वाजपेयी तथा श्रीलंका के राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमार तुंगे ने द्विपक्षीय सम्बन्धों पर विस्तृत बातचीत की तथा व्यापारिक सम्बन्धों पर जोर दिया। 27 दिसम्बर, 1998 को तीन दिवसीय भारत दौरा चन्द्रिका कुमार तुंगे ने किया तथा दोनों देशों के मुक्त व्यापार क्षेत्र की स्थापना के लिए एक ऐतिहासिक समझौते पर हस्ताक्षर किए। सार्क का श्रीलंका पहला ऐसा देश है जिसके साथ भारत ने मुक्त व्यापार समझौता किया तथा भारत ने राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमार तुंगे को विश्वास दिलाया कि वह श्रीलंका के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। उस समय मुक्त व्यापार समझौते का क्रियान्वयन तमाम कारणों से नहीं हो सका। कारगिल युद्ध में जहां लिट्टे ने भारत के प्रति सहानुभूति दिखलाई वहॉ श्रीलंकाई सरकार अन्दर से पाकिस्तान के प्रति समर्थित दिखाई पड़ी। श्रीलंका की सरकार तथा लिट्टे के मध्य भारत ने कभी मध्यस्थता की भूमिका निभाने का प्रयास नहीं किया जिससे विदित होता है कि भारत ने श्रीलंका की आन्तरिक राजनीति में किसी प्रकार की कोई रूचि नहीं दिखाई।

भारत लिट्टे तथा सरकार के बीच मध्यस्थता को नकारता रहा तथा किसी बाहरी देश की मध्यस्थता भी उसे अस्वीकार थी क्योंकि यदि भारत लिट्टे तथा श्रीलंकाई सरकार के बीच मध्यस्थता पर समर्थन देता तो यह भारत तथा पाकिस्तान के मध्य 'कश्मीर' के प्रश्न पर भी तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप की मूक सहमति मानी जाती जो भारत के लिए कुठाराघात था। भारत-श्रीलंका के सम्बन्धों की गम्भीरता पर विचार करते हुए श्रीलंका की सरकार ने शान्ति प्रक्रिया की दिशा में किये जा रहे समस्त प्रयासों से भारत को अवगत कराया जिससे दोनों के मध्य पारस्परिक विश्वास में किसी प्रकार की कोई कमी न हो। 21 अप्रैल, 2000 को लिट्टे ने अत्यधिक सामरिक महत्व के तथा अभेद माने जाने वाले श्रींलका के सैन्य ठिकाने पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया जिससे सरकार के 20000 से 40000 सैनिक घिर गये।

श्रीलंका के इतिहास में लिट्टे द्वारा की गई सबसे बड़ी कार्यवाही थी। भारत से सहयोग की अपील की गई जिसे भारत ने अस्वीकार कर दिया क्योकि 1980 के दशक में भारत को श्रीलंका की सहायता करने की भारी कीमत चुकानी पड़ी थी। यद्यपि भारत ने दूर दृष्टि से देखते हुए श्रीलंका में सेना न भेजन

का निर्णय किया किन्तु वह समस्या के प्रति उदासीन नहीं था। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कहा कि यदि श्रीलंकाई सरकार किसी प्रकार की मानवीय सहायता लेना चाहती हो तो भारत तैयार है।

जून, 2000 को भारतीय विदेश मंत्री जसवन्त सिंह ने श्रीलंका की यात्रा की तथा श्रीलंका की क्षेत्रीय अखण्डता का समर्थन किया तथा 100 मिलियन डॉलर की आर्थिक सहायता की पेशकश भी की। फरवरी, 2001 को राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमारतुंगे ने भारत की यात्रा की तथा आर्थिक एवं सांस्कृतिक सहयोग पर बल दिया लिट्टे ने (प्रभाकरण) अप्रैल, 2002 में भारत के साथ पुराने रिश्ते स्थापित करने की इच्छा जताते हुए लिट्टे पर लगे 11 वर्ष पुराने प्रतिबन्ध को समाप्त करने का आगृह किया तथा भारत से श्रीलंका के साथ शान्ति वार्ता में मध्यस्थता करने का अनुरोध किया जिसे भारत ने अस्वीकार कर दिया। जून, 2002 में श्रीलंका के प्रधानमंत्री रानिल विक्रमसिंघे ने 3 दिवसीय भारत की यात्रा की। भारत ने रियायती दर पर श्रीलंका को 51 मिलियन डॉलर की आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया। जिससे विदित होता है कि भारत श्रीलंका के विकास में रूचि रखता है।

अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ आर्थिक सम्बन्धों को मजबूती प्रदान करने के लिए भारत के विदेशमंत्री यशवन्त सिन्हा ने जुलाई, 2002 को श्रीलंका गए तथा कोलम्बों में खुलने जा रहे भारतीय कैन्सर सेण्टर की स्थापना में 7.5 मिलियन डॉलर का योगदान दिया। फरवरी, 2003 में श्रीलंका के प्रधानमंत्री रानिल विक्रमसिंघे भारत यात्रा पर आए तथा सूचना प्रौद्योगिकी समझौते पर हस्ताक्षर किए। लिट्टे के साथ चल रही वार्ता (नार्वे की मध्यस्थता में) के छः दौरों के विषय में प्रधानमंत्री वाजपेयी को अवगत कराया। प्रधानमंत्री वाजपेयी के कार्यकाल में दोनों राष्ट्रों के बीच सम्बन्ध सन्तुलित और सौहार्दपूर्ण रहे। आपसी स्तर पर सम्बन्धों को विकसित करने के साथ-साथ अनेक वैश्विक मंचों पर भी दोनों राष्ट्रों ने एक दूसरे को सहयोग प्रदान किया।

भारत ने श्रीलंका को मानवीय एवं आर्थिक सहायता द्वारा मित्रता को बढ़ाने का भसरक प्रयास किया तथा उसकी एकता और अखण्डता का समर्थन किया। वाजपेयी के प्रधानमन्त्रित्व काल में भारत-श्रीलंका सम्बन्धों में गुणात्मक एवं मात्रात्मक रूपान्तरण हुआ है। राजनीतिक सम्बन्धों में घनिष्ठता आयी है और व्यापार तथा निवेश में वृद्धि हुई। आधारभूत ढांचा विकसित हुआ तथा द्विपक्षीय सम्बन्धों में व्यापक सुधार हुए हैं। भारत एवं श्रीलंका के बीच दिसम्बर, 1998 में युगांतरकारी मुक्त

व्यापार समझौता हुआ जो मार्च, 2000 में क्रियान्वित हुआ। श्रीलंका भारत को तमिल मामलें में सक्रिय भूमिका निभाने की वकालत करता रहा है, परन्तु भारत इस विषय पर तटस्थ नीति बनाये हुए है क्योंकि भारत की विदेश नीति में किसी के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप का विरोध किया गया है।

अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार बनते ही नेपाल के साथ सम्बन्धों पर ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा क्योंकि सुरक्षा की दृष्टि से नेपाल को भारत का समर्थक होना नितान्त आवश्यक है। चीन की दृष्टि भी नेपाल की तरफ सहानुभूति पूर्वक विकसित हो रही है। परमॉणु परीक्षणों के बाद नेपाल ने एक सुलझा दृष्टिकोण अपनाया। दोनों के मध्य पारगमन सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। विदेश मंत्री जसवन्त सिंह ने नेपाल की यात्रा की। जुलाई, 2000 में नेपाली प्रधानमंत्री गिरिजाप्रसाद कोइराला ने भारत की यात्रा की तथा विभिन्न मुद्दों पर सकारात्मक वार्तालाप हुई। वाजपेयी ने नेपाल को यह विश्वास दिलाया कि भारत की धरती को किसी भी रूप में नेपाल के विरूद्ध प्रयोग नहीं करने दिया जाएगा।

सार्क 2002 में दोनों नेताओं ने आपसी सम्बन्धों को विस्तृत करने पर जोर दिया। नेपाली प्रधानमंत्री शेर सिंह देउवा ने भारत की यात्रा की तथा आतंकवादी गतिविधियों को समाप्त करने की प्रतिबद्धता दोहराई। 2002 के मध्य में नेपाल नरेश ने भारत की यात्रा की। भारत ने नेपाल को विश्वास दिलाया कि वह माओवादियों के विरूद्ध नेपाली प्रशासन द्वारा चलायी जा रही कार्यवाही में सहयोग करेगा। मार्च, 2003 में प्रत्यर्पण सन्धि पर विचार किया गया। फरवरी, 2004 में दोनों देशों के विदेश सचिवों की उपस्थिति में काठमाण्डू में दोनों देशों की राजधानियों को जोड़ने के साथ ही दोनों देशों के शहरों को भी जोड़ने का (बस मार्ग) समझौता किया।

कुल मिलाकर प्रधानमंत्री वाजपेयी ने नेपाल के साथ हमेशा मधुर सम्बन्धों को कायम रखने का प्रयास किया जिससे नेपाल का झुकाव चीन की तरफ न हो सके तथा दक्षिण एशिया में कोई शक्ति हस्तक्षेप न कर सके। नेपाल के आधारभूत ढांचे के विकास में प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा हर सम्भव सहायता दी गयी। नेपाल में माओवादिओं की सक्रियता से दोनों देशों के सम्बन्धों की उष्णता में कमी आ जाती है लेकिन फिर भी दोनों देशों के बीच सम्बन्ध सामान्य बने रहे।

अगस्त, 1998 में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने भूटान को यह आश्वासन दिया कि भारत हमेशा भूटान को आर्थिक सहायता देकर उसके आन्तरिक विकास में वृद्धि करने का निरन्तर प्रयास करता रहेगा। 1999

में 'भारत–भूटान मित्रता समाज' के गठन के बाद दोनों देशों के सम्बन्धों में समीपता आई है। पिछले कुछ समय से चीन भूटान पर अपना प्रभाव फैलाने की निरन्तर कोशिश करता रहता है जिससे भारत का ध्यान भूटान पर केन्द्रित होना लाजिमी है। 1999 की भूटान नरेश की यात्रा तथा पुनः सितम्बर, 2003 की यात्रा से सम्बन्धों में मजबूती आई तथा आतंकवाद के सफाये की संयुक्त पहल हुई तथा भूटान को आर्थिक सहायता दी गई। प्रधानमंत्री वाजपेयी की पहल का परिणाम है कि भारत-भूटान सम्बन्धों में निकटता आ रही है तथा समस्याओं को बातचीत के माध्यम से हल किया जा रहा है।

भारत के द्वारा मालद्वीव को आर्थिक सहायता पहुँचा कर तथा उसके विकास कार्यो में सहयोगी भूमिका निभाई है। सार्क सम्मेलनों में (1998, 2002, 2004) प्रधानमंत्री वाजपेयी ने मालद्वीप के राष्ट्रपति मैमून अब्दुल गयूम से विभिन्न मुद्दों पर बातचीत कर हर प्रकार के सहयोग एवं सहायता का आश्वासन दिया।

दक्षिण एशियाई क्षेत्र 'एशिया' में एक भू-राजनीतिक उप-इकाई का निर्माण करता है जिसकी एकता सदियों से जानी जाती है तथा जिसकी अपनी खास विशेषताएं हैं। यूरोप, लैटिन अमेरिका तथा आसियान जैसे क्षेत्र में भी कोई प्रभावशाली क्षेत्रीय शक्ति नहीं है जैसा कि दक्षिण एशिया में भारत की केन्द्रीय एवं प्रभावशाली स्थिति है तथा जिसकी सीमाएं दक्षिण एशिया के लगभग सभी देशों से मिलती है। अतः इस क्षेत्र की शांति एवं सुरक्षा के प्रश्न पर सभी को एक साथ प्रभावित करते हैं जो सम्बन्धित देशों की सम्प्रभुता एवं अखण्डता से सीधे जुड़े हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि इस क्षेत्र की भू-राजनीतिक संरचना, क्षेत्रीय भय एवं तनाव को जन्म देती है तथा अन्य देश भारत के प्रति शंकालु भी हैं। अतः भारत के प्रभाव को कम करने के लिए ये देश बाहर के देशों से सहायता लेना ज्यादा उचित समझते हैं।

भारत हमेशा क्षेत्रीय सहयोग, द्विपक्षीय वार्ता तथा समस्त समस्याओं को क्षेत्रीय स्तर पर हल करने पर जोर देता रहता है। यह बात अलग है कि प्रत्येक देश की अपनी घरेलू विवशताओं तथा भूराजनीतिक स्थिति के कारण अलग-अलग अवधारणां हैं। भारत का पाकिस्तानी द्वेषवश विरोध, नेपाल–भूटान का चीन एवं भारत के बीच 'वफरस्टेट' के कारण भयग्रस्त होना, बांग्लादेश का तीन ओर से भारतीय सीमा से घिरा होना तथा मालद्वीव एवं श्रीलंका हिन्दमहासागरीय राजनीति से भयग्रस्त है।

नेपाल अपने देश को 'शांतिक्षेत्र' घोषित करने की मांग करता है तो भारत श्रीलंका एवं मालद्वीव हिन्द महासागर को शांति क्षेत्र बनाये जाने पर बल देते है।

भारत इस क्षेत्र की केन्द्रीय शक्ति है, लेकिन इसकी यह समस्या है कि वह अपने पड़ोसियों के साथ सम्बन्धों को कैस मधुर बनाये, विशेष रूप से तब जब भारत का कोई न कोई पड़ोसी देश उसके साथ किसी न किसी प्रकार का प्रतिरोध प्रदर्शित करता रहता है। बाहरी शक्तियां भी इसमें भारत विरोधी वातावरण बनाने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोगी रहीं हैं। यही कारण है कि पाकिस्तान यदि अणुशक्ति-विहीन का प्रस्ताव रखता है तो नेपाल स्वयं को शांति क्षेत्र घोषित करने का दबाव डालता है बांग्लादेश पानी की समस्या का रोना रोता तथा श्रीलंका जातीय संघर्ष का दोषारोपण करता है। अतः अवनरत खटास एवं तनाव इस क्षेत्र की नियति बन चुके हैं। दक्षिण एशिया के लगभग सभी देशों में विजातीय समाज की संरचना पायी जाती है जिनसे राजनीतिक तनाव पैदा होना स्वाभाविक है जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं।

यही कारण है कि सीमावर्ती इलाकों में सन्देह का वातारण हमेशा बना रहता है। लगभग सभी देशों में एक अच्छा खासा प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे जीने को बाध्य है और उस पर भी क्षेत्रीय सहयोग के बजाय पाकिस्तान का इस्लामिक देशों से प्रगाढ़ता नेपाल का चीन के प्रति झुकाव तथा श्रीलंका का अमेरिका सहित 'आसियान' देशों से आर्थिक सम्बन्धों को ज्यादा महत्व देना परस्पर क्षेत्रीय मतभेद एवं तनाव पैदा करने वाली गतिविधियां हैं जिनसे बाहरी शक्तियों को इस क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का मौका मिलता है।

इन सारी समस्याओं के समाधान हेतु सबसे महत्वपूर्ण यह है कि दक्षिण एशियाई देशों में हर हालत में 'परस्पर विश्वास' का वातावरण बनाया जाना चाहिए जिसे बखूबी निभाया भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने। आपसी सौहार्द से ही दिल जीते जा सकते हैं। किसी करिश्माई चमत्कार की आशा करना व्यर्थ है। इस दृष्टि से 'सार्क' उपयोगी सिद्ध हो सकता है। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने छोटे राष्ट्रों की समस्याओं को समझा तथा उसी आधार पर विदेश नीति का निर्माण किया।

पाकिस्तान के साथ प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा सम्बन्धों को सुधारने के लिए अनेक प्रयास किए गए जिसमें बस द्वारा पाकिस्तान की यात्रा जिससे एक-दूसरे के यहाँ लोगों का आना-जाना हो सके ताकि

परस्पर विश्वास कायम रहे तथा मधुर समबन्धों का विकास हो। पाकिस्तान के लिए व्यापारिक एवं मानवीय सहायता दी। खेल सम्बन्धों को विकसित कर समीपता लाने का प्रयास किया। आगरा में राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ को बुलाकर बातचीत के माध्यम से समस्या समाधान का प्रयास किया जो विफल रही। छोटे देशों को आर्थिक सहायता देकर तथा व्यापारिक सम्बन्धों को मजबूत बना कर क्षेत्र में शांति स्थापना की पहल की।

आतंकवाद के समूल उन्मूलन का विश्व के साथ मिलकर सफाया करने की बात की। छोटी-छोटी समस्याओं को आपसी स्तर पर हल करने का भरसक प्रयास किया तथा आंशिक रूप से सफल भी हुए। गरीब देशों को आर्थिक सहायता पहुंचायी, लोकतन्त्र के विकास में सहयोग दिया तथा राष्ट्रों की एकता एवं अखण्डता पर जोर दिया। संक्षेप में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की विदेश नीति क्षेत्र के प्रति सहयोगात्मक, सद्भावनापूर्ण, अनुशासनात्मक, परस्पर विश्वास पर आधारित स्वायत्तता तथा सम्प्रभुता को बनाये रखने वाली, राष्ट्रीय सीमाओं को सुरक्षित रखने वाली, राष्ट्रीय हितों के अनुकूल तथा वैश्विक दृष्टिकोण की मानसिकता वाली व्यापक थी जिस पर चलकर दक्षिण एशिया के सभी राष्ट्रों के मध्य सम्बन्ध मधुर बनाया जा सकता है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण

मैंने शोध कार्य प्रारम्भ करने से पहले कुछ परिकल्पनाओं का निर्माण किया था कि इस शोध कार्य से क्या निष्कर्ष निकल सकते हैं ? प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की दक्षिण एशिया के प्रति विदेश नीति से क्या परिवर्तन हुआ तथा राजनीतिक एवं कूटनीतिक क्षेत्र में क्या प्रगति या अवनति हुई आदि कई पहलुओं के विषय में मैंने परीक्षण किया तथा कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। जो निम्नवत हैं -

दक्षिण एशिया के प्रति भारतीय विदेश नीति में वाजपेयी के प्रयासों से शान्ति स्थापना में योगदान :-

प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा दक्षिण एशिया के देशों के साथ हमेशा सहयोगात्मक रवैया अपनाने की कोशिश की गई। पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों को मधुर बनाने के लिए वाजपेयी द्वारा 'बस कूटनीति' के माध्यम से पाकिस्तान की यात्रा की गई, विभिन्न प्रकार के समझौतों पर विचार विमर्श किया गया। शांति बहाली हेतु सचिव स्तरीय वार्ता प्रारम्भ की गई तथा वे सारे हथकण्डे अपनाने का प्रयास किया गया जिससे दोनों देशों के मध्य शांति स्थापित होने में सहायक सिद्ध हो सके। लेकिन सारे प्रयासों के बावजूद प्रधानमंत्री वाजपेयी इस क्षेत्र में (शांति हेतु) सफलता प्राप्त नहीं कर सके। वाजपेयी जी का पाकिस्तान से लौटना हुआ और कारगिल में युद्ध प्रारम्भ हो गया। समय-समय पर पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवादियों द्वारा निर्दोष लोगों को मौत के घाट उतार दिया जाता है। सीमा पर चौकसी लगातार दोनों देशों द्वारा की जा रही है। बांग्लादेश के सैनिकों ने भी कुछ निर्दोष भारतीयों को मौत के घाट उतार दिया। श्री लंका में लिट्टे की कार्यवाहियों द्वारा भी क्षेत्र में शांति स्थापना में रुकावटें आई तथा इस समय भी रुकावटे जारी हैं।

प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा दक्षिण एशिया में शांति स्थापना हेतु ठोस कदम उठाए लेकिन उसका कोई सकारात्मक परिणाम प्राप्त न हो सका। इस प्रकार शोधार्थी इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वाजपेयी की नीतियों से दक्षिण एशिया में शांति स्थापित नहीं हो सकी। समय-समय पर क्षेत्र में होने वाली आतंकवादी घटनाएं अशांति की सूचक है। हाँ प्रधानमंत्री वाजपेयी के प्रयासों से संवाद का सिलसिला अनवरत रूप से चला है जिससे दक्षिण एशिया में रचनात्मक भूमिका का विकास निर्मित हो रहा है। तथा भविष्य में आतंकवाद पर नियन्त्रण भी संभव हो सकता है जिससे शांति बनाये रखने में मदद मिल सकती है।

कूटनीतिक क्षेत्र में वाजपेयी की नीतियों से नवीन उपलब्धियाँ :-

दक्षिण एशिया के प्रति प्रधानमंत्री वाजपेयी की नीतियों का परिणाम सकारात्मक रहा है। प्रधानमंत्री वाजपेयी की कूटनीति का ही परिणाम था कि राष्ट्रमण्डल से पाकिस्तान का निलम्बन हुआ तथा परमॉणु परीक्षणों के बाद वैश्विक परिदृश्य में अलग-थलग पड़ा भारत कुछ समय में ही अपनी मौलिक स्थिति को प्राप्त कर सका। पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल परवेज़ मुशर्रफ भारत आए तथा आगरा शिखर वार्ता हुई। हालांकि आगरा शिखर वार्ता सफल नहीं हो सकी लेकिन शांति स्थापना का क्रम अनवरत् जारी रहा। बांग्लादेश के साथ भी सीमा विवाद को स्पष्ट करने के लिए सचिव स्तरीय वार्ताएं प्रारम्भ हुई। वाजपेयी की सफल कूटनीति का ही परिणाम है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का कद बढ़ा तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता का विश्व के ज्यादातर देशों ने प्रत्यक्ष रूप से समर्थन किया तथा दक्षिण एशिया के देशों के प्रतिनिधियों का एक दूसरे देशों के यहाँ आने-जाने का सिलसिला जारी रहा। कूटनीतिक क्षेत्र में प्रधानमंत्री वाजपेयी की नीतियाँ अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में सफल सिद्ध हुई।

युद्ध तथा आतंकवाद के सम्बन्ध में वाजपेयी की नीतियों का परीक्षण :-

शोधार्थी, शोधकार्य के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रधानमंत्री वाजपेयी की नीतियां आतंकवाद को समाप्त करने में निष्फल साबित हुई हैं क्योंकि पाकिस्तान की यात्रा के बाद कारगिल युद्ध (1999) हुआ। आतंकवादियों द्वारा संसद पर हमला (2001) किया गया, अक्षरधाम मन्दिर की घटना, जम्मू-कश्मीर विधानसभा पर हमला तथा सीमा पर अक्सर होने वाली घटनाएं तथा भारत के अन्दर भी सक्रिय आतंकवादी गतिविधियां आदि के कारण मैं कह सकता हूँ कि प्रधानमंत्री वाजपेयी की नीतियां युद्ध तथा आतंकवाद को रोकने में दक्षिण एशिया में असफल सिद्ध हुई।

सांस्कृतिक क्षेत्र में वाजपेयी के प्रयासों से दक्षिण एशिया के देशों के प्रति सहयोग, समन्वय तथा सांस्कृतिक एकता की संभावना :-

सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रधानमंत्री वाजपेयी की नीतियाँ दक्षिण एशिया के देशों के प्रति सकारात्मक रहीं अर्थात् सफल रहीं। पाकिस्तान के साथ 'क्रिकेट कूटनीति' द्वारा दोनों देशों के मध्य बढ़ी खाई को

कम करने में सफल रहीं। विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का एक दूसरे देशों में संचालित करने से एकता की भावना पैदा हुई। बांग्लादेश, नेपाल, मालद्वीव तथा श्रीलंका के साथ बहुपक्षीय सांस्कृतिकता का सृजन प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा किया गया जिसके कारण सभी दक्षिण एशिया के देश एक दूसरे के नजदीक आए और इसके माध्यम से समस्याओं को हल करने का भरसक प्रयास किया गया।

आर्थिक क्षेत्र में प्रधानमंत्री वाजपेयी की नीतियों की प्रासंगिकता :

प्रधानमंत्री वाजपेयी की नीतियाँ आर्थिक क्षेत्र में सफल रहीं। व्यापार में अपने पड़ोसियों के साथ ज्यादा भागीदारी पर बल दिया ताकि एक दूसरे देशों का परस्पर विकास हो सके। छोटे तथा गरीब देशों जैसे नेपाल भूटान तथा मालद्वीव को आर्थिक सहायता पहुंचायी पाकिस्तान तथा श्रीलंका एवं बांग्लादेश को भी सहायता पहुंचाई जिससे बड़े भाई की भूमिका को बखूबी निभाया।

सामरिक क्षेत्र में तनाव कम करने में विदेश नीति की भूमिका :

दक्षिण एशिया के प्रति प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा जो नीतियां बनाई गईं या उन नीतियों पर जो कार्यान्वयन किया गया उससे निष्कर्ष निकलता है कि सामरिक दृष्टिकोण से तनाव में कोई कमी नहीं वरन् बढ़ोत्तरी हो रही हे। 11 मई व 13 मई, 1998 को भारत द्वारा 5 परमॉणु परीक्षण किए गए तो बदले में पाकिस्तान ने 6 परमॉणु परीक्षण किए। पाकिस्तान को लगातार अपनी सामरिक क्षमता में वृद्धि कर रहा है तथा रक्षा बजट में भारी भरकम वृद्धि करता रहता है। पाकिस्तान अमेरिका से भी सामरिक मदद मिल रही है। बांग्लादेश भी भारत को शंका की दृष्टि से देखता है तथा रक्षा पर वृद्धि कर रहा है। नेपाल माओवादियों से युद्धरत होने के कारण अपनी सैन्य क्षमता को बढ़ा रहा है। श्रीलंका सरकार लिट्टे से लगातार होने वाले संघर्ष के कारण अपने को सैन्य साजों सामान से सुसज्जित कर रहा है। हिन्दमहासागर में बड़ी शक्तियों (राष्ट्रों) की उपस्थिति मालद्वीव को भी सामरिक रूप से मजबूत बनाने के लिए विवश कर रही है।

पाकिस्तान को अमेरिका तथा इज्राइल द्वारा प्राप्त सामरिक सहयोग तथा लगातार रक्षा बजट में वृद्धि और समय-समय पर किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के परीक्षण, बांग्लादेश सीमा से अवैध घुसपैठ, दक्षिण की तरफ से लिट्टे का खतरा, नेपाल तथा भूटान के प्रति चीन की सहानुभूति तथा भारत के

अन्दर आतंकवादियों का जाल आदि बहुत ऐसे कारण हैं जिससे भारत भी अपनी सामरिक क्षमता को कमजोर सिद्ध नहीं होने देना चाहता है, जिससे क्षेत्र में तनाव में वृद्धि होना लाजिमी है। शोधार्थी ने परिकल्पनाओं के परीक्षण से यह निष्कर्ष निकाला कि प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की दक्षिण एशिया के प्रति विदेश नीति के तहत (5 परमॉणु परीक्षण करके) सामरिक क्षेत्र में वृद्धि हुई है तथा उस वृद्धि को और बढ़ाने के लिए सभी पड़ोसी देश हमेशा तनाव की स्थिति में रहते है।

प्रधानमंत्री वाजपेयी की नीतियों के केन्द्र में हमेशा जन कल्याण रहा है चाहे गृह नीति हो- (जैसे-नदी जोड़ो परियोजना जिसमें पूरे भारत की नदियों को जोड़ने की योजना थी ताकि बाढ़ तथा सूखे से बचा जा सके) प्रधानमंत्री ग्राम सड़क परियोजना जिसमें सभी गॉवों को पक्की सड़कों से जोड़ने की योजना है ताकि ग्रामीण लोग शहर तक सुविधा के साथ आवागमन कर सके, अन्त्योदय योजना, अन्नपूर्णा योजना आदि भाँति-भाँति की नीतियाँ थीं जिससे जनता का अधिक से अधिक कल्याण हो सके) या विदेश नीति। जनता के कल्याण हेतु प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रयास किए गए जिसमें 1 अगस्त, 1998 से सार्क देशों के लिए मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लेने के साथ ही क्षेत्र भर में व्यापार उदारीकरण तेज करने के लिए पहल की जिसमें 2000 से अधिक उत्पादों को मुफ्त सामान्य लाइसेन्स के अन्तर्गत रखा गया।

11वें सार्क शिखर सम्मेलन में (2002 काठमाण्डू) प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कहा कि आर्थिक एजेण्डे को सार्क में सर्वोपरि माना जाए तथा क्षेत्र के देशों के बीच व्यापार संवर्द्धन तथा सार्क द्वारा गठित गरीबी उन्मूलन आयोग को पुनः सक्रिय करने पर जोर दिया। 12वें सार्क सम्मेलन (जनवरी, 2004) में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने सार्क देशों की गरीबी मिटाने के लिए 10 करोड़ डॉलर की सहायता की पेशकश की, सार्क के स्वायत्त गरीबी उन्मूलन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के लिए कार्यदल के गठन पर जोर दिया तथा इस पर आने वाले खर्चा को भारत द्वारा वहन करने की बात प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कही तथा सार्क देशों के बीच रेल, सड़क वायु एवं जलमार्ग परिवहन व्यवस्था मजबूत करने के लिए सार्क कार्यदल के गठन पर जोर दिया।

इस प्रकार प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा जनकल्याण के क्षेत्र में दक्षिण एशिया के लिए निरन्तर प्रयास किये गये। अपने पड़ोसियों खासकर पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान तथा मालद्वीव के प्रति राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के मुखिया प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा जो नीतियाँ बनाई गई

वो क्षेत्र के प्रति सहयोग, समन्वय विकास एवं शान्ति में सहायक सिद्ध होने वाली नीतियां रहीं। भले ही सब क्षेत्रों में प्रधानमंत्री वाजपेयी को सफलता प्राप्त न हो सकी हो किन्तु कुछ क्षेत्रों में भारी सफलता मिली है। कूटनीतिक क्षेत्र में भारत की स्थिति बेहतर बनी तथा वैश्विक परिदृश्य में भारत ने जोरदार उपस्थिति दर्ज करायी।

सांस्कृतिक कार्यो के माध्यम से एक दूसरे देशों की दूरी घटी। आर्थिक रूप से हमने समृद्धता का मोटा आवरण पहना। परमॉणु विस्फोट के माध्यम से हमने अपनी सम्प्रभुता, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा राष्ट्रीय हित को बनाए रखा। सामरिक क्षेत्र में भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज में मजबूत उपस्थिति दर्ज करायी तथा आत्मनिर्भरता की ओर ज्यादा अग्रसारित हुए। राजनीतिक क्षेत्र में हमारा दबदबा केवल दक्षिण एशिया तक ही नहीं अपितु पूरे विश्व में कायम हुआ। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को एक ईमानदार नेता के रूप में जाना गया तथा पूरी दुनिया में उनकी ख्याति फैली।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की विदेश नीति ने भारत को विश्व में एक गौरवपूर्ण तथा गरिमापूर्ण स्थान दिलाया विशेषकर दक्षिण एशिया में। दक्षिण एशिया के देशों के साथ भारत के सम्बन्धों में कटुता कम हुई तथा सृजनात्मक भूमिका का विकास हुआ और परस्पर वार्तालाप के माध्यम से आपसी समस्याओं को हल करने में सहायता मिली।

(स) सुझाव

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ''दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति (प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के विशेष सन्दर्भ में)'' में दक्षिण एशिया के देशों के प्रति भारत की विदेश नीति को रेखांकित किया गया है। क्षेत्रीय स्तर पर दक्षिण-एशियाई राज्यों के साथ भारतीय संबंधों में कई उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यकाल और उसके बाद का समय दक्षिण एशियाई राज्यों में गंभीर राजनैतिक परिवर्तनों का रहा है जिनमें वहाँ लोकतन्त्रात्मक राजनीतिक प्रणाली स्थापित करने वाले संघर्ष महत्वपूर्ण (नेपाल तथा भूटान में लोकतंत्र के विकास के लिए संघर्ष) हैं। इन विचारों के फलस्वरूप भारत के साथ दक्षिण एशियाई राज्यों के सम्बन्धों की नए दृष्टिकोण से व्याख्या हुई है। प्रस्तुत शोध के माध्यम से भारत की भूमिका को दक्षिण एशिया के प्रति प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के शासनकाल में सुनिश्चित करना है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हुए परिवर्तन का विश्लेषण क्षेत्रीय स्तर पर किया जाना भी आवश्यक है, विशेषतः दक्षिण एशिया के संदर्भ में। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भारतीय विदेश नीति के लिए इस बदलाव का आंकलन करना महत्वपूर्ण है क्योंकि यही वह क्षेत्र है, जहाँ हमारी विदेश नीति के सबसे अधिक हित जुड़े हैं। दक्षिण एशिया क्षेत्र की एक बहुत ही महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह क्षेत्र भारत के आकार और उसके सभी राज्यों के साथ और उन प्रभावों के कारण इस क्षेत्र को भारत केन्द्रित क्षेत्र कहना अतिशयोक्ति नहीं है। इस क्षेत्र के अन्य राज्यों तथा भारत के मध्य सैनिक, आर्थिक और संसाधनों की दृष्टि से गहन अन्तराल है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में आये परिवर्तनों के पश्चात भारत व पाकिस्तान के प्रति कुछ बदलाव देखे जा सकते हैं, जिसके अन्तर्गत अमेरिका, पाकिस्तान पर अणुशक्ति के प्रश्न, जम्मू कश्मीर व पंजाब में आतंकवाद को संरक्षण देने के विवाद में अपनी पुरानी स्थितियों और दृष्टिकोण में परिवर्तन किया है। वहीं अमेरिका तथा पाकिस्तान के संबंधों में यह लगता है कि पाकिस्तान के साथ अमेरिका अपने पुराने संबंधों को पूरी तरह समाप्त नहीं करते हुए भारत के प्रति नये संबंधों का संकेत देता है। क्षेत्रीय स्तर पर भारत के सम्बन्ध में चीनी दृष्टिकोण में परिवर्तन नजर आता है और भारत-चीन संबंधों में सामन्यीकरण दक्षिण एशिया की स्थितियों को अधिक सामान्य होने में सहयोग प्रदान करेगा। सोवियत संघ

के विघटन के पश्चात रूस के आंतरिक सम्बन्ध और आन्तरिक स्थितियों को समान्य बनाने की प्रक्रिया में उसके द्वारा दक्षिण एशिया में हस्तक्षेप के अवसर बहुत ही कम हो गये हैं। इस तरह वाह्य शक्तियों के द्वारा दक्षिण एशियाई क्षेत्र में हस्तक्षेप के अवसर बहुत कम हो जाते हैं।

⇨ वर्तमान में भारत-पाक सम्बन्ध कई कारणों से तनावपूर्ण बने हुए हैं। मुख्यतः कश्मीर में आतंकवाद को प्रोत्साहन एवं सहयोग पाकिस्तान के सैन्यीकरण और अणुशक्ति के लिए प्रयास आदि ऐसे हैं जो संबंधों के सामान्य होने में बाधक हैं। भारत-पाक संबंधों में तनाव के बढ़ने से इस क्षेत्र में तनाव और सैन्य प्रतिस्पर्धा निरन्तर बढ़ती रही, परिणामस्वरूप दक्षिण एशिया में शांति और सद्भाव के अवसरों को कम किया है, जिसका प्रभाव संपूर्ण क्षेत्र पर नजर आता है। आवश्यकता इस बात की है कि इन संबंधों के स्वरूप को बदलते हुए सहयोगात्मक संबंधों का विकास और तनावों को कम करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

⇨ दक्षिण एशिया के अन्य सदस्य देशों द्वारा स्वयं अपने संसाधनों के प्रभावी उपयोग के लिये यह महत्वपूर्ण है कि वे ऐसी व्यवस्थाओं का प्रभावशाली बनाये जहां आर्थिक सहयोग के क्षेत्रों में सामूहिक रूप से प्रयास किये जा सकें, क्योंकि यह सत्य है कि दक्षिण एशियाई देशों की अर्थव्यवस्था आपस में एक दूसरे पर निर्भर है और उनके मध्य आपसी सहयोग को बढ़ाकर इस क्षेत्र को अधिक विकसित करने के प्रयास करना चाहिए। भारत-पाकिस्तान संबंधों को अधिक स्थिरता और शांति के क्षेत्रों को व्यापक बनाने के लिए प्रयास करना एक उपयोगी विकल्प है। लाहौर बस यात्रा सम्बन्धों के सामन्यीकरण की प्रक्रिया का सबसे बड़ा चरण है।

⇨ दक्षिण एशिया के देशों में विश्व व्यापार की तुलना में व्यापारिक एवं औद्योगीकरण के क्षेत्रों में सहयोग बढ़ने के बजाय उसमें निरन्तर गिरावट आई है। नेपाल तथा श्रीलंका जैसे देशों के साथ भारतीय व्यापार काफी बढ़ाया जा सकता है। भारत, सार्क के अन्य देशों के लिए बाजार की दृष्टि से मुख्य स्थान रखता है। बांग्लादेश ने अपने प्रारूप प्रपत्र में कुछ निश्चित जिन्सों में व्यापार-बाजार बढ़ाने की बात स्पष्ट भी की है। जूट, कपास, चाय आदि में द्विपक्षीय आधार पर व्यापार सम्बन्ध विकसित भी हुए हैं जिसमें आपसी विश्वास में वृद्धि भी हुई है। व्यापार सहयोग विभिन्न स्तरों जैसे संयुक्त कस्टम संघ, स्वतन्त्र

व्यापारिक क्षेत्रों की स्थापना, अधिमान्य व्यापार तथा द्विपक्षीय व्यापार समझौते आदि से किया जा सकता है।

⇨ चूंकि सार्क के सभी देश विकासशील हैं और इस प्रकार के सहयोग की उन्हें आवश्यकता भी है। यदि उक्त स्तरों से व्यापार सम्बन्धों को विकसित किया जाये तो इससे परिवहन लागत एवं समय की बचत भी क्षेत्रीय देशों को प्राप्त होगा। इससे व्यापारियों, उत्पादनों तथा उपभोक्ताओं सभी को राहत मिलेगी। संयुक्त प्रयासों से सार्क के छोटे राष्ट्र भारत की केन्द्रीय भूमिका का लाभ उठा सकते हैं। जहाँ कंच्चे माल का भण्डार है वे पड़ोसी राज्य अपने अतिरिक्त उत्पादन को भारत के लिए निर्यात कर सकते हैं।

⇨ नेपाल, भूटान से सीमेण्ट, प्राकृतिक गैस तथा कागज बांग्लादेश से तथा रबर से बने माल श्रीलंका से भारत के लिये निर्यात किये जा सकते हैं तथा बदले में पड़ोसी राष्ट्र अपने यहां भारत की औद्योगिक व्यवस्था से प्रेरणा एवं लाभ कम लागत पर उठा सकते हैं। इससे विकसित देशों तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर निर्भरता कम होगी तथा क्षेत्रीय सहयोग का वातावरण निर्मित होगा जिससे दक्षिण एशिया के देश आत्म निर्भरता की दिशा में अग्रसर हो सकेंगें। दक्षिण एशिया के देश आपस में संयुक्त औद्योगिक नीति बनाकर बेरोजगारी तथा मानव शोषण से निजात पा सकते हैं तथा सभी देशों की अर्थव्यवस्था भी दृढ़ होगी। भारत और पाकिस्तान मिलकर नेपाल, भूटान, बांग्लादेश तथा मालद्वीव को इस दिशा में सहयोग दे सकते हैं। इन सबके लिए दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति की जरूरत है। जिसका विकास करके सभी देश समृद्धता की स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं।

⇨ दक्षिण एशिया में ऊर्जा संसाधनों का काफी विशाल क्षेत्र है जहां सामूहिक प्रयासों से आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकती है। गैस, कोयला तथा जलशक्ति की संभावनाओं का दोहन कर ऊर्जा संकट का सामना किया जा सकता है। सार्क क्षेत्र जलशक्ति का अक्षय भण्डार एकत्रित किये हुए है तथा सिंचाई की अच्छी सम्भावनायें हैं, केवल नेपाल में ही इतना जलशक्ति का भण्डार है जितना कनाडा, अमेरिका तथा मैक्सिको में मिलकर है। इतने विशाल भण्डार में से केवल आधे से कम भाग का ही दोहन किया जा रहा है शेष राजनीतिक कारणों से उपेक्षित पड़ा है। अतः भारत-नेपाल इस क्षेत्र में बहुत कुछ सहयोग कर सिंचाई, बाढ़ नियन्त्रण तथा जल विद्युत के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति कर सकते हैं। भूटान में भी जल

शक्ति काफी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। बांग्लादेश के ब्रहमपुत्र तथा भारत में गंगा नदी के मध्य दोनों देशों को जोड़ने वाली एक 'लिंक नहर' का निर्माण करके भारत बांग्लादेश जल बंटवारा विवाद को हमेशा के लिए निपटाया जा सकता है।

ये समस्याएं द्विपक्षीय हैं तथा इन्हें क्षेत्रीय दृष्टिकोण से विचार करने पर हल किया जा सकता है। इन समाधानों से जहां सिंचाई सुविधाएं तथा उनके नये क्षेत्र विकसित होंगे, वहीं खेती तकनीक एवं प्रौद्योगिकी में भी विकास होगा तथा अन्न उत्पादन में वृद्धि होगी तथा संकटकाल के लिए क्षेत्रीय खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों के लिये क्षेत्रीय संगठनों की भी स्थापना का मार्ग प्रशस्त होगा। इससे भूख से होने वाली मौतों से बचा जा सकता है। इस दिशा में क्षेत्र के सभी देशों को विचार करने की महती आवश्यकता है जिससे दक्षिण एशिया में भूख, अकाल तथा कमी का संयुक्त रूप से सामना किया जा सके। हालांकि सार्क देशों ने इसी दिशा में सोचतें हुए 20000 मिलियन टन गेहूँ एवं चावल का खाद्य भण्डार सुरक्षित रखने का निश्चय किया है जो सहयोग की दिशा में एक सकारात्मक कदम है।

⇨ भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, मालद्वीव तथा श्रीलंका के समुद्री क्षेत्र में भी सहयोग की काफी संभावनाएं है। बांग्लादेश में प्राकृतिक गैस के प्रचुर भण्डार हैं। इस ऊर्जा का विकास करके स्टील, रासायनिक खाद्य तथा उत्पादन क्षमताओं के विकास में दक्षिण एशिया में प्रयोग किया जा सकता है। दक्षिण एशिया के अन्य देश भारत की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति का लाभ ले सकते हैं।

⇨ दक्षिण एशियाई देशों के मध्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधार पर सहयोग के अनेक क्षेत्रों की संभावनायें विद्यमान हैं। चल-चित्र, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, क्षेत्रीय खेलों का आयोजन, साहित्य तथा हस्तकला आदि विभिन्न क्षेत्रों में आपसी सम्बन्ध विकसित कर सम्बन्धों को दृढ़ बना सकते हैं। परिवहन, संचार तथा उड्डयन क्षेत्रों में विकसित हो रहे सम्बन्ध सांस्कृतिक आदान-प्रदान को गति देने में सहयोगी सिद्ध होंगे।

⇨ क्षेत्रीय अन्तर्क्रियाओं के क्षेत्र में शिक्षा तथा वैज्ञानिक शोध का बहुत विस्तृत क्षेत्र है। शोध एवं उच्च अध्ययन सम्बन्धी अनुकूल वातावरण निर्मित करने में क्षेत्रीय सेमिनार्स तथा अन्य सामूहिक कार्यक्रमों को आयोजित कर सहयोग लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शैक्षणिक संस्थाओं जैसे-दक्षिण एशियाई

क्षेत्रीय विश्वविद्यालय या एशियन अध्ययन केन्द्र, इतिहास, कला, संस्कृति तथा भाषा आदि की स्थापना की जा सकती है जिससे क्षेत्रीय संस्कृतियों का आदान प्रदान हो सकता है तथा एक दूसरे देशों से लाभ लिया जा सकता है। इन सम्बन्धों की सुदृढ़ता से दक्षिण एशिया में परस्पर सहयोगपरक वातावरण का विकास हो सकता है। गैर सरकारी स्तर पर शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, विद्वानों, शोध संगठनों तथा संस्थायें आदि क्षेत्रीय सहयोग की दिशा में महती भूमिका निभा सकती हैं।

⇨ दक्षिण एशियाई देशों को प्रभावित करने वाली समस्याओं में राजनीतिक एवं सामरिक समस्याओं पर नये सिरे से विचार की आवश्यकता है। आमतौर पर इस प्रकार की समस्याएं संवेदनशील एवं जटिल विषयों, से सम्बन्धित होती हैं, इसलिये इनकी चर्चा बहुधा सरकारी बातचीतों, संभाषणों तथा सार्वजनिक मंचों पर बहुत कम होती है क्योंकि ये चर्चाए कटुता का वातावरण भी पनपाती हैं। अतः आवश्यक यह है कि आपस में मिलकर द्विपक्षीय या क्षेत्रीय आधार पर राजनीतिक चर्चाओं को गति प्रदान करें जिससे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक रूप से सामूहिक प्रगति हो सके। दक्षिण एशिया की भौगोलिक विवशताओं तथा ऐतिहासिक विकास ने इस क्षेत्र के विभिन्न देशों की सुरक्षा आवश्यकताओं में काफी समानताओं को जन्म दिया है लेकिन राजनीतिक विद्वेष ने ही इस आधारभूत समानता को कटुता प्रदान की है। अतः राजनीतिक नेतृत्व को आपसी सम्बन्धों में परिपक्वता लाने के लिए जरूरी है कि चर्चाओं, संवादों तथा बातचीतों के दौरों को गति प्रदान करने का अन्तर्मन से प्रयास करें जिससे क्षेत्र की कटुता तथा खटासता को कम कर सम्बन्धों को सहज तथा सहयोगपरक बनाया जा सके।

⇨ आज विश्व के सभी राष्ट्र तथा उनकी सरकारें आतंकवाद या इसी तरह की प्रवृत्तियों से पीड़ित हैं। यही कारण है कि लगभग सभी देशों की सरकारों की कार्यसूचियों में आतंकवाद उन्मूलन हेतु उच्च प्राथमिकताएं प्रदान की गयी हैं। आतंकवाद एक प्रकार से अघोषित युद्ध है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं का उल्लंघन कोई मायने नहीं रखता। आतंकवाद की अपनी कोई सीमा, समय, देश या धर्म नहीं होता। आतंकवाद सारे विश्व के लिए चिंता का विषय है।

⇨ आतंकवाद को नष्ट करने में दक्षिण एशिया क्षेत्र में अपेक्षित सफलता न मिलने के कारण भी हैं जैसेः भारत-पाकिस्तान, भारत-श्रीलंका, भारत-बांग्लादेश के मध्य कुछ यथार्थताओं का होना जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इन देशों की समस्याओं को हल किए बिना शांति असम्भव है।

भारत–पाकिस्तान के आतंकवाद के संदर्भ में अपने अलग–अलग जटिल नजरिये है। जिन्हें एकाएक सार्क के माध्यम से हल नहीं किया जा सकता, उनमें केवल नरमी लाई जा सकती है। यही स्थिति भारत–श्रीलंका के मध्य में है। यद्यपि तमिल समस्या के सन्दर्भ में भारत–श्रीलंका समझौता अवश्य हुआ जिसमें राजनीतिक वचनबद्धताओं के अलावा अन्य बातों को भी समझना या जिसे नजर अंदाज किया गया जिसका परिणाम भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गाँधी तथा श्रीलंका के राष्ट्रपति प्रेमदासा की लिट्टे द्वारा हत्या में परिणति हुई। अतः आतंकवाद को खत्म करने के लिए द्विपक्षीय वार्ताएं ही एक मात्र विकल्प है।

⇨ यद्यपि आतंकवाद तथा अन्य समस्याओं के सन्दर्भ में जो भी, तथा जिस किसी भी स्तर पर वार्ता हुयी उसमें अपेक्षाकृत सन्देहों तथा भ्रमों की ही ज्यादा वृद्धि हुयी तथापि इस तरह के परिणाम से निराश होने की आवश्यकता नहीं है। वार्तालाप जारी रखना दोनों देशों के हित में ही होगा। आतंकवाद के विस्तृत होने के दक्षिण एशिया में दो कारण हैं–प्रथम आतंक का निरन्तर विकास तथा द्वितीय, आतंकवाद के विकास एवं प्रसार को रोकने हेतु संयुक्त कार्यवाही का अभाव। दक्षिण एशिया में राष्ट्रीय निर्माण की प्रक्रिया में कई प्रकार के सामाजिक तनाव, धर्म, जाति, भाषा तथा क्षेत्रीय प्रवृत्तियों के रूप में उभरता है तथा आतंकवाद इन्ही तत्वों का सहारा लेकर आगे विकसित होता है तथा जाने अनजाने राष्ट्रों का एक दूसरे के विरूद्ध हथियार बन जाता है। भारत, पाकिस्तान तथा श्रीलंका के सन्दर्भ में यह यथार्थ मूल्यांकन है। अतः इन प्रवृत्तियों तथा तत्वों को हतोत्साहित करते हुए सामूहिक एवं एकजुट प्रयासों की आवश्यकता है, तभी आतंकवाद को नष्ट किया जा सकता है।

⇨ दक्षिण एशिया को यदि आतंकवाद मुक्त क्षेत्र रखना है तो सामूहिक रणनीति अपनानी होगी। द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय वार्ता द्वारा आम सहमति बनानी होगी तथा समझौते एवं संधियों का निष्पादन करना होगा। आतंकवादियों को एक दूसरे देश के विरूद्ध न उकसाया तथा भड़काया जाये तथा न ही उन्हे अपने देश में शरण दी जाये तथा प्रत्यर्पण की व्यवस्था करते हु आतंकवादियों की सम्पत्ति जब्त करने की प्रक्रिया भी विकसित एवं निर्मित करनी होगी। जिससे आतंकवादी हतोत्साहित होंगे। दक्षिण एशिया में 'सार्क', 'नाम' तथा संयुक्त राष्ट्र अभिसमयों के आधार पर एक अनुकूल वातावरण निर्मित किया जा सकता है जिससे आतंकवाद से मुक्ति के साथ-साथ शांति स्थापना में भी मदद मिलेगी। क्षेत्रीय संगठनों

की स्थापना द्वारा दक्षिण एशिया में व्याप्त समस्याओं को दूर कर विकास की सम्भावनाओं में वृद्धि की जा सकती है।

⇨ दक्षिण एशिया में शान्ति की स्थापना के लिए जरूरी है कि क्षेत्र के सभी देशों को चाहिए कि वे सैनिक साजो सामान में वृद्धि न करके विकासात्मक कार्यो में धन का प्रयोग करें जिससे क्षेत्र से गरीबी, भुँखमरी, बेरोजगारी को कम किया जा सके तथा जीवन को समृद्ध तथा सुखमय बनाया जा सके। सैनिक संधियों तथा सैनिक गठबन्धनों से दक्षिण एशिया के देशों को अलग रहना चाहिए तथा अपने को सृजनात्मक कार्यो में लगाना चाहिए। किसी भी प्रकार के क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संकट का राजनीतिक हल ढूंढ़ना चाहिए। परस्पर विश्वास का वातावरण बनाकर सम्बन्धों को विकसित करना चाहिए तथा किसी दूसरे देश की सीमाओं पर किसी तरह का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को बढ़ावा न देना चाहिए तथा इसकी समाप्ति में सहयोगी की भूमिका निभानी चाहिए जिससे आतंकवाद को क्षेत्र में पनपने का मौका ही न मिले। आर्थिक रूप से कमजोर राष्ट्रों को सहायता पहुंचायी जानी चाहिए जिससे क्षेत्र में समान रूप से विकसित होने का अवसर सभी देशों को मिल सके।

⇨ दक्षिण एशिया के सभी देशों को परस्पर मिलकर विकास की योजनाओं को लागू करना चाहिए तथा एक दूसरे देशों को सहायता पहुंचायी जानी चाहिए। शांति, निःशस्त्रीकरण, अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा तथा बौद्धिक प्रतिभाओं का आदान प्रदान करना चाहिए, क्योंकि शांतिपूर्ण वातावरण में सृजनात्मक विकास होता है, निःशस्त्रीकरण युद्ध की स्थिति को कमजोर बनाता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा से सामूहिक सुरक्षा की भावना का विकास होता है, और बौद्धिक प्रतिभाओं के आदान-प्रदान से विभिन्न देशों को प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, डॉक्टरों, प्रोफेसरों आदि की प्राप्ति होती है जो उस देश को आगे तक ले जाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

⇨ भारत को चाहिए कि वह आतंकवाद को पूर्ण रूप से (क्षेत्र से) समाप्त करने के लिए पाकिस्तान से बातचीत का सिलसिला प्रभावी स्तर से जारी रखे तथा बातचीत के क्रम में वह जम्मू कश्मीर के विभिन्न आतंकवादी संगठनों के समूह के प्रतिनिधियों को भी शरीक कर सकता है जिससे उनकी भावनाओं को समझकर कोई निर्णय लिया जा सके, क्योंकि बिना उनकी उपस्थिति के बातचीत के द्वारा सकारात्मक परिणाम प्राप्त नहीं हुआ है। सीमा पर उनके द्वारा किये जा रहे आतंकवादी कार्यवाहियों से

निर्दोष जनता तथा सैनिकों की मौतों का सिलसिला अनवरत रूप से चालू है। सीमा पर होने वाली आतंकवादी कार्यवाहियों को रोकने के लिए भारत को सुरक्षा के कड़े प्रभावी तथा विशेष प्रयास करने की जरूरत है ताकि अचानक होने वाली मौतों को त्वरित गति से रोका जा सके। दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्रिक देश के नागरिकों तथा सैनिकों की नृशंस हत्याएं लोकतन्त्र पर कठोर कुठाराघात साबित सिद्ध हो रही हैं। भारत को चाहिए की वह पाकिस्तान के साथ बहुमुखी सम्बन्धों का विकास सृजित करे जिससे दोनों देशों का ध्यान विकास और निर्माण पर लग सके।

⇨ पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी की लिट्टे द्वारा हत्या के बाद श्रीलंका की सरकार तथा लिट्टे के बीच निरन्तर हो रहे संघर्ष में भारत को तटस्थता बनाए रखने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए, क्योंकि भारत दक्षिण एशिया का केन्द्रीय देश है तथा क्षेत्र में होने वाली घटनाओं पर उसकी नजर होना जरूरी है। लिट्टे और श्रीलंका की सरकार के बीच होने वाले संघर्षो को भारत द्वारा "आन्तरिक-राजनीति" कहना मेरी समझ से बड़े देश द्वारा अपने उत्तरदायित्व से हटना है क्योंकि लिट्टे दक्षिण भारतीय लोगों का एक समुदाय है जो काम करने श्रीलंका गए थे तथा संख्या की अधिकता एवं काफी समय तक वहाँ रहने के कारण अपने अधिकारों की मांग कर रहे हैं।

भारत यह सोंच सकता है कि अगर वह लिट्टे तथा श्रीलंकाई सरकार के बीच मध्यस्थता का प्रयास करता है तो उसके और पाकिस्तान के मामलें में भी तीसरा देश मध्यस्थता कर सकता है। लेकिन भारत की यह सोंच गलत हो सकती है क्योंकि भारत एवं पाकिस्तान दो सम्प्रभु देश हैं जिनके मामलों में मध्यस्थता तर्क संगत नहीं है, लेकिन लिट्टे तथा श्रीलंकाई सरकार के मध्य भारत को श्रीलंका को विश्वास में लेते हुए समस्या का समाधान नितान्त आवश्यक है जिससे क्षेत्र में होने वाली आतंकवादी घटनाओं को समाप्त किया जा सके तथा विश्व पटल पर दक्षिण एशिया को शांतिपूर्ण क्षेत्र होने का गौरव और गरिमा प्राप्त हो सके।

⇨ भारत को बांग्लादेश के साथ निरन्तर बातचीत के द्वारा सीमा सम्बन्धी या अन्य समस्याओं का समाधान भी एक महती आवश्यकता है क्योंकि बांग्लादेश को अस्तित्व में लाने का श्रेय भारत को है तथा भारत एवं बांग्लादेश के मध्य किसी भी प्रकार का विवाद होना या आपस में किसी मसले को लेकर उलझे रहना भारत की कूटनीति की कमजोरी को बयॉ करता है। तथा इससे पाकिस्तान को बल मिलता है। अतः

आवश्यक है कि क्षेत्र में अपने स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए बांग्लादेश के साथ हमारे प्रभावपूर्ण तथा समरसतापूर्ण एवं विकासोन्मुख सम्बन्ध हमेशा कायम रहें।

⇨ दक्षिण एशिया में भारत की स्थिति केन्द्रीय होने के कारण भारत को यह चाहिए कि वह अपने छोटे पड़ोसियों (नेपाल, भूटान, मालद्वीव को भरपूर सहायता (आर्थिक, वैज्ञानिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक) देकर उनके विकास में सहायक बने तथा उन्हें अपना हितैषी बनाये। नेपाल तथा भूटान में पनप रही लोकतान्त्रिक व्यवस्था भी भारत के अनुकूल सिद्ध हो रही है तथा सम्बन्धों में क्रमिक विकास परिलक्षित हो रहा है।

पाकिस्तान को भारत की सीमा पर फैल रहे आतंवाद को सह देने से बाज आना चाहिए तथा भारत को आतंकवाद की समाप्ति में सहायता प्रदान करनी चाहिए तथा अमरीका या चीन से मिल रहे सामरिक सहयोग से दूर रहने की नीति का पालन करना चाहिए जिससे क्षेत्र में शांति का वातावरण पनप सके तथा शस्त्र होड की प्रतिस्पर्द्धा को कम किया जा सके।

⇨ बांग्लादेश को सदैव यह याद रखना होगा कि उसको अस्तित्व में लाने का श्रेय भारत को ही है। अतः बांग्लादेश को भारत को ध्यान में रखकर ही पाकिस्तान या चीन के साथ सम्बन्धों को विकसित करना चाहिए तथा क्षेत्र के विकास हेतु परस्पर सम्बन्धों को बहुमुखी बनाना चाहिए। श्रीलंका को चाहिए कि एक बहुत बड़े भाग में विस्तृत लिट्टे के साथ वार्तालाप के माध्यम से समस्या को दूर करने का प्रयास करे तथा इसमें भारत को भी सहयोग या मध्यस्थता के लिए न्योता दे सकता है। छोटे देशों के साथ सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की श्रीलंका को आवश्यकता है। मालद्वीव जैसे छोटे देश को सामरिक सुरक्षा तथा आर्थिक सुरक्षा श्रीलंका को देना चाहिए तथा भारत के साथ सहयोगपूर्ण नीति अपनाने का प्रयास करना चाहिए जिससे एक दूसरे के यहाँ व्यापारिक लेन-देन को बढ़ावा दिया जा सके तथा एक दूसरे देश की समस्याओं को मिलकर हल कर सकें।

⇨ नेपाल, भूटान को आवश्यक है कि अपने यहाँ से राजतन्त्रात्मक व्यवस्था को समूल रूप से हटाकर लोकतान्त्रिक प्रणाली को अपनाना चाहिए तथा भारत को एक बड़े भाई के रूप में देखना चाहिए तथा क्षेत्र में बड़ी शक्तियों को हस्तक्षेत्र करने का मौका किसी भी प्रकार से न देने का भरसक प्रयास

करना चाहिए। इन छोटे देशों को चाहिए कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति बाहरी शक्तियों के बजाय अपने उपमहाद्वीपीय देशों से करें तथा बड़े देशों के साथ सहयोगपूर्ण नीति अपनायें तथा मिलकर परस्पर आपसी विकास हेतु अग्रसर रहें।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में दक्षिण एशिया के प्रति भारत की विदेश नीति सहयोगपूर्ण, विकासपरक तथा संयमित एवं सृजनशील रही। वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ० मन्नमोहन सिंह के नेतृत्व में भी भारत की विदेश नीति कुछ एक परिवर्तनों के साथ प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की नीतियों का अनुसरण कर रही है जिससे दक्षिण एशिया में शांति एवं विकास की सम्भावना बनने के आसार नजर आ रहे हैं।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

- चन्द्रिका प्रसाद शर्मा (संपादक) : कुछ लेख कुछ भाषण-अटल बिहारी वाजपेयी, किताब घर, नई दिल्ली; 1996।
- डॉ० ना०मा० घटाटे (संपादक) : अटल बिहारी वाजपेयी-गठबन्धन की राजनीति, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 2004.
- चन्द्रिका प्रसाद शर्मा : कवि राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी किताब घर नई दिल्ली, 1997।
- अस्थाना एवं दीक्षित (संकलनकर्ता) : सुविकसित पुष्प अटल बिहारी वाजपेयी के श्रेष्ठतम भाषण, दीनदयाल उपाध्याय प्रकाशन लखनऊ, 1997।
- डॉ० पूनमचन्द्र तिवारी : अमृत-अटल,।
- वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा : भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- आर०एस०यादव : भारत की विदेश नीति एक विश्लेषण, किताब महल इलाहाबाद।
- डॉ० बी०एल० फडिया : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति; साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2006।
- वी०पी० दत्त : बदलती दुनिया में भारतीय विदेश नीति; हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय नई दिल्ली।
- जे०एन० दीक्षित : भारत-पाक सम्बन्ध (शांति एंव युद्धकाल में) प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली,।
- यू०आर० घई : भारतीय विदेश नीति : न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर 2004।
- पुष्पेष पंत : भारतीय विदेश नीति; न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर 2004,
- हरिमोहन सक्सेनाः राजनीतिक भूगोल : मेरठ प्रकाशन, 1991।
- कृष्णनाथ सिंह, जगदीश सिंह एण्ड बच्चा प्रसाद राव : एशिया का प्रादेशिक स्वरूप वेस्टर्न; प्रिन्टर्स इलाहाबाद, 1984।
- पी०डी० कौशिकः भारत की विदेश नीति; मिश्र ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 2002।
- जे०एन० दीक्षित : भारतीय विदेश नीति; प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली 2006।
- डॉ० एन०के० श्रीवास्तव : भारत और विश्व राजनीति, साहित्य भवन आगरा, 1987।
- के० सुब्रमण्यमः भारत की परमॉणु नीति।

- असगर अली इंजीनियर : भारत–पाक सम्बन्ध; शांति एवं युद्ध काल में।
- अटल बिहारी वाजपेयी : शक्ति से शांति की ओर।
- डॉ० रामद्वेव भारद्वाज : भारत और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध ; मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2005।
- शीला ओझा : 1990 के दशक में भारतीय विदेश नीति एक अध्ययन; प्रिन्टवैल पब्लिशर्स जयपुर, 2000।
- टी०एन० कौलः अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध।
- एम०सी० छागलाः भारत की विदेशनीति–अटल बिहारी वाजपेयी, नई दिल्ली, 1979।
- शीला ओझाः भारतीय विदेश नीति का मूल्यांकन; प्रिन्टवैल बुक्स प्रा०लि०, जयपुर, 2000।
- V.P. Dutta : India's Foreign Policy : Vikas Publishing House New Delhi.
- Vasant Sathe : Towards Social Revolution;
- A.T. Embree : Indian civilization and two regional cultures in Paul wallace (ed) region and nations in India.
- J.C. Jauhri : Elements of Political geography, New Delhi, 1991,
- Craig baxter : The heritage of Pakistan in Baxter malik, Kennedy and Oberai; The govt. and Politics in South Asia,
- Damodar P-Singhal : Pakistan new Jersey, Printice hallinc, 1972,
- W. Howard Wriggins : Ceylone Dilemmas of a new Nation, young Asia Publication, New Delhi, 1980,
- Snodgrass, Donald R. Ceylone : An expert economy in transition , 1991
- Lokraj baral : The politics of Balance of inter dependence : Nepal and SAARC, Sferling Publication. New Delhi. 1988,
- J.L. Mewa farosh : Bhutan- A Political Constitutional and administrative analysis 1947 to Present.

- Urmila Phadnis and ILa dutta : Luithui- Maldives Winds of Change in an State South Asian Publication, New Delhi, 1985,
- H.A. Maniku : The Maldives Island- A Profile. 1977,
- J.P. anand : Focus on Maldives century.
- Nancy Jetley : "India and domestic turmoil in South Asia". In "Domestic Conflicts in South Asia" (ed) South Asian Publishers New Delhi, 1986.
- P.V. Narsimharao : The Then foreign minister. New Primeminister of India in "Domestic Conflicts in South Asia" New Delhi, 1986.
- Sisir Gupta : The power Structure in South Asia " Problems of Stability, round table London. Apr. 1977.
- Bhawani Sen Gupta : "South Asian Perspectives" D.K. fine arts Press New Delhi, 1988.
- B.J. Dev and D.K. Lahiri : "Assam Muslims : Political Cohesion" Mittal Publishers New Delhi. 1983.
- Thomas Sowell : "The economic and Politics of race- an International perspective" Newyork . 1983,
- A Tayyeb : Pakistan- Political Geography; Oxford university Press London, 1966
- Fedrick H. Gaige : " Regionalism and National Unity in Nepal" Burkeley University. Cailifornia, 1975.
- S.P. Verma : " The Crisis in South Asia, An over view- "Domestic Conflicts in South Asia" (ed) by B.S. Gupta, Vol. 1, 1986.
- Indira nath Mukharjee : Attitudes and Perceptions in South Asia- Stability and regional Cooperation ed, M.S. Anuragi, CRRID, Chandigarh, 1983.
- Brijmohan : "Trade Prospects" World focus, Vol 3, No-3 March, 1983.
- S.S. Bindra : "Indo Pak Relations" Deep and Deep Publishers New delhi, 1981.

- Pran Chopra : Regional Cooperation World focus vol 4, No-11-12 Nov-Dec. 1983
- R.S. Yadav : Trends in The Studies of Indian Foreign Policy; Inter national Studies, Vol-30 Jan-March, 1993.
- George Modlaski; A theory of foreign Policy, London, 1962.
- Felix gross: Foreign Policy analysis. Newyork, 1954.
- J. Bandopadhyay: The Making of India's foreign Policy Allied Publishers New Delhi, 1979.
- Baljeet Singh : Indian Foreign Policy; An analysis, London, 1976.
- A. Appadorai : Domestic roots of India's foreign Policy. 1947-72 Oxford University press Bombay, Calcutta, Madras, 1961,
- M.G. Gupta : India's Foreign Policy; Theory and Practice. Y.K. Publishers. 8 Parasuram Nagr, Shahganj, Agra,
- Nehru : India's Foreign Policy, Publication Division Govt. of India, Delhi, 1961.
- Michael Brecher : India's Foreign Policy; An Interpretaion Institute of Pacific relation's, 1957.
- L.P. Singh : India's Foreign Policy; Uppal Publishing House, New Delhi.
- A. Appadorai and M.S. Rajan; India's Foreign Policy and relations, South Asian Publishers. New Delhi ,1988.
- A.K. Sen : International relations; S. Chand and Co, New Delhi., 1983,
- S.U. Kodikara : Foreign Policy of Srilanka, A. third World Perspective, Chanakya Publications, New Delhi, 1982.
- H.P. Chattopadhyaya, Ethnic unrest in modern Srilanka, M.D. Publication, New Delhi, 1994.
- Rohan Gunaratna, War and peace in Srilanka, 1988.
- Ram mohan : "Srilanka. The Fractured Island" Penguin books, New Delhi. 1989.

- S. Sivanayagam, " The Phenomenon of Tamil Militancy" In V.Suryanarayan (ed). Srilanka Crisis and India's Response"
- V. Suryanarayan : India Ethnic Conflict in Srilanka, In V.D. Chopra and K.P. Mishra (ed) Indian Foreign policy in the Ninties New Delhi. 1990
- Willium McGowan; Only man is vile the tragedy of Srilanka, Rupa and co. Allhabad, 1993
- Lt. Gen S.C. Sardeshpande : Assignment jaffana New Delhi, Lancer Publication, 1992
- Vikram Singh : International relations and Ethnicity R.B.S.A. Publishers Pvt. Ltd. 2000.
- R.K. Dubey : Indo- Srilanka relations with special reference to the Tamil Problem.
- B.C. Uproti, S.N. Kaushik Mohanlal Sharma : India's foreign Policy. Emerging Challange. and Paradigms. Kalinga Publication. 2003
- Suman Sharma : "India and SAARC" Gyan Publishing House New Delhi
- Narman D. Palmer : International Relations.
- Keith Callard : Indian Foreign Policy in Changing world.

वार्षिक रिपोर्ट्स

- वार्षिक रिपोर्ट, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1971-72
- वार्षिक रिपोर्ट, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1976-77
- वार्षिक रिपोर्ट, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1978-79
- वार्षिक रिपोर्ट, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1980
- वार्षिक रिपोर्ट, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1993-1994
- वार्षिक रिपोर्ट, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1994-1995
- ताशकन्द घोषणा, सूचना एवं प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1996

पत्रिकाएँ

- इण्डिया टुडे।
- आउटलुक 'साप्ताहिक'।
- सिविल सर्विसेज टाइम्स ।
- सिविल सर्विस क्रानिकल।
- नई आजादी; 'उद्घोष'।
- इण्डिया।
- फ्रन्टलाइन
- कांग्रेस वार्णिक।
- यूथ कम्पटीशन टाइम्स।
- प्रतियोगिता दर्पण।
- योजना।
- प्रवक्ता।
- मनोरमा इयर बुक।

समाचार-पत्र

- दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली
- टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली
- हिन्दुस्तान, नई दिल्ली
- दॅ हिन्दू, मद्रास
- सहारा समय, नई दिल्ली
- दैनिक जागरण, लखनऊ

- ⇨ इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली
- ⇨ अमर-उजाला, कानपुर
- ⇨ जनसत्ता, नई दिल्ली
- ⇨ दैनिक भास्कर, ग्वालियर
- ⇨ स्वतन्त्र वार्ता, नई दिल्ली
- ⇨ हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली
- ⇨ धर्म युग, नई दिल्ली
- ⇨ नई दुनिया, इन्दौर
- ⇨ द इॅकोनामिक टाइम्स, नई दिल्ली
- ⇨ नेशनल हैराल्ड, नई दिल्ली
- ⇨ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली
- ⇨ धर्म युग, नई दिल्ली
- ⇨ दिनमान, नई दिल्ली
- ⇨ स्टेटमैन, नई दिल्ली
- ⇨ नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली
- ⇨ फायनेन्सियल एक्सप्रेस, नई दिल्ली
- ⇨ नई दुनिया, इन्दौर
- ⇨ सण्डे टाइम्स, इन्दौर
- ⇨ सण्डे टाइम्स, लन्दन
- ⇨ गार्जियन, लन्दन